

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182489

UNIVERSAL
LIBRARY

-881—5-8-74—15.000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H 83

B 81 R.

प्रतिनिधि
रीज.

Accession No. G.H. 1389

be returned on or before the date last marked below.

1956.

रोसा

श्री ब्रजकिशोर 'नारायण'

किताबघर पटना राँची

आवरण-चित्र—श्री इन्द्र दूगड़
छायाचित्र—त्रिवेदी स्टुडियो, पटना

सर्वाधिकार सुरक्षित

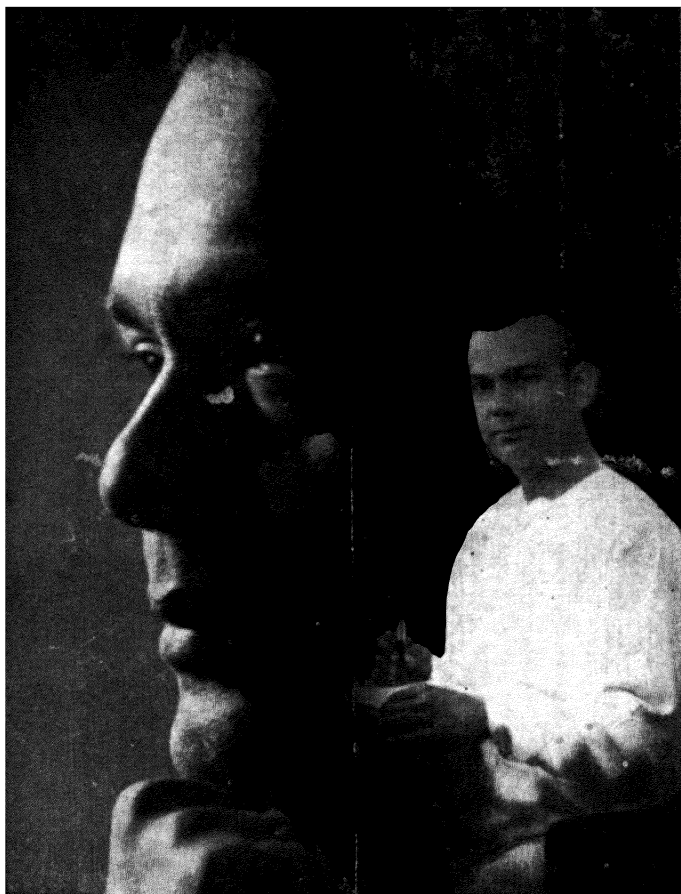
मूल्य—पाँच रुपये

Checked 1989

जनवरी, १९५६

मुद्रक
इण्डियन नेशन प्रेस
पटना—१

रीता



‘नारायण’

रीता

ਮਧੁ !
ਉਨੇ ਈ-

‘रीता’ के सम्बन्ध में

‘रीता’ मेरा दूसरा उपन्यास है । पहला उपन्यास—‘राष्ट्र के लिए’ सन् १९५० में प्रकाशित हुआ था और उसकी, उसीके अनुरूप चर्चा भी हुई थी । उसमें स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद की मौलिक समस्याओं पर कर्तव्य-पक्ष से ऐसे कथानक की आयोजना थी, जो राष्ट्र की ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को प्रशांत करे और रचनात्मक प्रवृत्तियों को प्रेरणा दे । चूँकि ‘राष्ट्र के लिए’ का निर्माण कर्तव्य-प्रेरित था, इसलिए उसमें जिंदगी की गहराई और कल्पना की ऊँचाई भरपूर मात्रा में नहीं थी । उसमें धरती की समस्या थी और उसी का समाधान !

‘रीता’ मेरे भावना-पक्ष की आत्मिक प्रतिकृति है । इस रचना को मैं आज तक के प्रकाशित अपने सभी गद्य-पद्य-ग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक प्रिय मानता हूँ । इस उपन्यास की तरह यह धारणा भी भावना-प्रेरित हो सकती है । कर्तव्य-पक्षपाती प्रवाचक इस धारणा के प्रति अनुदारता भी दिखावें तो उसे मैं बड़ी खुशी से बर्दाश्त करूँगा ।

‘रीता’ का कथानक धरती का है ! इसके कहने का टेकनीक आसमान का है !! इसकी जिंदगी समुंदर की है !!! इससे अधिक या कम, इसमें कुछ है, इसका ज्ञान मुझे नहीं है । सहृदय समीक्षकों और पाठकों के माध्यम से अगर मुझे अपनी जानकारी के अलावा, कुछ अधिक जानने का मौका मिला तो उसका लाभ उठाऊँगा ।

‘रोता’ के प्रणयन से लेकर प्रकाशन तक की अवधि को मेरे अनन्य बंधु श्री रामगोपाल ‘रुद्र’ की अभिन्न आत्मीयता प्राप्त होती रही है । यह ममतामय सहयोग उन्होंने क्यों दिया, यह उनके और मेरे बीच ही रहे तो अधिक मार्मिक होगा । इसके प्रकाशक भाई परमेश्वर सिंहजी ने जिस सुरुचि, सहृदयता और अपनापन का परिचय, इस प्रकाशन के नख-शिख-शृंगार में दिया है, उसे भी मैं भावना-प्रेरित ही मानता हूँ, क्योंकि कर्तव्य-बुद्धि द्वारा कला-कृतियों का गला घोटनेवाले प्रकाशकों से भी कम पाला नहीं पड़ा है । परमेश्वरभाई ‘रोता’ के प्रकाशन के बहुत पहले से ही मेरे आत्मीय रहे हैं, और उस आत्मीयता का स्नेहिल और उदार उद्गार, उन्होंने मेरी इस कृति की रूप-सज्जा में प्रकट कर दिया है । अनुज के नाते उनको धन्यवाद देकर, मैं अपराधी क्यों बनूँ !!! पहली जनवरी, सन् उन्नीस सौ छप्पन । ‘जनजीवन’-कार्यालय, पटना—४ ।

बुज केशर नारायण

१

उपन्यास की कहानी

इस उपन्यास की कहानी की भी एक कहानी है ।

आप हम सभी जानते हैं कि भारतवर्ष में क्या, दुनिया भर में आजकल उपन्यास की बिक्री सबसे ज्यादा है । यूँ तो हमारे यहाँ उपन्यासों से अधिक कवियों की ही संख्या है मगर उनकी पूछ उपन्यासों जैसी नहीं है ! चूँकि एक प्रकार के साहित्य-विशेष की ही खोज ज्यादा है, और आहकों की टेंट भी उसी से हल्की की जा सकती है; इसलिए होशियार प्रकाशक भरसक इसी कोशिश में रहता है कि पाठ्य-पुस्तकों के बाद बाल-साहित्य छापे, और, उससे ज्यादा आकात हो तो, कुछ उपन्यास छापकर, अपना दीन-ईमान बनाए रखे ।

इस विकट वस्तुस्थिति का ज्ञान, ललित को बहुत देर बाद हुआ । चढ़ती जवानी में तो वह कविताएँ ही लिखता था । कविताएँ भी ऐसी कि पढ़-सुनकर मदनानन्दमोदक खरीदने का खर्च बच जाय ! मगर उन कविताओं से ललित की दूसरी महत्वाकांक्षा पूरी नहीं हुई । पहली महत्वाकांक्षा तो यश की थी, जिसकी पूर्ति उसके मजनूँ-मार्का नवजवान दोस्तों की दाद से हो जाया करती थी; मगर जब महत्वाकांक्षा का दूसरा रूप, उससे खाना, कपड़ा, और बीबी-बच्चों की परवरिश की माँग करता, तो वह भावुक व्यक्ति इतना घबड़ाता, इतना घबड़ाता कि किसी दिन आत्महत्या-जैसे सुकर्म पर भी गंभीरतापूर्वक

विचार करने लगता । इसी तरह सोचते-सोचते और मुसीबत में पड़े-पड़े उसने बहुत दिन के एक जाल से छुटकारा पा लिया । कविता लिखना हमेशा के लिए बन्द हो गया ।

अब पाठ्य-पुस्तकों को ताला बनाकर उनकी कुंजी तैयार करना और कभी-कभी, कालेज और हाई स्कूल के उच्चवर्गीय विद्यार्थियों के लिए, आलोचना की पाँच सड़ियल पुस्तकें लेकर एक छठी पुस्तक तैयार कर देना ही उसकी साहित्यिकता रह गई थी । मगर यह सब काम भी तो हमेशा होता नहीं, इसलिए अब ऐसे दिन आ गए थे कि वह पूरे परिवार के साथ फाकाकशी पर आमादा था ।

झूठ बोलकर पैसे लेना, अपने घनिष्ठ मित्रों को भी चकमे में डालकर ऋण ले आना, बनियों को मुगालते में डालकर सौदा माँग लेना, ऐसी टेकनीकों से ही किसी तरह उसका समय कट रहा था । मगर यह भी कबतक ? इसी बीच उसका बड़ा बच्चा बीमार पड़ा । पत्नी को तो जन्म से दमे की बीमारी थी ही । अब रातदिन सेवा-शुश्रूषा में भी ललित को ही खटना पड़ा । दवा और डाक्टर की समस्या तो ऐसी आई कि वह नास्तिक होते हुए भी कई बार कह उठता—‘इन महँगी दवाओं और डाक्टरों से तो अच्छा है, भगवान, रहमदिल और यूँ सस्ती मौत क ही भेज दो ! मर भी तो सकें आसानी से हम’ ! मगर भगवान के अस्तित्व में तो उसको विश्वास था नहीं, इसलिए भगवान को भी गुस्सा आ जाता था और वे ललित की बातें सुनकर भी अनसुनी कर देते थे ! और अपनी इस निष्ठुरता पर वे ऐसे फूले नहीं समाते थे—जैसे, अपने अस्तित्वपर विश्वास करनेवालों के बुलावों पर वे हमेशा आ ही जाते रहे हों, उनका उद्धार करने’ !!!

अभी चार-पाँच दिन भी नहीं हुए । दुर्गामन्दिर के पुजारी ने गणिका, अजामिल, व्याध, गज, ध्रुव, प्रह्लाद और नरसी मेहता, सब की तरह बड़ी ईमानदारी से भगवान को पुकारा था, मगर भगवान कान में तेल डालकर ही नहीं, बल्कि घोड़ा बेचकर ऐसे सो गए

कि शेषनाग और लक्ष्मी जी के जगाने पर भी उनकी नींद नहीं खुली और डाकू, पुजारीजी की दिन-दहाड़े हत्या करके चले गए थे । चलते वक्त, सोने की दुर्गाजी और चाँदी के शिवजी भी डाकुओं के साथ हो लिए । मगर सच्चे और त्यागी तपस्वी पुजारीजी यूँ कत्ल कर दिए गए कि सीने में भाला लगते ही उन्हें सिर्फ भगवान को ही पुकारने का समय मिला—वह भी एक बार नहीं, अनेक बार ।

ललित को भी यह सब किस्सा मालूम था । वह यह भी जानता था कि जिस गाँव के डाकुओं ने पुजारीजी की हत्या की थी, वह गाँव एक नेता साहब की जन्मभूमि था । डाकुओं को नेता साहब से काफी हेलमेल था । ऐसा हेलमेल, जो मीसेरे भाइयों में भी नहीं मिलता । इस का नतीजा यह हुआ कि डाकू और नेता एक ही शान से बेलाग घूमते रहे, सीना तानकर ! कत्ल हुए व्यक्ति की विधवा, उसके छोटे-छोटे बेचारे पाँच बच्चे और गाँव की कई गवा-हियाँ एक तरफ रहीं, और डाकू दूसरी तरफ बेखटक !—अपने महान् नेता साहब के साथ !

तो, ललित ने, बवा और डाक्टर से मौत को अधिक प्रश्रय देकर भी, जब सफलता प्राप्त नहीं की, तब 'बुद्ध शरण' की तरह वह फिर अपने प्रकाशक की ही शरण गया । प्रकाशक बुरे आदमी नहीं थे । मगर बात यह है कि व्यवसाय व्यवसाय है ! अगर उनमें कोई बुराई थी भी तो वह महज व्यवसाय की बदौलत ! भला इसमें उनका क्या कसूर ?

ललित ने जब अपना दुखड़ा बयान करना शुरू किया तो उसकी भावुकता बाँध तोड़ गई । वह बच्चे की तरह फफक-फफककर रोने लगा । प्रकाशक यह दृश्य देखकर बहुत विचलित हुए । उन्होंने खजांची को बुलाकर कहा कि ललित बाबू को तुरत तीन सौ रुपए दे दीजिए । ललित ने प्रकाशक महाशय को भींगी हुई आँखों से देखा । धन्यवाद देने के लिए जुबान की जरूरत नहीं पड़ी । ललित जब रुपए लेकर

चला तो प्रकाशक ने बाहर आकर कहा—“ललित बाबू ! नगद रुपए तो आप लौटा नहीं सकेंगे ! हाँ, एक सुन्दर-सा, मार्मिक और.....और क्या कहूँ ! बस एक लाजवाब उपन्यास लिखकर मुझे दे दीजिए । ये रुपए उसीमें कट जायेंगे । ललित को प्रकाशक के इस सुझाव से बड़ी तसल्ली हुई ! नगद रुपए, और वह भी तीन सौ ! इस जिन्दगी में तो वापस होते नहीं । फिर भी, वह उपन्यास लिखने की गंभीरता पर इस वक्त ज्यादा विचार नहीं कर सका और सीधे दवाखाने में जाकर सारी बेशकीमत दवाइयाँ खरीद लाया । पत्नी को जब यह किस्सा मालूम हुआ तो उसने जीवन में पहली बार महसूस किया कि मोची, तमोली, पंसारी और व्यापारियों के मुकाबले अब साहित्यकारों की भी कुछ औकात बन रही है ! वे अब इस काबिल हो रहे हैं कि कम-से-कम अपने बीबी-बच्चों को दवा-दारू और सेवा-शुश्रूषा के बाद ही मृत्यु की गोद में जाने देना गवारा कर सकें ।

ललित ने मेहनत और पैसों के बल पर बीमारी पर विजय पाई । मगर यह विजय ऐसे वक्त आई थी कि विजयी ललित परास्त होने से भी बुरी हालत में हो गया । उसने बहुत-कुछ सोचने-विचारने के बाद परिवार को सुसराल भेज दिया । पत्नी को कहा—तुम लोग तीन-चार महीने वहीं रहो ताकि मैं उपन्यास लिखकर अपने प्रकाशक के ऋण से उबार पा जाऊँ !

इसी उपन्यास लिखने की फिक्र के सिलसिले में ललित रोज अजायबघर की फुलवारी में जा बैठता । एक दिन गया, दो दिना गया । मगर लाख सोचने पर भी कोई कथानक उसके पल्ले नहीं पड़ा । आज तक तो बेचारा कुंजियाँ ही लिखता रहा, आलोचनाएँ उतारता रहा । मगर अब समस्या थी पूरा का पूरा एक उपन्यास लिख देने की, जिसकी प्रत्येक पंक्ति दिमाग और दिल की उपज हो, जिसका कथानक बहुत बड़ी योजना के आधार पर अवलम्बित हो—जैसे, बोरा ढोते-ढोते एक दिन कोई गोबरधन पहाड़ ही उठा लेना चाहे अपनी पीठ पर ! ललित

को लगा कि बीबी-बच्चों का बिना दवा के मर जाना, इस उपन्यास के लिखने से कहीं अच्छा था ।

ललित फुलवारी के जिस कुंज के पास बैठता था, ठीक उसी कुंज के सामने एक दूसरा कुंज था । ललित आकर जैसे ही अपना ढाल खोलता और कागज-किताब निकालकर सोचने का उपक्रम करता कि देखता, सामने के कुंज में बैठा एक सनकी आदमी उसे एक अजीब अर्थपूर्ण दृष्टि से घूर रहा है । आज ललित का फुलवारी में पाँचवां दिन था । उसने सोचा, इसी पागल के मारे शायद मेरा मूड गड़बड़ हो जाता है । जब कोई सूझ पैदा होती है तो यह उजबक मेरी ओर ऐसा घूरता है कि सारा 'आइडिया' हवा हो जाता है । आज भी एक कथानक दिमाग में चक्कर काट रहा है तो देखता हूँ कि यह बदमाश उसी टक-टकी से मेरी ओर ताक रहा है ! ललित के जी में आया कि उठकर जाय और उसका गला घोट दे । मगर यह ठीक नहीं होगा, ऐसा समझकर उसने सोचा कि अजायबघर के पहरेदारों को डाँटे कि वे पागलों को अजायबघर की चहारदिवारी में क्यों घुसने देते हैं !

ललित उस पागल से छुटकारा पाने की उधेड़बुन में इतना मशगूल हो गया कि उसे यह भी नहीं मालूम हो सका कि जिस पागल से वह जान बचाना चाहता है वही पागल उसके पीछे खड़ा होकर, बड़े गौर से, उसकी कौपी को देख रहा है । कौपी पर अभी तक कुछ लड़कियों और लड़कों के नाम-भर लिखे गए थे । ऊपर, नीचे, कुत्ते और बिल्ली की सूरत से मिलती-जुलती कुछ रेखाएँ खिंची हुई थीं ! दो-चार पंक्तियाँ लिखकर काट भी डाली गई थीं ।

ललित को अपने पीछे खड़े किसी आदमी का आभास मिला तो उसने घूमकर देखा । और, जो देखा तो देखता ही रह गया । वह इतना हतप्रभ हुआ कि मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला । उस सनकी आदमी ने ललित को उसी जिज्ञासु आँखों से घूरकर पूछा—'आप लेखक हैं ?'

‘जी हाँ !’—ललित की जुबान अनजाने बोल गई ।

सनकी मुस्कुरा पड़ा । उसने धीरे से कहा—‘लिखना छोड़ दीजिए !’

ललित ने सोचा कि साहस बटोरकर पूछे कि क्यों, मगर ऐसा हो नहीं सका । सनकी ललित की मनोदशा जैसे उसकी अन्तरात्मा में पंथकर पड़ रहा हो । उसने कहा—‘आप पूछेंगे, क्यों ? यही न ?’

ललित ने प्रकृतिस्थ होकर कहा—‘हाँ !’

सनकी अब बड़े इतमीनान से ललित की बगल में बैठ गया । उसने सिगरेट सुलगाई । ललित से पूछा—‘आप को इससे शौक है ?’

‘नहीं, माफ कीजिए !’

सिगरेट के दो-तीन कश लेकर सनकी ने ललित की ओर दुबारा देखा और कुछ देर तक देखता रहा । फिर मुस्कुराने लगा । ललित उसकी इन सिहरा देनेवाली हरकतों से डर महसूस कर रहा था । वह चिन्ता में पड़ गया कि कैसे यहाँ से भाग निकला जाय । सनकी ने उसकी घबराहट भांप ली । उसने कहा—‘क्यों’ का उत्तर सुन लीजिए तो चले जाइए ! मैं आपको तंग करने नहीं, सहायता देने आया हूँ । आप लेखक हैं । गरीब हैं । गरीब इसलिए कह रहा हूँ कि अजायबघर की फुलवारी में बर्नार्डशा, रवीन्द्रनाथ या प्रसादजी जैसे लेखक नहीं आया करते । आप लेखकी के बजाय भीख माँगें तो ज्यादा अच्छा है । आप मेरी बात का बुरा मत मानिए ! क्या मिलेगा आपको इस लेखकी से ? कोई कविता लिख रहे हैं क्या ?

‘जी नहीं ! उपन्यास लिखना चाहता हूँ !’

‘ओ ! तो आप उपन्यास-लेखक हैं ?’

‘जी नहीं ! मजबूरी में बन गया हूँ !’

‘क्यों ?’

ललित को सनकी की बातों में सहानुभूति की एक ऐसी झलक मिली कि उसने उससे कुछ नहीं छिपाया । ललित ने कहा—‘बात असल

यह है कि मेरे बीबी-बच्चे भूखों मर रहे थे । उन्हें बीमारी भी हो गई थी । फाकेकशी और बीमारी के दौरान में दवा-डाक्टर के लिए एक प्रकाशक ने मुझे तीन सौ रुपए दिए और उसके एजेंट में एक उपन्यास लिख देने की बात कही । उसी उपन्यास को लिखने के लिए मैं यहाँ आया करता हूँ । मगर।'

'मगर अन्तरात्मा की प्रेरणा नहीं होती ! पत्नी और बच्चों को जीवनदान देनेवाले प्रकाशक के आदेश का पालन ही अब आपका एक-मात्र कर्तव्य रह गया है । यही न ?' सनकी ने अपने दाहिने हाथ के अँगूठे की पट्टी ठीक करते हुए पूछा ।

'जी हाँ !' ललित ने कहा । और अब वह उस सनकी आदमी का परिचय जानने के लिए कोई बहाना ढूँढ़ने लगा कि सनकी ने कहा—'मैं भी एक!'

'आप ?'

'जी ! मैं भी एक तुच्छ साहित्य-सेवी ही हूँ । उपन्यास-कहानी नहीं, कविताएँ लिखता हूँ ! हिन्दी की सभी पत्र-पत्रिकाओं में मेरी कविताएँ छपती हैं । चार-पाँच संग्रह भी निकल चुके हैं कविताओं के ! मैं-बाप के पास काफी जायदाद है । पैसे हैं । मेरे पास भी हैं । लेकिन उनका कविता से कोई सरोकार नहीं ! कविता से तो घाटा ही घाटा है !.....खैर.....!!!'

सनकी कहते-कहते अचानक चुप हो गया । लगा कि उसे कोई भूली बात याद आ गई हो । लेकिन उसने फिर अपने आपको सम्हाला और कहा—'कोई बात नहीं है ! आपको एक उपन्यास ही न लिखना है ! मैं आपकी मदद करूँगा ! मगर याद रखिए । किसी-को भी मालूम न हो कि इस उपन्यास का लिखनेवाला मैं हूँ । मैं आपको अपने जीवन की एक मार्मिक घटना लिखाऊँगा । मैं उपन्यास नहीं लिख सकता । कहानी भी नहीं । मुझे गद्य से नफरत है ।

रूँ, मैं अपनी बीती लिखकर बदनामी भी नहीं लेना चाहता । मगर आपको एक बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी ! कीजिएगा ?' .

‘जरूर करूँगा ! और आपका यह एहसान जीवन-भर नहीं भूलूँगा । आज्ञा दीजिए !’ ललित ने कहा । ‘आपको रोज, ठीक सात बजे सुबह, यहाँ आ जाना पड़ेगा । मैं बोलता जाऊँगा । आप लिखते जाइएगा । यह उपन्यास आपको मेरी मरजी के मुताबिक प्रकाशित करना पड़ेगा । समझे आप ?’

‘जी ! मुझे स्वीकार है ! ऐसा करके मैं अपने आपको धन्य मानूँगा !’

‘तो कल से आप रोज सुबह सात बजे इसी कुंज में आ जाय्या कीजिए ! मैं चला !’

‘नमस्ते !’ ललित ने उठकर और हाथ जोड़कर कहा । मगर सनकी ने ललित के अभिवादन का कुछ भी उत्तर नहीं दिया । वह चुपचाप चला गया । जाते वक्त उसकी सिगरेट का धुँआँ जो ऊपर उड़ा तो ललित ने देखा कि उसमें एक धुँधला-सा कथानक तैयार हो रहा है । और उसका उपन्यास संसार की एक सर्वप्रिय साहित्यिक देन बनने को है—ठीक उस धुँधले धुँएँ की तरह जो क्रमशः विलीन होकर निस्सीम नील गगन की विशालता में अपना अस्तित्व खो रहा है !!!



उपन्यास शुरू हुआ

ललित ठीक सात बजे अजायबघर की फुलवारी में पहुँच गया । वह सनकी आदमी वहाँ पहले से ही मौजूद था । ललित को ठीक समय पर पहुँचा देख उसने कहा—‘आप साहित्यिक होने के लायक नहीं हैं !’

‘सो कैसे ?’ ललित ने मुस्कराते हुए पूछा ।

‘इसलिए कि आप समय की पाबन्दी पर घड़ी की सूई की तरह चलते हैं । साहित्यिक को घड़ी के पीछे नहीं, घड़ी को साहित्यिक के पीछे चलना चाहिए !’

‘और ऐसा करने से अगर साहित्यिक को घाटा हो ?’

‘तो आप साहित्यिक को बनिया समझते हैं ! साहित्यिक का दूसरा नाम, हमारे देश में घाटा ही है महाशय !’

ललित ने निरुत्तर होकर कहा—‘मगर आप के इस उपदेश पर अमल करने से उपन्यास कैसे लिखा जा सकेगा ? आखिर आप भी तो यहाँ ठीक समय पर ही पहुँच गए थे !’

सनकी ने कहा—‘मैं ठीक समय पर नहीं पहुँचा था ! मैं यहाँ निश्चित समय से एक घण्टा पहले पहुँच गया था । निश्चित समय का यह अर्थ नहीं होता !’

ललित ने कहा—‘आप एक रहस्य-भरे व्यक्ति मालूम होते हैं । आपकी व्यंग्यभरी बातें सुनकर आप पर आन्तरिक श्रद्धा हो गई है मुझे ! हृदय कहता है—काश ! आप मेरे भाई होते ! मैं.....।’

सनकी ने बात काटते हुए कहा—‘मैं आपका भाई ही हूँ । मगर, देखिए, यह सब रिश्ते बहुत बुरे होते हैं ! आदमी ज्यादा निकट आने के लिए पहले रिश्ता जोड़ता है, फिर मिलता-जुलता है । ममता बढ़ाता है । ईर्ष्या करता है । प्रतिशोध लेता है । घृणा करता है और अलग हो जाता है । संसार की यह रिश्तेदारियाँ बड़ी भयानक हैं । फिर भी, कोई बात नहीं । आप मुझे अपना भाई समझ सकते हैं । हाँ ! क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ ?’

‘जी ! मेरा नाम ललित है ?’

‘आप यहीं के रहनेवाले हैं ?’

‘जीहाँ !’

‘सिर्फ लेखकी को ही पेशा बना रखा है ?’

‘जी हाँ ! अभी तो यही है । पहले एक दैनिक पत्र में सहकारी सम्पादक था । पत्र चुनाव के बाद बन्द हो गया । तबसे कुंजी बगैरह लिखकर पेट पालता हूँ !’

‘आपने मेरे विषय में पूछताछ नहीं की ?’

‘जी ! मैं सोच ही रहा था !’

सनकी ने बड़ी गम्भीरता से कहा—‘मैं भी आपके ही प्रान्त का रहनेवाला हूँ । मेरा नाम कृष्ण है । यूँ रंग भी काला ही है । पिता मेरे जमीन्दार हैं । घर पर रहते हैं ।’

ललित ने पूछा—‘आप विवाहित.....’

‘जी हाँ ! मेरा विवाह हुआ है ! तीन बच्चे भी हैं । एक लड़की, दो लड़के । अभी मेरी उम्र बत्तीस वर्ष की ही है, इसलिए आगे भी....’—ऐसा कहके कृष्ण ठहाका मारकर हँस पड़ा । कृष्ण-

जैसा सनकी आदमी ठहाका मारकर भी हँस सकता है, इसकी कल्पना ललित को एकदम नहीं थी । कृष्ण के ठहाके के स्वर में साँपवाली बीन की-सी सनसनाहट थी । वे स्वर हवा में ऐसे लहराए कि ललित की नस एकाएक झनझना उठी । सारे रोंगटे सिहरकर खड़े हो गए । थोड़ी देर के लिए न ललित बोल सका और न कृष्ण ! दो-तीन मिनटों के बाद कृष्ण ने सिगरेट निकाली और पिछले दिन की ही तरह ललित से पूछा—‘आपको इससे शौक है ? ओ ! माफ कीजिएगा ! आप नहीं पीते ! कोई बात नहीं ! मुझे याद है ! हाँ ! तो अब हमें कुछ काम करना चाहिए ! चलिए, अजायबघर के पीछे, सीढ़ी के पासवाले पेड़ के नीचे बैठकर लिखा जाय । वहाँ ज्यादा एकान्त और शान्ति है !’

ललित और कृष्ण, दोनों अजायबघर के पीछे चले गए ! पेड़ के नीचे बैठते हुए कृष्ण ने कहा—‘उपन्यास शुरू करने के पहले आप मेरी कुछ कमजोरियों से परिचित हो लीजिए ! मैं बहुत भुल-क्कड़ आदमी हूँ । कभी-कभी ऊटपटांग भी बोल जाया करता हूँ । आपको तो मैं, जो मन में आएगा, लिखाऊँगा; मगर आप यह ख्याल रखिएगा कि जहाँ कहीं भी कुछ शक, कमी या जिज्ञासा की बात आए, आपको निर्भीकता से उसके विषय में पूछ लेना है । एक बात और है ! अगर पूरा उपन्यास शुरू से अन्त तक सिर्फ एक आदमी ही कहे तो उसे कोई नहीं पढ़ेगा । आपके प्रकाशक को भी पसन्द नहीं आएगा । इसलिए, उसमें जिन्दगी बनाए रखने की दृष्टि से, मेरा आपका तर्क-वितर्क और प्रश्न-उत्तर बहुत जरूरी है ! यूँ तो मैं सनकी हूँ ही, मगर आप जहाँ कहीं भी टोकेंगे, मैं रास्ते पर आ जाऊँगा । बस ! अब लिखना शुरू कीजिए !’ ऐसा कहकर कृष्ण ने पास पड़ी हुई ईंट को तकिया बनाया और जमीन पर लेट गया । ललित ने अपनी कौपी सँभाल ली और उपन्यास शुरू हो गया !

×

×

×

×

“यह कहानी मेरे जीवन की सबसे बड़ी कहानी है ! यह एक ऐसी कहानी है, जिसमें मैं खुद एक कहानी बन गया हूँ !

“यहाँ से बहुत दूर की बात है । वह जगह एक पहाड़ी शहर है । पाँच वर्ष पहले मैं वहाँ गया था । जाकर शहर में एक छोटा-सा मकान भाड़े पर लिया था । बात यह थी कि उस समय मैं एक काव्य लिख रहा था । काव्य तो मैंने दस वर्ष पहले लिखना शुरू किया था, मगर अब मैं उसे समाप्त करना चाहता था । वह पहाड़ी शहर कुसुमा के नाम से मशहूर है । यातायात की सुविधाएँ भी हैं वहाँ । एक सिनेमाघर भी है । पहाड़ी जंगल के अलावा चारों ओर लहलहाते खेत और आम के बगीचे हैं ।

“मैं जब उस शहर में पहुँचा तो लोगों का ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ । मैं कवि हूँ, इसकी चर्चा शहरभर में हो गई । छोटा शहर था । मेरे कई नाटक रेडियो से भी ब्राडकास्ट हुए थे, जिन्हें कुसुमा के लोगों ने सुना था । कुसुमा में एक कालेज भी है; दो हाई स्कूल हैं । लड़कियों का एक हाई स्कूल अलग से है । हिन्दी-प्रचारक-संघ की एक शाखा भी है । उसका अपना मकान है । पहाड़ी, बंगाली और तलहटी के लोगों के, तीन नाम से, तीन कला-केन्द्र भी हैं । इन केन्द्रों की ओर से बराबर कोई न कोई नाटक,

गोष्ठी और उत्सव हुआ ही करते हैं । 'कलाप्रसार केन्द्र' नाम से एक थिएटर भी है वहाँ ।

“मैं जिस मुहल्ले में रहता था, वहाँ के दो लड़कों से मेरी बहुत घनिष्ठता हो गई थी । एक स्कूल के शिक्षक भी थे । अच्छे कवि थे । वे तो मेरे गाढ़े मित्र बन गए थे । इस तरह वहाँ की जिन्दगी कुछ ऐसी हो गई थी कि घर और प्रान्त से ज्यादा मन वहीं लग गया था । मेरे मुहल्ले में रहनेवाले वे दोनों लड़के मेरे खास मित्रों में थे । एक का नाम कुमार था और दूसरे का काशी । कुमार वहाँ के एक सरकारी दफ्तर में काम करता था । काशी फोटोग्राफर था । नृत्य और अभिनय से उसे काफी दिलचस्पी थी । पर, नृत्य और अभिनय से ज्यादा लड़कियों में ही उसकी दिलचस्पी थी । स्वभाव से ही कुछ रोमाण्टिक था वह !—शिष्ट लोग जिसे आवारा भी कह दिया करते हैं !

“वैशाख पूर्णिमा का दिन था । संघ ने ब्रय किया कि भगवान बुद्ध पर एक नाटक खेला जाय । नाटक वहाँ के एक पण्डितजी का लिखा हुआ था । मैं प्रायः नाटक का रिहर्सल देखने चला जाया करता था । पण्डितजी की इच्छा थी कि मैं उसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखूँ और अगर कहीं कोई खामी पाऊँ तो उन्हें बताऊँ । मैं, करीब-करीब रोज, रिहर्सल में जाया करता था । रिहर्सल में जानेवाले और कई व्यक्ति थे । चार-पाँच लड़कियाँ थीं, जिन्हें नाटक में पार्ट मिला था । कुछ गायिकाएँ भी थीं । कुछ लड़के भी थे । दो संगीत-शिक्षक थे । इसके अलावे चार-पाँच अभिभावक लोग भी थे । कलाकारों का एक अच्छा-खासा जमघट था । सारा भवन गन्धर्व और किन्नरों से घिरा हुआ नन्दन-कानन बन जाता था, दो तीन घंटों के लिए !

“एक दिन मैं रिहर्सल से लौट रहा था, अपने घर की तरफ । थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर काशी से भेंट हो गई । वह भी वहीं से

लौट रहा था । काशी नाटक में नृत्य दे रहा था, इसलिए वह भी वहाँ रोज जाया करता था । काशी से रास्ते में जब मेरी भुलाकात हुई, उस समय उसके साथ एक दम्पति थे । देवीजी से परिचय कराते हुए उसने कहा—‘आप कोकिलाजी हैं । आपने ‘कलाप्रसार केन्द्र’ में आपके मधुर गीत सुने होंगे । आप इस पहाड़ की कोयल हैं ।’ उनके पतिदेव की ओर इशारा करके उसने कहा—‘आष शर्माजी हैं ! आपकी ही कृपा से कोकिलाजी आज हमारे पहाड़ की चोटी-चोटी और वन के पेड़-पेड़ को अपनी कुहू से मुखरित करती नजर आ रही हैं ।’

“दोनों ने झुककर अभिवादन किया । मैंने अपना परिचय स्वयं दिया—मैं आप लोगों का सेवक हूँ । कृष्ण कहते हैं मुझे । तुक बोलता हूँ; किन्तु यहाँ एक अतुकान्त काव्य को समाप्त करने के लिए आया हूँ । अगले साल फिर देश लौट जाऊँगा ।’

“काशी ने कहा—‘कृष्ण जी ! ये दोनों आप को भलीभाँति जानते हैं । आपकी चीजें इन्होंने रेडियो पर सुनी हैं । उस दिन जो गोष्ठी हुई थी, उसमें ये दोनों मौजूद थे । आपकी एक किताब भी इन लोगों के पास है ! आप ज्यादा तकलीफ न करें । हाँ ! एक तकलीफ आपको जरूर करनी पड़ेगी !’

“मैंने पूछा—‘क्या ?’

“देवीजी ने बहुत मीठे स्वर में कहा—‘जी, मेरे दिमाग में एक योजना है । मैं चाहती हूँ कि अगर आप मेरी सहायता करें तो वह योजना कार्यान्वित हो जाय ।’

“मैंने हार्दिक प्रसन्नता से कहा—‘मैं किस लायक हूँ ! ह, आप जो आज्ञा देंगी, करूँगा !’

“ये बातें चूँकि सड़क पर हो रही थीं; और सड़क के चरित्र-रक्षक लोग रह-रहकर ऐसे घूरते थे, जैसे हम लोग अभी-अभी सीधे किसी अफ्रीकी चिड़ियाघर से भागकर आ गए हों; इसलिए मैंने

प्रणाम करते हुए कहा—‘मैं कल मिलकर इस विषय में विस्तारपूर्वक बातें करूँगा ।’ अभी जरा जल्दी में हूँ । आज्ञा दीजिए !’

“लोगों की नजरों से बचने की चिन्ता में मैंने चलने में इतनी जल्दवाजी की कि उनलोगों से वह विस्मयवाली बात कहाँ पर करूँगा, यह भी पूछना मुझे याद नहीं रहा । उनका घर भी तो मुझे मालूम नहीं था । मगर काशी छूटा हुआ है । उसने चिल्लाकर कहा—‘कल मैं खुद आकर आपको ले चलूँगा ।’ तब मैंने महसूस किया कि सचमुच अगर काशी ने आने की बात नहीं कही होती तो मैं उसके यहाँ जाता कैसे !!!”

इतना लिखाकर कृष्ण ने ललित से कहा—‘यार ! तुम बड़े चुप्पा लेखक मालूम होते हो ! मैं इतनी सारी बातें एक साँझ में बक गया और तुमने कहीं भी जीभ नहीं हिलाई ! इस तरह लिखोगे तो मैं कल से लिखाना बन्द कर दूँगा !’

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! आपकी कहानी ने मुझे इतना तन्मय कर दिया कि बीच में बोलकर रसभंग कर देने की मुझे याद ही नहीं रही !’

कृष्ण बोला—‘तुम भी कम सनकी नहीं मालूम होते ! मगर देखो, आखिर मेरा भी तो मन लगना चाहिए ! कल से कुछ न कुछ बातें तुम जरूर किया करो । इससे मेरी तबीयत लगेगी, क्यों ?’

‘बहुत अच्छा !’—ललित ने कहा ।

कृष्ण ने फिर सिगरेट पाकिट से निकाली और उसे जलाकर एक जोर का कश लिया । धुआँ वहीं पर फेंककर वह उठ खड़ा हुआ और ‘सड़क की ओर चल पड़ा ।



एक दुर्घटना !

आज ललित फुलवारी में सात बजकर पाँच मिनट पर पहुँचा । कृष्ण आज भी पहले से ही मौजूद था । उसकी सिगरेट अनवरत धुआँ उगल रही थी । ललित ने आते ही नमस्कार किया । कृष्ण ने कहा—‘आज तबीयत बहुत उदास है ललित ! लगता है, कुछ लिखा न पाऊँगा ।’

‘घर याद आ गया है क्या ?’

घर का नाम सुनते ही कृष्ण उठकर बैठ गया । उसने ललित पर एक समझदार बुजुर्ग की तरह नजर डाली और कहा—‘घर मेरे लिए कोई चीज नहीं है ललित ! कलाकारों के लिए घर आकर्षण की चीज नहीं हुआ करता । मैं घर से हमेशा भागता हूँ । तुम जानते हो कि इस उपन्यास की कथा भी, जो मैं तुम्हें लिखा रहा हूँ, घर से भागकर पहाड़ में ही पाई हुई एक कथा है । घर पर कलाकार गृहस्थ है । बाहर वह कलाकार है । जिस तरह गंगा पहाड़ पर निर्झरी है और धरती पर सुरसरि ! ... यह सब मैं क्या बक रहा हूँ ! तुमने कौसा बेढंगा सवाल पूछ दिया ! खैर, निकालो कौपी । इस सवाल से, कम से कम, तुम्हारा काम तो हो ही गया । मेरा मूड खराब था । लेकिन अब लिखाने की इच्छा हो रही है !’

ललित ने कौपी सँभाल ली । कृष्ण ने कहना शुरू किया—

“दूसरे दिन काशी मुझे बुलाने नहीं आया । तीसरे दिन भी नहीं आया । इन दो दिनों में मैं भी रिहर्सल में नहीं जा सका । चौथे दिन नाटक ही था । इस तरह और कई दिन निकल गए । नाटक हो जाने के बाद रिहर्सल का भी सिलसिला बन्द ! करीब दस ग्यारह दिनों के बाद काशी की सूरत दिखाई पड़ी । उसने आते ही कहा—‘मैं तो एक सूजीब मुसीबत में पड़ गया हूँ । आपको बिना सूचित किए एक अनर्थ भी कर दिया है ।’

“मैं काशी की बातें सुनकर घबड़ाया । परदेसी आदमी । कहीं मुसीबत में न पड़ जाऊँ ! तबतक कुमार भी पहुँच गया । कुमार ने कहा—‘कृष्ण ! तुम्हें अपनी कला-परिषद् का अध्यक्ष चुन लिया है हमलोगों ने !’

“किस कला-परिषद् का ?’

“काशी ने देखा कि बात अधूरे ढंग से परोसी जा रही है तो वह खुद बोला—‘आप हिन्दी-प्रचारक-संघ के कलामंत्री भुजंगजी को तो जानते ही हैं ! यथा नाम तथा गुण ! हमारे साथ उन्होंने बहुत बुरा बर्ताव किया है । उस दम्पति के साथ भी । और भी कई कलाकार उनके दुर्व्यवहार से तंग आए हुए हैं । अब कोई भी हिन्दी-प्रचारक-संघ में नहीं जाना चाहता । मैंने सभी असन्तुष्ट कलाकारों को संगठित कर ‘कला-परिषद्’ की स्थापना की है ।’

“मैंने काशी से कहा—‘काशी ! यह बहुत बुरा हुआ है ! एक नई संस्था कायम करके, तुमने कोई बहुत बड़ा काम कर दिया है, मैं इसे मानने को तैयार नहीं हूँ । कमसे कम तुम्हें संघ के मंत्री—पण्डितजी—से इस विषय पर बातें कर लेनी चाहिए थीं । वे अगर भुजंगजी को रास्ते पर नहीं लाते तो देखा जाता !’

“काशी ने कहा—‘भैया ! यह सब कुछ हो गया है । हम-लोगों को पण्डितजी ने स्वयं बुलाया था । सबलोगों के सामने मेरे एक मित्र ने भुजंगजी का सारा कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया,

मगर पण्डितजी कुछ नहीं बोले । जब हमलोगों ने उन्हें दो-टूक बात बोलने पर मजबूर कर दिया तो उन्होंने तैश में आकर कहा—‘मैं उन्हें किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ सकता ! आप लोगों को अगर मेरे अनुशासन और आदेश के अनुसार सहयोग देना हो तो दीजिए; मैं भुजंगजी को नहीं हटा सकता ।’ आप जानते ही हैं, कृष्ण भैया, आखिर हमलोग भी कलाकार ही हैं । स्वाभिमान पर बहुत बड़ी चोट लगी और सबने तय किया कि कल एक बैठक हो और हमलोग अपनी एक स्वतंत्र ‘कला-परिषद्’ स्थापित करें, और उन्हें दिखला दें कि हम छोटे-छोटे लोग भी उनसे ज्यादा बढ़िया और ठोस काम कर सकते हैं ! ऐसा विचार करके हमलोगों ने एक सभा की । आप को सभा ने सर्वसम्मति से ‘कला-परिषद्’ का अध्यक्ष चुना । मैं मंत्री हूँ ।

“कुमार ने अपनी चुप्पी तोड़ते हुए कहा—‘और, मैं प्रचार-मंत्री, कोषाध्यक्ष और संयुक्त मंत्री !’

“काशी बोला—‘मास्टरसाहब भी कार्यकारिणी में हैं । शिवदेव बाबू अपने पूरे परिवार के साथ हैं । लालाजी हैं, अशोक है, मीनाक्षी है, उर्मिला है; सभी हैं !’

“मैंने पूछा—‘बैठक कहाँ हुई थी ?’

“काशी बोला—‘सिद्धू बाबू के यहाँ !’

“कौन-से सिद्धू बाबू ?’

“जिन्होंने बनारस की एक गायिका से विवाह किया है । बहुत बड़े कला-प्रेमी और उदार व्यक्ति हैं ।

“कुमार ने भी काशी की हाँ में हाँ मिलाई । काशी ने कहा—‘कला-परिषद्’ की दूसरी बैठक परसों शाम में उन्हीं के यहाँ होगी ! आपको जरूर पहुँचना है !’

“कुमार ने कहा—‘अनुरोध करने की जरूरत नहीं । इसे मैं पकड़कर ले चलूँगा ! अध्याक्ष बना बैठा है ! जायगा क्यों नहीं !’

“मैंने काशी और कुमार की बातों का उत्तर नहीं दिया । वे दोनों उठकर चल दिए ।

“शाम को फलबाजार के जोशी-होटल में फिर दोनों से भेंट हुई । जोशी होटल कलाकारों का होटल था । होटल के मालिक जोशीजी स्वयं एक जोशीले शायर थे । वे नैनीताल के रहनेवाले थे । कुसुमा में बहुत दिनों से रहते थे । अस्पताल में ठीकेदारी भी करते थे । कोयले और दूध का ठीका था । जब से मैं कुसुमा में था, जोशीजी से मेरी मुलाकात दो-चार बार ही हुई थी, मगर जब कभी हुई थी तब ऐतिहासिक ही हुई थी । किसी दिन पाँच-पाँच घंटे तक की गोष्ठी भी । गोष्ठी में (मास्टर साहब) गोपालजी के गीत, जोशीजी के फड़कते हुए शेर और मेरी कविताएँ, बस यूँ चलती थीं, यूँ चलती थीं कि चलती ही चली जाती थीं । वहाँ एक-दो चित्रकार भी जुटते थे । दो छोटे-छोटे साप्ताहिक पत्रों के चार बड़े-बड़े सम्पादक भी आते थे । होटल का नाम खूब निकल चला था ।

“उसी जोशी होटल में जब जोशी और कुमार से भेंट हुई तो गोपालजी से भी हो गई । गोपालजी को मैं गोपालजी नहीं कहूँगा । क्योंकि मैं उन्हें गोपाल ही कहता था । हाँ, तो काशी, कुमार और गोपाल के कहने पर कृष्ण राजी हो गया !

“अर्थात् मैं मान गया ललित ! समझे न ?”

ललित जैसे झकझोर दिया गया हो ! उसने कहा—‘माफ कीजिए ! मैं समझ गया ! मुझे आपने बीच में कुछ न कुछ बोलते रहने की बात कही थी न ? मैं भूल जाता हूँ । या, यूँ कहिए, आप ही मौका नहीं देते !’

कृष्ण ने कहा—‘देखो ललित ! अगर तुम यह समझ लो कि तुम टोकने, रोकने और तंग करने के लिए ही बनाए गए हो तो तुम्हें तीन मिनट में तेरह मौके मिल सकते हैं ! ऐसे बहुत लोग हैं, ललित, जो बिना किसी तवज्जह-तरद्दुद के, हर दाल-भात में मूसलचन्द और हर जिक्र में जनाब खामखा बनकर तुम्हें टोक ही देंगे । क्या हम-तुम परिश्रम और लगन से वह कमाल हासिल नहीं कर सकते ?’

ललित हँसकर बोला—‘भैया ! मुझे लगता है कि वे लोग भी, आप कवियों की तरह ही, अवतार लेते हैं, गढ़े नहीं जाते !’

ललित की इस बात पर कृष्ण ने इतने जोर का ठहाका मारा कि पास की सीढ़ी पर सोया हुआ अजायबघर का दरवान कूदकर खड़ा हो गया । उसके कूदकर खड़ा हो जाने और मुँह बाकर अपनी ओर ताकने से ललित को भी जोर की हँसी आ गई । दोनों चार-पाँच मिनट तक हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए । दरवान ने समझा कि दोनों ही पागल हैं । वह वहाँ से दूर, एक पेड़ के नीचे जाकर सो गया । मगर नींद की गोद में गिरने से पहले उसने ललित और कृष्ण को बड़े गौर से देखा कि कहीं सो जाने के बाद तो कोई खतरा नहीं आ जाएगा ! मगर उसकी आँखें तुरंत झप गई ! या तो नींद के मारे उसे भावी खतरे पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिला या खतरे की कोई आशंका ही नहीं दिखाई दी । कुछ भी हो । दरवान के सो जाने पर ललित ने पूछा—‘हाँ, तब क्या हुआ ? आप उस बैठक में गए ?’

‘हाँ ! मैं बैठक में गया । जाने पर वहाँ मेरी बड़ी आवभगत हुई । उस बैठक का सभापतित्व भी मैंने ही किया । मैंने काशी और कुमार को ही नहीं, बल्कि सभी कलाकारों को चेतावनी दी कि हमें प्रतिक्रियावादी बनकर कला की सेवा नहीं करनी चाहिए । उससे कला का उद्देश्य पूरा नहीं होता; आपस का मनमुटाव ही बढ़ता है ।

“सबने मेरी बात पसन्द की । सभा की औपचारिकता से फुर्सत पाकर कुमार ने काशी के कान में कुछ कहा । फिर काशी उठकर देवीजी के पास गया । देवीजी अपने पति शर्माजी के साथ आराम-कुर्सी पर बैठी थीं । उन्होंने कहा—‘उस दिन मैंने जो आपसे प्रार्थना की थी, उसीके विषय में निवेदन कर रही हूँ । मैंने सोचा है, पहाड़ी गीतों और नाचों के आधार पर एक नाटक खेला जाय । गीत और नृत्य मेरे दिमाग में है । अगर आप उन्हें जोड़कर एक कथा तैयार करें तो यहाँ के लिए वह एक इतिहास बन जाय !’

“मुझे देवीजी की सूझ इतनी सुखद, मौलिक और मनोहर मालूम हुई कि सब के सामने मैंने कहा—‘अगर आप लोगों का आशीर्वाद हुआ तो ऐसी चीज तैयार करूँगा कि ‘न भूतो न भविष्यति !’

“मेरी इस उत्साहवर्द्धक घोषणा पर तालियाँ गड़गड़ा उठीं । देवीजी के पतिदेव ने मेरी ओर इशारा करके धीरे से कहा—‘जीनियस !’

“उपस्थित लोगों को इस योजना से बहुत प्रसन्नता हुई । कुमार ने उठकर चारों ओर देखा और कहा—‘अरे ! सिद्धू बाबू कहाँ गए ?’ तब मेरा भी ध्यान उधर गया । मैंने कहा—‘यह तो खूब रहा !’ मेहमान लोग यहाँ इतनी देर से बैठे हैं और मेजबान साहब ही नदारद !’

“एक सज्जन ने, जो चुपचाप कोने में बैठे थे, कहा—‘वे चाय-जलपान की फिर्क में हैं ! अभी आए जाते हैं ।’ उन्होंने अपना वाक्य समाप्त ही किया था कि एक सज्जन सूट-बूट में लैस, दो-तीन नौकरों के साथ, मय जलपान के, कमरे में दाखिल हो गए ! आते ही उनकी नजर मुझपर और मेरी उनपर ! दोनों के बदन में जैसे बिजली दौड़ गई ! वे लड़खड़ाकर पास के सोफे पर गिर पड़े । काशी या किसी को भी उस रहस्य का पता नहीं चला

सका । काशी ने कहा—‘कृष्ण जी ! आप ही सिद्धू बाबू हैं, कुसुमा के सबसे बड़े रईस ! कलाप्रेमी और दानी कर्ण !’

“मैंने कुर्सी छोड़कर उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने ‘भी सोफा छोड़कर उठने की कोशिश की किन्तु उठ नहीं सके । सिद्धू बाबू को देखकर मुझे इतनी परेशानी हुई कि, जल्दी से जल्दी, वहाँ से चल देना ही मेरे लिए एकमात्र रास्ता रह गया । मेरी जल्दीबाजी देखकर प्रायः बहुत लोग चौंके, मगर कारण कोई नहीं जान सका । गोपाल मेरा अन्यत्न मित्र !—उसे मेरी यह हरकत बहुत विचित्र लगी । उसने बाहर आकर पूछा—‘तुमने चलते समय इतनी अजीब उतावली क्यों दिखाई ?’

“मैंने काँपते हुए कहा—‘गोपाल ! एक भयानक घटना हो गई है ! वह आदमी जिसे सिद्धू बाबू कहते हैं, मुझसे पहले से परिचित है !’

“गोपाल ने पूछा—‘कहाँ से ?’

“मैंने कहा—‘बनारस में इससे मेरी एक बार मार-पीट हो चुकी है । मैं हिन्दू विश्वविद्यालय से आ रहा था और यह एक मोटर में शराब पीकर अपने कुछ दोस्तों के साथ वेश्याओं के मुहल्ले से लौट रहा था । मैं भी अपने एक मित्र के साथ कार में सवार था । उसने हमलोगों को जाने का रास्ता नहीं दिया । एक जगह तो झूठा हाथ देकर ऐसा किया कि लगा, हमलोग टकराकर मर जाएँगे । फिर हमारे मित्र ने बाएँ हाथ से मोटर आगे निकाल ली और रास्ते को घेर लिया । हम दोनों बाहर आ गए । वह भी अपने मित्र और ड्राइवर के साथ बाहर निकला । शराब की बदबू के मारे तीनों बेतरह महँक रहे थे । उसने छूटते ही मेरे मित्र को गाली निकाली । मुझ से रहा नहीं गया । मैंने लपककर ऐसा धूँसा जड़ा कि वह पास की एक नाली में जा गिरा । मेरे दोस्त ने चिल्लाकर पुलिस को पुकारा । इस पर तीनों मोटर में चढ़कर चम्पत

हो गए । हमलोग फिर वहाँ से अपने डेरे की ओर लौट आए । यह वही आदमी है गोपाल !'

"गोपाल यह दुर्घटना सुनकर सन्न रह गया । उसने पूछा—
'तुम ठीक-ठीक पहचान रहे हो उसे ?

"इतना ठीक, जितना कि तुमको पहचान रहा हूँ !"

"गोपाल ने सिर पकड़कर कहा—'इस घटना ने तो 'चन्द्रकान्ता सन्तति' को भी मात कर दिया है ! गजब है !'

×

×

×

कहानी लिखते-लिखते ललित इतना अवाक् हो गया कि आगे लिखना छोड़कर बोला—'कृष्ण भैया ! अब आगे नहीं लिखा जायगा ! बाकी कल लिखाइएगा ! इस घटना को सुनकर मेरी चेतनाशक्ति ही कुण्ठित हो गई है !'

कृष्ण ने कहा—'जैसी तुम्हारी मर्जी ! अपने राम को क्या है !'

ललित ने देखा कि कृष्ण के चेहरे पर अभी तक उस दुर्घटना की छाप है, मगर वह उसे बड़ी सफलता से छिपा रहा है और इस चेष्टा में है कि उस दुर्घटना को सपना समझकर टाल दे । कृष्ण को इसमें सफलता मिल रही है कि नहीं, यह उसकी मुद्रा से ललित नहीं पढ़ सका !



४

देवीजी से सहयोग

पूर्वनिर्धारित समय पर ललित और कृष्ण दोनों पहुँचे । आज बिना किसी भूमिका के ही कृष्ण ने लिखाना शुरू किया । ललित तो कुंजी लिखने का आदी था ही । चुन्चाप बैठकर लिखने लगा । कोई छेड़खानी नहीं की ।

×

×

×

“दूसरे दिन शाम को जोशी होटल में कुमार, काशी और गोपाल, तीनों से मेरी भेंट हुई । गोपाल ने सिद्धू बाबू के विषय में चर्चा छोड़ी । मैं नहीं चाहता था कि गड़ा मुर्दा सरे-राह घसीटा जाय मगर चर्चा निकल गई तो निकल गई ! कुमार और काशी इस घटना को सुनकर स्तब्ध रह गए ।

“काशी ने कहा—‘यह तो बड़ी मुश्किल हो गई ! मैंने तो दूसरी बैठक भी वहीं रख दी है ।’

“मैंने जवाब दिया—‘तो उसमें क्या है ?’ मेरा अच्छा रुख देखकर काशी ने पूछा—‘कृष्णजी ! अगर हमलोग अपने आगामी नाटक का रिहर्सल सिद्धू बाबू के यहाँ ही करें तो क्या हर्ज है ? उनके पास मोटर भी है; फिटन भी ! कलाकारों को ले आने और ले जाने में काफी सुविधा होगी ।’

“मैं काशी की सूझ के साथ-साथ सिद्धू बाबू की उदारता का अर्थ भी भलीभांति समझ रहा था । लड़कियों, औरतों.....और तिस पर भी, कलाकार लड़कियों और औरतों के विषय में जो धारणा रईसों ने बना रखी है, उसके लिए, सिद्धू बाबू सरीखे रईस का, उदारता का यह महाजाल फैलाना तो अत्यन्त ही आवश्यक था ।”

“हाँ ! इस सिलसिले में एक और बात याद आ रही है । बहुत दिन पहले काशी ने, उनका नाम लेकर नहीं, बल्कि बनारस की बाई-जी के एक किसी रईस पतिदेव की चर्चा करते हुए कहा था कि जब वह हिन्दी प्रचारक संघ के रिहर्सल से लौट रहा था तो उसकी उन रईस साहब से भेंट हो गई थी । उन्होंने कहा था—‘काशी ! यार, हमें भी कहीं घुसाओ अपने कलाकेन्द्र में ! अकेले-अकेले !’ तो काशी ने कहा था—‘अच्छा, अवसर आने दीजिए ।’

“काशी की कही हुई वह बात उस समय बिजली-जैसी कौंधकर मेरे दिमाग में आ गई । मगर मैंने काशी को वह बात याद नहीं दिलाई; सोचा कि देखा जायगा ।”

ललित ने बड़ी कठिनाई से मौका निकालकर पूछा—‘काशी के विषय में आपकी कैसी धारणा थी ?’

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! धारणाओं से यह दुनिया नहीं चलती । तुम सच कहो, इस उपन्यास के शुरू करने के पहले तुम्हारे दिल में मेरे प्रति कैसी धारणा थी ? अच्छा, सच बताओ ! तुम मुझे क्या समझते थे ?’

ललित इस आकस्मिक प्रश्न से चक्कर में पड़ गया । उसने कहा—‘नहीं, कोई खास धारणा नहीं थी ।’

कृष्ण ने डपटकर कहा—‘मुझ से झूठ मत बोलो ललित ! हर बात छिपाने की कोशिश बहुत बुरी है । मैं तो तुम्हें अपनी जिन्दगी के सबसे गहरे और गुप्त रहस्य का भेद कह रहा हूँ, कह ही नहीं,

लिखाकर अपना पर्दाफाश कर रहा हूँ—और तुम एक अदना-सी बात भी छिपा रहे हो !’

कृष्ण की यह बात ललित को बिच्छ के डंक की तरह लगी । उसने कहा—‘मैं आपको अपना आदरणीय मानता हूँ, इसीलिए कहने की हिम्मत नहीं हो रही है !’

कृष्ण ने कहा—‘जब मैं स्वयं सुनने के लिए व्यग्र हूँ, तब तुम्हें कहने में क्या हर्ज है ?’

ललित ने सिर नीचा करके कहा—‘जब आप सागने के कुंज से मुझे देखा करते थे तो गुस्से में मैं आपको सनकी समझ बैठता था ।’

कृष्ण ललित की इस बात पर फिर ठहाका मारकर हँसा । ‘कितनी विशालता और मुक्तता है इस हास्य में !’—ललित ने सोचा ।

कृष्ण ने कहा—‘और अब, इस समय क्या धारणा है तुम्हारी ?’

ललित ने कहा—‘अगर आपने उसे भी अपने ठहाके में उड़ा दिया तो ?’

कृष्ण फिर ठहाका मारकर हँसा ! ललित दो-तीन दिनों से कृष्ण के ये ठहाके सुन रहा है, मगर यह नहीं समझ पा रहा कि दिल में इतना बड़ा दर्द दबाए, दिमाग में इतनी आँधियाँ लिये, यह आदमी ठहाके कैसे मार लेता है ! शायद, उन पर विजय पाने के लिए ! संभव है, उन्हें छिपाने का ही प्रयास करता हो !!

कृष्ण ने ठहाका खत्म करके कहा—‘ललित ! तुम शायद मेरे ठहाके पर सोच रहे हो । लेकिन यह ठहाका ठहाका नहीं, बल्कि एक अभिनय है !—ऐसा अभिनय, जैसे एक अभिनेता को पुत्र-प्राप्ति की प्रसन्नता का अभिनय ठीक ऐसे वक्त करना पड़े, जब रंगमंच पर आने के दो मिनट पहले उसे अपने पुत्र की मृत्यु का तार मिल चुका हो ! मेरे ये ठहाके वैसे ही हैं ललित ! ठीक वैसे ही हैं !’

ललित के दिल में तो कुछ इस तरह का अनुमान था ही, जब उसने कृष्ण के मुँह से यह बात सुनी तो उसकी आँखें डबडबा आईं ।

कृष्ण ने ललित की यह कमजोरी देख ली । उसने तुरत अपनी दुर्बलता को काबू में किया और कहा—‘ललित ! तुम अब भी बच्चों-जैसी ही हरकत करते हो ! चलो, आगे लिखो ! हाँ ! पहले मैं तुम्हारे सवाल का जवाब दे लूँ । काशी के विषय में मेरी धारणा अच्छी नहीं थी । वह एक प्रतिभाशाली लड़का था—अच्छे खानदान का—मगर बचपन से ही पथभ्रष्टता के वातावरण में उसने अपनी सारी अच्छाइयाँ भुला दी थीं । मैं उसकी सभी बुराइयों से परिचित था । मैं, बुराइयों के वावजूद भी उसे इसलिए प्यार करता था कि वह मुझसे कुछ भी नहीं छिपाता था । यूँ तो वह सिर्फ झूठ ही झूठ बोलता था, मगर मेरे साथ भरसक सच बोलने की कोशिश करता था । मेरी यह आन्तरिक इच्छा थी कि वह एक संभ्रान्त और भला आदमी बन जाय । लोग उसे आदर दें । परिवार में उसके प्रति स्नेह उत्पन्न हो । और कोई खास बात नहीं थी । हाँ ! तो कहानी लिखो !

“काशी को मैंने कुछ नहीं कहा । जब होटल से हमलोग उठे तो कुमार ने पूछा—‘वहाँ बैठक रखी जाय न ?’

“मैंने कहा—‘जब तुमलोगों ने कह दिया है तो वहीं होगी । मगर मैं नहीं चाहता कि भले घर की बहू-बेटियों को लेकर हमलोग अपनी और उनकी भद् उड़ाएँ ! मुहल्ले या बाहर के लोग उस घर को बहुत ही शंकित दृष्टि से देखते हैं !’

“कुमार और काशी ने भी मेरा समर्थन किया । उसके बाद, निश्चित तिथि पर, हम सभी लोग बैठक में हाजिर हुए ! बैठक में सर्वसम्मति से तय हुआ कि नाटक का नाम ‘जिन्दगी’ रखा जाय । ‘जिन्दगी’ में ग्यारह पहाड़ी गीत हों और आठ पहाड़ी नृत्य । उसी के आधार पर एक जीवन-यात्रा तैयार की जाय । देवीजी गीत लिखकर ले आई थीं । नृत्यों के विषय में भी तय पा गया । गीतों को मैंने अपने पास रख लिया । नृत्य के विषय में मैंने संकेत लिख लिए ।

बैठक ने मुझे आदेश दिया कि मैं संपूर्ण नाटक दस दिनों के अन्दर ही लिख लूँ । बैठक समाप्त हो गई । बाहर आने पर देवीजी के पति, शर्माजी ने कहा—‘अगर कष्ट न हो तो आप कल हमारे यहाँ नाश्ता करें । उसी बहाने, देवीजी आपको अपने गीतों का तर्ज भी गाकर बता देंगी । तब आपको नाटक लिखने में काफी सहायता मिलेगी ।’

‘मैंने शर्माजी की राय बहुत पसन्द की । काशी ने जिम्मा लिया कि वह मुझे कल सुबह उनके घर ले जाएगा । जब हमलोग अपने मुहल्ले की ओर मुड़े तो कुमार ने कहा—‘कृष्ण ! तुम इस परिवार में जाकर मुग्ध हो जाओगे ! पूरा का पूरा परिवार कलाकार है । शर्माजी के तीन लड़के हैं, दो लड़कियाँ हैं । वे सभी संगीत नृत्य और साहित्य में शराबोर हैं । लगता है, कला उन्हें घुट्टी में पिला दी गई है !’

‘कुमार की बातें सुनकर उस परिवार पर मेरी बड़ी श्रद्धा हो गई । श्रद्धा के और भी कई कारण थे । सबसे पहले मेरा अपना परिवार था, जहाँ कला की कहीं पैठ नहीं थी । पत्नी बेचारी सीधी-सादी, साधारण औरत । हाँ ! विवाह के दस-पन्द्रह दिन बाद, जब मैं सुसराल गया था, तब कोशिश की थी कि सुसराल की ही हारमोनियम पर उन्हें कम-से-कम ‘हे प्रभो ! आनन्ददाता ! ज्ञान हम को दीजिए !’ वाला भजन ही सिखा दूँ ; मगर चार बार डाँटकर और दो बार दो चपत कसकर भी कामयाबी नहीं मिली थी । मेरे पिताजी कविता और संगीत के बहुत बड़े प्रेमी हैं, मगर बुजुर्ग हैं, दूर रहते हैं । उन्होंने हजारों रुपए उसके लिए गँवाए भी हैं । माताजी भी, अच्छे मूड में, सुन-वुन लेती हैं । भाई तो बैजू बावरा और तानसेन ही हैं । मेरी बाँसुरी लेकर वे ऐसी टेर टेरते हैं कि मालूम ही नहीं होता कि यह मधुर ध्वनि कन्हैया की बाँसुरी से निकली है या उनके बँलों के कोमल कण्ठ से ! दूसरा कारण है कि मैं बचपन से ही बंगाल में रहा हूँ । वह भी ढाका में । वहाँ दस-पन्द्रह वर्ष रहकर संगीत, कविता, नृत्य

और अभिनय के अतिरिक्त अब मेरे जीवन की आँखों में और कुछ नहीं जँचता । तीसरा कारण है मेरी व्यक्तिगत दुर्बलता और मेरा साहित्यिक जीवन । मेरी दुर्बलता और जिन्दगी, दोनों के लिए कला आवश्यक है; जैसे मछली के लिए पानी !”

ललित ने टोका—‘कृष्ण भाई ! क्या आप की तरह मैं नहीं बन सकता ?’

कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—‘और तुम्हें देखकर मेरी इच्छा होती है कि काश ! मैं ही तुम्हारी तरह हो जाता, ललित ! इस जिन्दगी में अपने हाल पर किसी को सन्तोष नहीं । लेखक प्रकाशक बनना चाहता है और प्रकाशक लेखक ! कवि बनिया बनने को व्याकुल है और बनिया कवि ! गरीब अमीर बनना चाहता है और अमीर सम्राट् । मगर हम सभी की सीमाएँ हैं, ललित ! अगर ये महत्वाकांक्षाएँ दूसरों की मर्जी के मुताबिक बदलती रहतीं तो आज जिस धरती पर हम-तुम बैठे हैं, वह आकाश हो गई होती और आकाश पाताल में समा गया होता ! मगर कुछ मजबूरियाँ हैं कि सब अपनी-अपनी जगह पर कायम हैं !’

ललित पर कृष्ण की बातें ऐसी छा गई कि वह कुछ भी नहीं बोल सका । कृष्ण ने देखा कि ललित चुप हो रहा है तो उसने पूछा—‘तुम्हें मेरी बातें तकलीफ तो नहीं देतीं ?’

ललित ने भावविभोर होकर कहा—‘काश ! ऐसी तकलीफ मुझे जीवन-भर मिलती रहती !’

कृष्ण ने देखा कि बातें फिर दूसरी ओर बढ़ रही हैं तो उसने कहा—‘चलो, आगे लिखो !’

“हाँ, तो मैं दूसरे दिन काशी के साथ कोकिलाजी के घर गया । उनके घर जाने पर मालूम हुआ कि वे मेरे पीछेवाले मुहल्ले में ही रहती हैं । उनके पतिदेव होमियोपैथ डाक्टर हैं । देवीजी चर्खा-क्लास में शिक्षण का काम करती हैं । बड़ा लड़का कालेज में पढ़ता

है; दूसरा स्कूल में; तीसरा छोटा-सा बच्चा है। नानी के पास रहता है। बड़ी लड़की की शादी हो गई है। वह अपने पति के साथ बम्बई में रहती है। दूसरी लड़की मैट्रिक में पढ़ रही है। बड़े लड़के को हारमोनियम से, दूसरी लड़की को साहित्य तथा संगीत से और दूसरे लड़के को नृत्य से बेहद शौक है। उन्हें घर पर जितनी शिक्षा मिली है, उसके अनुपात से कहा जा सकता है कि आगे चलकर सबके सब परिवार और देश का मुख उज्ज्वल करेंगे।

“भरपेट नाश्ता करने के बाद चाय आई। पान खाने के बाद देवीजी ने गीतों को गाकर सुनाया। शर्माजी ने तबला और काशी ने हारमोनियम पर साथ दिया। मैं हाथ और पैर के सहारे ताल देता रहा। बच्चे बड़े गौर से सब कुछ सुनते रहे। जब ग्यारहो गीतों के तर्ज सुन लिए तो, प्रेरणा अपनी कल्पना के साथ जाग्रत हो गई। मैंने पुलकित होकर कहा—‘शर्माजी ! आप धन्य हैं कि ऐसा परिवार पाया है ! अगर उचित समझें तो आज से मुझे भी अपने परिवार का एक सदस्य समझें।’

“शर्माजी ने उल्लास से कहा—‘यह हमारा अहोभाग्य है !’ देवीजी बोलीं—‘आपको अगर कष्ट न हो तो रोज एक बार आ जाया कीजिए !’

“मैंने कहा—‘मैं पूरी कोशिश करूँगा !’

“उसके बाद मैंने आज्ञा ली और काशी के साथ अपने डेरे की ओर चल पड़ा। चलते वक्त मैंने शर्माजी को कहा—‘मैं आज से ही नाटक लिखना शुरू कर दूँगा। और अगली बैठक में आप लोगों को सुनाकर आवश्यक परामर्श भी लूँगा !’

“पति-पत्नी मुझे बाहर तक पहुँचाने आए। काशी ने उनसे कहा—‘अब आपलोग जा सकते हैं। हम लोग खाना खाने के लिए नहीं लौटेंगे !’

“सब लोग हँस पड़े, और वह पारिवारिक हँसी मुझे इतनी अच्छी लगी कि दिल ने कहा—‘जीवन की धारा अब एक नई मोड़ लेना चाह रही है, न कृष्ण ! तुम सौभाग्यशाली हो !!’

“मैं अभी इसी वातावरण में डूबा चल रहा था कि काशी ने कहा—‘कहिए कृष्ण भाई ! कितने अच्छे लोगों से आपको मिला दिया ।’

“मैंने कहा—‘तुम्हारा मैं कृतज्ञ हूँ काशी ! मैं ऐसे ही वायुमंडल में रहना चाहता हूँ—जहाँ स्नेह हो, सौहार्द हो; कला और आत्मीयता हो !’

ललित लिखने-लिखते थक-सा गया था । कलम छोड़कर उसने अपने दाएँ हाथ की उँगलियों को चटखाना शुरू किया तो कृष्ण ने कहा—‘मैं समझ गया ! अच्छा ! आज इतना ही । जाओ ! मुझे भी आज कुछ लिखना-पढ़ना है । कल फिर सात बजे ! भूलना मत !’

ललित ने कहा—‘यह भी भूलने की बात है भला !’ काशक की सूरत हमेशा आँखों में टँी रहती है !’

इस बात पर दोनों हँसते हुए उठ खड़े हुए ।

‘जिन्दगी’ के चार दृश्य

कृष्ण ने ललित को आज कब से लिखाना शुरू कर दिया, यह किसी को नहीं मालूम। मगर जहाँ से मालूम है, अगर वहीं से हम उसे जान लें तो कथा-सूत्र हाथ से नहीं निकलने पाएगा। इस समय कृष्ण ललित को यह लिखा रहा है—

“आज मैं तुम्हें एक खास बात बताऊँगा, ललित ! जिस दिन मैं शर्माजी के यहाँ नाश्ता करने गया था, उस दिन मेरा हृदय बहुत ज्यादा प्रसन्न था। रात में बैठकर मैंने ‘जिन्दगी’ के चार दृश्य लिख डाले थे। जब मैंने उन्हें पढ़ा तो अपने आप पर लट्टू हो गया। इधर-उधर देखकर कहा—‘वाह मेरे कृष्ण ! लिखते हो तुम भी !’ चारो दृश्य इतने सुन्दर और मार्मिक उतर गए थे कि कुछ कह नहीं सकता। इच्छा हुई कि अभी शर्माजी के घर चला जाऊँ और सुना आऊँ। मगर घड़ी बदबस्त को भी इसी वक्त ग्यारह बजाना था। दिल मसोसकर रह गया। इतनी रात बीते वहाँ जाने पर लोग क्या समझेंगे ? शर्माजी और कोकिलाजी भी कहेंगे कि अच्छे अहमक लेखक से परिचय प्राप्त किया। यही कुछ सोच-समझकर नहीं गया। रात की नींद भी हराम हो गई। लेकिन मुरादे जब मुदों तक की पूरी होती हैं, तब मैं तो अभी जिन्दा था ! ठीक उसी वक्त कुमार और काशी न जाने कहाँ से टपक पड़े। अन्धा चाहे दो आँखें ! मैंने उन्हें बहुत उत्साह

से बिठाकर 'जिन्दगी' के चारो दृश्य सुनाए । चारो दृश्य सुनकर दोनों की चारो आँखें मेरे लिए चार दृश्य बन गईं ।^१ कुमार ने उछलकर कहा—'कमाल है कृष्ण ! ऐसा नाटक कुसुमा को कौन कहे, कलकत्ते को भी देखने-सुनने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ होगा ।'

"काशी ने कहा—'इस पर वह नृत्य बाँधूंगा कि देखनेवालों को संभालनेवालों की जरूरत पड़ जायगी कृष्ण भाई !'

"कुमार ने कहा—'कल एक विशेष बैठक बुलाकर सभी सदस्यों को सुना दिया जाय ।'

"काशी ने पूछा—'सिद्धू बाबू के यहाँ ही न ?"

"मैंने तुरत कहा—'हाँ ! उन्हीं के यहाँ ! मगर यह अन्तिम बैठक होगी उनके यहाँ !'

"देखा कि काशी पीला पड़ गया । इसके थोड़ी देर बाद ही कुमार और काशी चले गए । मैंने एक-दो बार फिर चारो दृश्यों को पढ़ा । कहीं-कहीं हेर-फेर भी किया । करीब १२।। बजे नींद आई । उस सोने के समय एक अजीब मस्ती थी ।

"दूसरे दिन, सुबह ही काशी ने कला-परिषद् के सभी सदस्यों को सूचित किया । शाम में सिद्धू बाबू के हौल में विशेष कार्यकारिणी की बैठक हुई । सभी सदस्य नाटक के दृश्यों को सुनकर झूम गए । हर आदमी अपनी-अपनी तरह की प्रशंसा और दाद देने लगा । और मैं फूलकर कुप्पा !!"

'ललित ! तुम तो जानते ही हो कि कलाकार सम्मान और प्रशंसा का भूखा होता है । आदर से बिठाकर उसकी कला की तारीफ कर दो, वह आजीवन तुम्हारा गुलाम हो जायगा । मगर कहीं स्वाभिमान में ठेस लग गई तो तुम्हारा मुकुट भी पैरों से कुचलकर चला जा सकता है वह । कलाकार बहुत विचित्र जीव होता है ललित ! तुम्हें ऐसे अजीब जानवर किसी चिड़ियाघर में भी नहीं मिलेंगे !'

ललित ने मुसकुराते हुए कहा—‘चिड़ियाघर में बेशक न मिलें मगर अजायबघर की फुलवारी में जरूर नजर आ सकते हैं !’

ललित की बात पर कृष्ण ने अपना वहीं सुपरिचित ठहाका मारा । उसने कहा—‘ललित! तुम दिन-ब-दिन मजेदार आदमी बनते जा रहे हो !’

ललित बोला —‘पारस परस कुधातु सुहाई !’ कृष्ण को अपनी तारीफ अच्छी नहीं लगी । उसने थोड़ा गंभीर होकर कहा—‘हुआ हुआ ! चलो, लिखो !’

“हां ! कार्यकारिणी की विशेष बैठक समाप्त करते हुए कुछ बुजुर्ग सदस्यों ने राय दी कि मैं नाटक को बहुत शीघ्र समाप्त कर दूं । और इसका रिहर्सल भी तुरत ही शुरू कर दिया जाय । नाटक किस महीने की, किस तारीख को हो और रिहर्सल कब शुरू किया जाय, इस निश्चय के लिए कोकिलाजी, शर्माजी, शिवदेव बाबू, काशी और और कुमार की एक उपसमिति संगठित की गई । मैं उसका संयोजक चुना गया । इस उपसमिति की बैठक शर्माजी के घर पर चौथे दिन रखी गई ।

“तीसरे दिन करीब ग्यारह बजे, जबकि मैं घर पर नहीं था, शर्माजी ने, किसीको नाटक के चारो दृश्य सुनाने के लिए, मेरे घर पर अपनी दूसरी लड़की को ‘स्क्रिप्ट’ लाने भेजा । लेकिन मुझसे भेंट नहीं हो सकने के कारण वह एक-डेढ़ घंटा बैठकर वापस लौट गई । मैं जब बाहर से आया तो नौकर ने खबर दी । मैंने कहा कि अब अगर दुबारा कोई आए तो मुझे कहना । मैंने दो बजे एक सज्जन को होटल में बुला रखा था । करीब तीन बजे मेरा नौकर आया और उसने खबर दी कि शर्माजी की लड़की नाटक के लिए पन्द्रह-बीस मिनट से घर पर बैठी हुई है । होटलवाले दोस्त से बातचीत समाप्त हो चुकी थी । मैं घर पर गया । नाटक निकालकर उसे दे दिया । उसने कहा—‘मैं पहले भी आई थी । एक-डेढ़ घंटा बैठकर लौट गई !’ मैंने कहा—‘मुझे मालूम है ! तुम्हें बहुत तकलीफ हुई !’

“चलते वक्त उसने कहा—‘बाबूजी ने कहा है कि फुर्सत पाकर दर्शन दीजिएगा ।’

“मैंने” कहा—‘मैं कल प्रातःकाल आऊँगा ! कल बैठक भी तो है !’

“जब वह दरवाजे से बाहर जाने लगी तो उसकी पीठ पर स्नेह-पूर्वक थपकी देते हुए मैंने कहा—‘ऐसे परिवार में जन्म लेकर तुम धन्य हो !’

“उसने मेरी ओर देखकर कृतज्ञता प्रकट की और प्रणाम करके चली गई !”

ललित ने लिखना छोड़कर पूछा—‘आपको कोकिलाजी प्यार तो नहीं करने लगी थीं कृष्ण भाई ?’

कृष्ण ने पूर्वस्थित गंभीरता से कहा—‘बहुत ज्यादा ! सिर्फ वही नहीं, उनके पतिदेव, उनके तीनों लड़के, उनकी लड़की, यहाँ तक कि उनका नौकर भी ! सभी मुझे प्यार करते थे । मैं भी उन सब को बहुत चाहता था ! और, सच पूछो तो ललित ! मैं प्यार करने और प्यार पाने के लिए ही पैदा हुआ हूँ । इससे अलग मेरा कोई अस्तित्व नहीं,। देखो, मेरी यह हथेली ! शुक्र का स्थान कितना ऊँचा है ! कितना मांसल !!’ ऐसा कहकर कृष्ण ने अपनी दाहिनी हथेली ललित के सामने बढ़ा दी । ललित ने उसे बड़े गौर से देखा, मगर सामुद्रिक-विद्या में कोरा होने के कारण कुछ समझ नहीं सका । कृष्ण ने हथेली तो ललित के आगे कर दी मगर उसकी आँखों की तरफ नहीं देख सका, इसलिए उसने मान लिया कि ललित ने उसके कथन का सबूत अपनी आँखों से देख लिया है और उसकी बातों पर अब उसे पूरा विश्वास हो गया है । विश्वास की बात का जहाँ तक सम्बन्ध है, ललित अगर हथेली नहीं भी देखता, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता, मगर पल्ले न पड़ने-वाली सामुद्रिक-विद्या के समर्थन से उसपर कुछ रोब जरूर पड़ गया ।

कृष्ण इस बीच पहले कही हुई बात का सिलसिला भूल गया । उसने पूछा—‘मैं क्या कह रहा था ललित ?’

ललित ने कहा—‘आपने नाटक के चारो दृश्य शर्माजी की लड़की से भिजवा दिए थे ।’

कृष्ण ने कहा—‘हाँ, आगे लिखो !’

‘मैं दूसरे दिन सुबह शर्माजी के घर पहुँचा । अभी उपसमिति का कोई भी सदस्य वहाँ नहीं आया था । जाते ही नाश्ता-पानी का प्रबन्ध हुआ । चूँकि लोगों के आने में देर हो रही थी इसलिए शर्माजी ने अपने दूसरे लड़के सरोज से कहा—‘बेटा ! जरा कृष्णजी को कृष्ण-नृत्य तो दिखा दो ।’ सरोज ने कृष्ण की तरह त्रिभंगी मुद्रा में खड़े होकर बाँसुरी बजाने और राधा का उनके पाँवों पर लेट जाने का ऐसा अभिनय दिखाया कि मैं दंग रह गया । कितना होनहार लड़का है ! फिर उसने कुछ गाने भी गाकर सुनाए; गाने भी बहुत ही सुरीले और सुन्दर ! शर्माजी ने आवाज दी—‘रीता ! इधर आओ !’ शर्माजी की लड़की, जो मेरे यहाँ से नाटक ले आई थी, रसोई से बैठक में आ गई । उसने आते ही प्रणाम किया । बड़ा लड़का मनोज भी बाहर से आ गया । शर्माजी रीता से कुछ कहना ही चाह रहे थे कि ‘बंग कला केन्द्र’ के अध्यक्ष सेन महाशय पहुँच गए । कुमार और काशी भी उनकी पीठ पर ही आए । शर्माजी की बात मन में ही रह गई ! इशारों में ही बातें हुई कि पहले सेन महाशय को विदा कर दिया जाय तब आगे कुछ कार्यक्रम चले ।

‘शर्माजी ने सेन साहब से मेरा परिचय कराया । यूँ तो मैं पहले भी कई बार उनका नाम सुन चुका था मगर साक्षात्कार का वह पहला मौका था । सेन साहब कुसुमा में एक प्रसिद्ध कला-प्रेमी व्यक्ति माने जाते थे । मगर पार्टीबन्दी और व्यवसायी बुद्धि को लेकर ऊँचे क्षेत्रों में उनके प्रति कोई अच्छी धारणा नहीं थी । मैं भी उनके विषय

में कुछ इधर-उधर की बातें सुन चुका था । उन्होंने रोब जमाने के ख्याल से कहा—‘शर्माजी ! आप अपनी पूरी पार्टी के साथ हमारे संघ में मिल जाइए । हम ने यहाँ आकर जो कुछ किया है, वह तो आपसे छिपा नहीं है । एक बात और है । जब कभी मौका मिलता है, मैं अर्थ-मंत्री, शिक्षा-मंत्री, यहाँ तक कि प्रधान मंत्री तक को डाँट देता हूँ । एक दिन मैंने अर्थ-मंत्री से कहा—‘साहब ! आप कलाकारों को समझते क्या हैं ! आप राजनीतिज्ञों ने तो देश को चौपट कर दिया है ! अब क्या आप हमें भी नष्ट कर देना चाहते हैं ! मंत्रीजी ! अब आप लोगों का जमाना लद गया । कलाकारों का युग आ रहा है । होशियार हो जाइए ! ’ बस, कुछ मत पूछिए ! मंत्रीजी दुम दबाकर खिसक गए ।’

“सेन साहब की खोखली डींग सुनकर मेरा खून खौल गया । जो व्यक्ति चपरासियों तक की खुशामद करता फिरता है, अफसरों और उनकी बीवियों के पीछे दुम हिलाता रहता है, वही आज कुछ कलाकारों को मूर्ख बनाने के ख्याल से मिनिस्ट्रों तक को दुम दबाकर भगा देने की बात कर रहा है ! मुझसे रहा नहीं गया । मैंने कहा—‘सेन, साहब ! माफ कीजिएगा ! आप की बातें मेरी समझ में नहीं आई ! आप ने कलाकार और कला को इतना ऊँचा दिखाकर आकाश-पाताल के कुलाबे एक किये हैं, मगर यह नहीं बताया कि क्या अपना रोजगार बढ़ाने के लिए कला की आड़ में कलाकार बननेवालों में भी इतनी ‘हिम्मत आ सकती है ? क्या अपने शुद्ध स्वार्थसाधन के लिए दारोगा, अफसरों, या टुटपुँजिए राजनीतिज्ञों के पीछे जूती चट-खानेवाले कलाकारों में भी कभी सच्चा स्वाभिमान और असली बेफिक्री पैदा हो सकती है ? और, जहाँ तक कला की की बात है, माफ कीजिएगा, कला से रोटी की समस्या का निदान नहीं हो सकता सेन साहब ! जिस दिन आपने उसे रोटी के लिए चूल्हा बनाया, वह आपका हाथ जला देगी । कला जीवन के सत्य को सुन्दर करने की वस्तु है ।

रंग से आप लोहे को सुनहला बना सकते हैं, उसे तोड़-मोड़कर जंजीर या छेनी नहीं बना सकते ।’

“सेन साहब इतना कड़ा विरोध सहने को तैयार नहीं थे । उन्होंने उबलकर कहा—‘आप तो गृहस्थों की तरह बात करते हैं !’

“कुमार ने बीच में पड़कर कहा—‘सेन साहब ! कृष्णजी राष्ट्र-भाषा के इने-गिने कलाकारों में हैं । आप बहुत बड़े कवि और नाटक-कार हैं ।’

“तब सेन साहब ऐसे नीचे हुए, जैसे उबलते हुए दूध में एक लोटा पानी डाल दिया गया हो । बात असल यह थी कि मेरा परिचय कराते वक्त, शर्माजी ने उन्हें मेरे कवि और नाटककार के विशेषण से परिचित नहीं कराया था । सिर्फ एक प्रतिष्ठित व्यक्ति-भर कह दिया था । सेन साहब ने कहा—‘मुझे अब आज्ञा दीजिए । दरअसल मैं इधर से गुजर रहा था । अचानक आप लोगों की याद आ गई । सोचा—जमाने से भेंट नहीं हुई है, दर्शन तो कर लूँ । और, कृष्ण जी ! आपसे तो मिलकर बहुत ही खुशी हुई !’

“मैंने कहा—‘मैं भी कृतार्थ हो गया !’

“जब सेन साहब चले गए तो खिड़की से उन्हें काफी आगे बढ़ा देखकर हम सभी लोग खिलखिला कर हँस पड़े । यहाँ तक कि सरोज, मनोज और रीता भी !

“हम लोगों की हँसी समाप्त ही हुई थी कि शिवदेव बाबू आ गए । उपसमिति की कार्यवाही शुरू हुई । उन्हीं की प्रतीक्षा भी थी । उपसमिति में बहुत विचार-विमर्श के बाद तय हुआ कि नाटक आज से ठीक एक महीने के बाद खेला जाय । रिहर्सल पन्द्रह दिनों के बाद शुरू कर दिया जाय । मुझ से प्रार्थना की गई, कि मैं चार-पाँच दिनों के अन्दर ही नाटक समाप्त कर दूँ । उपसमिति के इस निर्णय से मैं सहमत नहीं था । क्योंकि मेरा विचार था कि टिकट बेचने तथा अन्य आर्थिक कठिनाइयों को हल करने के लिए कम-से-कम दो महीनों का

समय चाहिए । मगर जब शिवदेव बाबू ने कहा कि ठीक एक महीना बाद उन्हें विलायत जाना है तो मैं भी पहले ही फैसले पर राजी हो गया । इसके बाद उपसमिति की बैठक समाप्त हो गई ।”

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! अच्छा हो कि अब हम लोग भी अपनी उपसमिति की बैठक समाप्त करें ।’

ललित ने कहा—‘मैं तैयार हूँ !’

इसके बाद पाँचवें दिन की बैठक उठ गई ।



शर्माजी के घर

उपन्यास लिखाने का आज छठा दिन है । ललित लिख रहा है—

“शर्माजी का घर ऐसे स्थान में था, जहाँ से कुसुमा का पहाड़ी सौन्दर्य अनायास आँखों में उतर आता था । मैंने सोचा, उन्हीं के यहाँ जाकर, और दोमंजिले की उत्तरवाली कोठरी में बैठकर, नाटक लिखा करूँ । जब मैंने शर्माजी के सामने वह तजवीज रखी तो वे बहुत खुश हुए । इसके बाद, मैं रोज सुबह सात बजे वहाँ पहुँच जाया करता था ।”

—एक बात है ललित ! मैं जो तुम्हें यह उपन्यास सुबह सात बजे लिखाया करता हूँ, इसके पीछे उस नियमित सात बजे का बहुत बड़ा हाथ है ।.....खैर ! आगे लिखो ।

“मैं अपने डेरे पर सुबह छह बजे उठ जाता था और तैयार होकर सात बजे शर्माजी के यहाँ पहुँच जाया करता था ।

“एक दिन मैं शर्माजी के यहाँ जा रहा था कि काशी मिल गया । उसने कहा—‘मैं भी चल रहा हूँ ।’ हम दोनों शर्माजी के यहाँ साथ ही गए ।

“शर्माजी का घर बहुत बड़ा घर था मगर पैसों की कमी थी, इसलिए उन्होंने इधर-उधर की तीन-चार कोठरियां व्यवसायियों

और विद्यार्थियों को किराये पर दे रखी थीं । उन लोगों से किराया भी इतना मिल जाता था कि अपने पास से उन्हें नाममात्र ही किराया देना पड़ता था । शर्माजी का घर पूरब-मुँह का था । घर में घुसते ही जो कोठरी थी, उसमें एक विद्यार्थी रहता था । उसके सामने दो-तीन व्यवसायी लोग रहते थे । विद्यार्थी के गौर भी कई मित्र थे जो उसकी कोठरी में आकर खूब ऊधम मचाया करते थे । मैंने उनका वह अजीब रवैया पहले भी कई बार देखा था मगर वहाँ बैठकर कुछ लिखने-पढ़ने का मौका नहीं मिला था, इसलिए उनके हल्ला-गुल्ला से ज्यादा परेशानी नहीं हुई थी ।

“मैं काशी के साथ शर्माजी के यहाँ गया और जाकर बैठा ही था कि रीता आ गई । उसने आते ही पूछा—‘बाबूजी ! वह कहते थे कि मेरे लिए एक स्वेटर बुन दो !’

“शर्माजी ने पूछा—‘कौन ?’

“रीता ने बगल की कोठरी की ओर इशारा किया । वह लड़का उसी कोठरी में रहता था ।

“शर्माजी ने डाँटकर कहा—‘पढ़ना-वढ़ना छोड़कर स्वेटर ही बुनो सिर्फ ! जाओ ! पढ़ो !!’

“रीता रूठकर चली गई । जब वह आंगन में गई तो मैंने देखा, वह विद्यार्थी छत से नीचे उतर रहा है । रीता भी स्वेटरवाली बात छत से ही उतरकर पूछने आई थी । मुझे रीता की इस सरलता में भी एक विचित्र कौतूहल मालूम हुआ । जब वह विद्यार्थी नीचे आया तो उसने इशारे से कुछ पूछा । रीता ने क्या उत्तर दिया, सो मैं नहीं देख सका, क्योंकि वह आड़ में खड़ी थी ।

“वह विद्यार्थी उनके मकान में करीब दो महीने पहले से रह रहा था । शर्माजी को ‘बाबूजी’ और कोकिलाजी को ‘माताजी’ कहकर उसने रिश्ता भी जोड़ लिया था । उसको शर्माजी के घर में जिस लड़के ने रखवाया था, उसे रीता ‘भैया’ कहा करती

थी । वह अक्सर वहाँ आया करता था । उसका डेरा भी ठीक शर्माजी के घर के सामने ही था । वह विद्यार्थी सरोज को हमेशा कुछ न कुछ खिलाता-पिलाता रहता था । जब कभी चाय, दूध या चीनी की जरूरत होती तो रीता वेधड़क उस विद्यार्थी के कमरे में चली जाती और ले आती । उसके घर से जब कभी मिठाई वगैरह आती तो शर्माजी का परिवार उसका भी हिस्सेदार बन जाता । मुझे उस दिन के पहले भी कई बार, और उस दिन की भी उन हरकतों को देखकर कुछ शक-जैसा पैदा हुआ । फिरभी, मैं जलपान करके छत पर चला गया और नाटक के अगले दृश्यों की योजना बनाने लगा । काशी शर्माजी के पास ही रुक गया था । शर्माजी का वह दूर का रिश्तेदार भी था । थोड़ी देर के बाद जब वह ऊपर आया तो बोला—‘कृष्ण भैया ! आप इस परिवार के अंतरंग सदस्य हो गए हैं, इस नाते एक बात कहना चाहता हूँ । रीता बहुत चंचल और सरल लड़की है । वह विद्यार्थी, जो बाहर रहता है, उस पर डोरे डालता नजर आ रहा है मुझे ! किसी दिन कुछ हो गया तो हम, आप, सभी बदनाम हो जा सकते हैं !’

“काशी ने जिस व्यग्रता से ये बातें कहीं, उस हिसाब से मुझ पर कुछ ज्यादा असर नहीं पड़ा । मगर जो कुछ मैंने अपनी आँखों देखा और अपने कानों सुना था, उससे एक ईर्ष्या-भरी चिन्ता जरूर हुई !”

ललित ने पूछा—‘ईर्ष्या से आपका अभिप्राय ?’

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! आदमी एक तरफ जितना बड़ा होता है, दूसरी तरफ उतना ही नीच होता है ! जिस आदमी में नीचता आदमीयत से अधिक अनुपात में है, वह ज्यादा भयानक और राक्षसत्व के निकट है । ऋषि और महात्मा बन जाने के पहले मनुष्य इन राक्षसी और नीच प्रवृत्तियों पर ही तो विजय पाता है । महात्मापन और है क्या ? लेकिन ललित ! यह बहुत

कठिन काम है । चाहने से यह मिलता नहीं । घोर साधना और कठोर तपस्या करनी पड़ती है । त्याग और सहिष्णुता से जीवन व्यतीत करना पड़ता है । और तुम जानते हो कि मैं एक अत्यन्त साधारण प्रकार का मनुष्य हूँ !

‘रीता पर मेरी कोई बुरी नजर थी, यह मैं कभी नहीं मान सकता । मगर रीता एक अल्हड़ किशोरी थी; कलाकार थी; प्रतिभा और कुशायता की एक अर्द्धस्फुट कोमल कलिका; इसलिए, मेरे अवचेतन मन में क्या छिपा था, मैं नहीं कह सकता । हृदय और मस्तिष्क से तो मैं इतना ही जानता था कि मैं उस परिवार का एक सम्मानित सदस्य हूँ और, इसलिए, उसकी हर अच्छाई और बुराई का बराबर का हिस्सेदार भी ! खैर, छोड़ो इन बातों को ! तुम उपन्यास लिखो !’

‘काशी की बात सुनकर मैंने उससे कहा—‘काशी ! चूँकि हमलोग यहाँ एकाध घंटे के लिए आते हैं, इसलिए ये बातें हमें ज्यादा खटकती हैं; मन में शायद ईर्ष्या भी पैदा होती है । और, जहाँ तुम इस परिवार की बातें करते हो, वहाँ तुम अपने आपको क्यों भूल जाते हो ?’

‘ईर्ष्या की बात मैंने इसलिए कही कि काशी ने उसी भाव से वह शिकायत की थी । काशी किस प्रकार का लड़का है, इसकी भी मुझे अच्छी तरह जानकारी थी । काशी मुझे सख्त देखकर चुप हो रहा । थोड़ी देर बाद वह चला भी गया । मैं नाटक को आगे बढ़ाने की चिन्ता में पड़ा; मगर काशी की बात रह-रहकर दिमाग में आ जाती थी और योजना बनाकर भी मैं उसे कार्यान्वित नहीं कर पाता था । रह-रहकर दिमाग में एक बात चक्कर लगा रही थी कि चाय, दूध, चीनी, तेल और किराए के चन्द रुपयों के लोभ में शर्माजी और उनकी पत्नी रीता को उस विद्यार्थी के पास इस बेतकल्लुफी से क्यों आने-जाने देना बर्दाश्त करते हैं ! मुझे

लगा कि आर्थिक मजबूरी और हार्दिक सरलता ही इस कसूर का कारण है । मगर यह बात हो रही है बहुत बुरी, इसका मैं पूरी तरह एहसास करने लगा था । मैं उसी उधेड़-बुन में था कि रीता पान लेकर ऊपर आ गई । मैंने पान ले लिया और चुपचाप लिखने में व्यस्त हो गया । वह पास में बैठ गई । सामने के हरे-भरे खेतों की ओर भावुक तन्मयता से देखते हुए उसने कहा—‘यहाँ बैठकर लिखने में खूब मन लगता होगा !’

‘मैंने निगाहें ऊपर कीं और कहा—‘हाँ !’

‘उसने पूछा—‘मैं कोई खलल तो नहीं पहुँचा रही हूँ ?’

‘बिल्कुल नहीं !’

‘नाटक समाप्त हो गया ?’

‘अभी नहीं !’

‘कितने दृश्य लिखे गए हैं ?’

‘चार से छह हो गए हैं !’

‘मुझे नहीं सुनाइएगा ?’

‘जरूर सुनाऊँगा !’ कहकर मैंने उसे छहो दृश्य पढ़ सुनाए ।

‘नाटक को उसी भावना-भरी प्रतिक्रिया से उसने सुना और कहा—‘मुझे इसमें कौन-सा पार्ट दीजिएगा ?’

‘मैंने कहा—‘तुम्हें कई पार्ट करने पड़ेंगे !’ रीता ने बहुत प्रसन्नता प्रकट की और कहा—‘मुझे जहाँ-जहाँ पार्ट दीजिएगा, वहाँ-वहाँ मेरी सहेली मीता को भी रख दीजिएगा ।’

‘मीता कौन है ?’—मैंने पूछा ।

‘मीता मेरी सबसे प्यारी सखी है । मैं उसे बहुत प्यार करती हूँ । वह भी मुझे बहुत मानती है ! हम दोनों, बहनों से भी बड़कर हैं !’

‘कहाँ रहती है वह ?’

‘चाचा के यहाँ गई है !’

‘कब आएगी ?’

“वह तो आप लोगों पर है । जब बुलाइए ।’

“ये बातें हो ही रही थीं कि देवीजी ऊपर आ गई । उन्होंने कहा—‘उन्हें तंग मत कर ! लिखने दे !’

“रीता चुपचाप नीचे चली गई । देवीजी सामने बिछी हुई दरी पर बैठ गई । उन्होंने कहा—‘कृष्ण जी ! मैंने शर्माजी से राय लेकर पात्र-पात्रियों का चुनाव भी कर लिया है । आज मीता को भी पत्र लिख रही हूँ । मीता रीता की मित्र है । उसका नाम सुलोचना है । मगर रीता की वह इतनी प्यारी मित्र है कि रीता ने उसका नाम ही मीता रख दिया है । शिवदेव बाबू की भतीजी माधुरी भी काम करेगी । मीता, रीता और माधुरी के अलावा मीनाक्षी और उर्मिला को भी आप अपनी ही समझिए । पुरुष-पात्रों में लालाजी, सोमनाथ, मनोज और लक्ष्मण को कह दिया है । सभी लोग तैयार हैं । वाद्य-यंत्रों के लिए शर्माजी आज ‘कला प्रसार केन्द्र’ में जा रहे हैं । थियेटर के सभी वादक लोग हमलोगों के अपने आदमी हैं । मैं उन्हें बुला लाऊँगी । मगर एक ही बात का खटका लगा है रात-दिन !’ ऐसा कहकर देवीजी चिन्ता में पड़ गई ।

“मैं उनकी विवशता का इशारा समझ गया । मैंने कहा—‘उसका जिम्मा मुझ पर है । पैसे की वजह से यह महान कल्पना-कार्य पूरा नहीं हो सके, यह मैं जीते-जी बर्दाश्त नहीं कर सकता । आप सर्वथा निश्चिन्त रहें । मुझपर विश्वास रखें ।

“देवीजी ने कहा—‘आपपर तो इतना बड़ा विश्वास है कि हमलोग कह नहीं सकते । आपको पाकर लगता है कि हमारी डूबती नैया को किसीने हाथ में उठाकर किनारे रख दिया है !’

“देवीजी भावुकता में मेरी बड़ी-बड़ी तारीफें कर गईं । वे आगे भी कुछ कहतीं मगर उन्हें अचानक याद आ गया कि वे मेरा समय नष्ट कर रही हैं तो उठकर खड़ी हो गई और बोलीं—‘मैंने आपका बहुत कीमती वक्त बर्बाद कर दिया । आप लिखिए; मैं जाती हूँ !’

“ऐसा कहकर वे भी नीचे चली गई । मैं लिखता कहाँ ! रह-रह-कर रीता और उस विद्यार्थी का व्यवहार सामने आ जाता था और लेखनी आगे बढ़ने से इनकार कर देती थी । मैंने उचित समझा कि यहाँ से हटकर किसी और काम में लग जाना ही सब से अच्छा है । मैंने किया भी वैसा ही । सीढ़ी से नीचे उतरा तो एक दृश्य देखकर घबड़ा गया । रीता बैठक के सामने की कोठरी में बैठकर लालटेन साफ कर रही थी और वह विद्यार्थी आंगन के कुएँ के पास नंगे-बदन खड़ा होकर कुछ इशारे कर रहा था । उसके इशारे पर रीता पहले तो हँसी और फिर शरमाकर चौके में चली गई ! यह दृश्य देखकर बहुत ज्यादा दुख हुआ । हैरानी इसलिए नहीं हुई कि दोनों जवान थे । एक दूसरे को देखकर चहकना, आँख लड़ाना या पास आने का मन होना तो स्वाभाविक ही था मगर, फिर भी, मुझे दुख इसलिए हुआ कि उसके पिता-माता के चलते यह सब कुछ क्यों हो रहा है ! वास्तव में, मैं उस वक्त से आज तक उन दोनों का वास्तविक रिश्ता नहीं जान सका । मगर उस रंग-ढंग में शक-सन्देह की काफी गुंजाइश थी । उस दृश्य को देखकर तो मेरी शंका और मजबूत हो गई ! लेकिन मैं करता क्या, और कहता क्यों, इसलिए चुपचाप, अनजान बनकर, डेरे पर लौट आया ।”

इतना कहकर कृष्ण ऐसा उदास हो गया, मानों अब भी वह वही दृश्य देख रहा हो । ललित ने कई बार उसकी ओर निहारा, मगर कृष्ण आकाश की ओर ताकता रहा । ललित ने भी जब आँखें ऊपर उठाईं तो देखा—आकाश में एक बड़ा बादल, राक्षस-जैसा आकार लेकर खड़ा हो गया है और उसके पास की एक बादल की टुकड़ी, हाथ जोड़े हुए, औरत की तरह चुपचाप खड़ी है ।

ललित को आसमान की ओर ताकते हुए छोड़कर कृष्ण अचानक उठ खड़ा हुआ और न जाने कहाँ चला गया ।





आज नहीं, कल !

कृष्ण ने ललित से कहा—‘ललित ! आज मैं तुम्हें कुछ और अजीब बातें बतलाऊँगा । कल मैं अचानक उठकर चला गया, इससे तुम नाराज तो नहीं हो गए ?’

ललित बोला—‘जरा भी नहीं । हाँ ! कुछ दुखी जरूर हुआ था !’

‘क्यों ?’

‘इसलिए कि आप इन सब बातों को लिखाते हुए अपने मर्म और आत्मा पर कितनी ज्यादा चोट बर्दाश्त कर रहे हैं ! मुझे कभी-कभी लगता है कि उपन्यास लिखना छोड़कर कहीं भाग जाऊँ । बीती हुई बातों की याद दिला-दिलाकर मैं आपकी नित्यप्रति हत्या कर रहा हूँ कृष्ण भाई ! मुझे इसका बहुत दुख है ! कल जब आप उठकर चले गए, मैं नहीं कह सकता, मेरे दिल पर क्या बीती । आप के जीवन का दर्द मुझे नहीं मालूम, मगर मैं जब-जब आपको देखता हूँ, न जाने क्यों, सारा शरीर कांपने लगता है, हृदय बैठ जाना चाहता है !’

कृष्ण ने कड़ी आवाज में कहा—‘ललित ! मेरा समय मत बर्बाद करो । इन फिजूल की बातों से मुझे सख्त नफरत है ! भावुकता

की ऐसी बातों मैं बहुत कह-पुन चुका हूँ ! अब तुमसे कहने-सुनने की जरूरत नहीं है ! समझे ! चलो, अपना काम करो !' ललित ने सक-पकाकर बात बन्द कर दी और कौपी निकालकर लिखने लगा ।

“गोपाल इधर कई दिनों से नहीं मिला था । उस घटना के दूसरे दिन वह अपने बड़े भाई साहब के साथ आया । उसके भाई डाक-विभाग में काम करते थे । वे कुमुमा से करीब तीस मील दूर, एक बड़े कस्बे के पोस्टमास्टर थे । उनसे मैं पहले भी कई बार मिल चुका था । इस बार वे एक खास काम से कुमुमा आए थे । गोपाल ने मुझे एकान्त में बुलाकर कहा—‘कृष्ण ! भाई साहब तुम्हारे ही भरोसे यहाँ आये हैं । तुम्हें हर तरह से इनकी मदद करनी है और, देखो, पैसे-वैसे की बात अभी दोटक कर लो ।’ उसके बाद, भाई साहब से मैंने आने का कारण पूछा । उन्होंने कहा—‘अपने यहाँ हमलोग एक नाटक खेल रहे हैं । आप जानते ही हैं, वह एक छोटा कस्बा है । मैं ही नाट्य-समिति का प्रधान मंत्री हूँ । एक ऐतिहासिक नाटक खेल रहे हैं हमलोग । लेकिन, मेरी इच्छा है कि अगर आप अपनी परिषद् द्वारा हमारी कुछ सहायता करें तो हम बाजी मार ले जायँ । सुना है, आपलोगों ने खास ढंग के नृत्य और गीतों में विशेषज्ञता प्राप्त की है और उसी के आधार पर एक नाटक भी खेलने जा रहे हैं । गोपाल से मुझे सब कुछ मालूम हुआ है । मैं आप पर ही पूरा भरोसा रखकर आया हूँ ।’

“मैंने भाई साहब को आश्वासन देकर कहा—‘सहायता तो मैं जरूर करूँगा, लेकिन आपको भी हमलोगों की सहायता करनी पड़ेगी । हमारी ‘कलापरिषद्’ अभी एक नई संस्था है । उसके कलाकार गरीब हैं । मैं संस्था की ओर से यहाँ के भले घर की बेटी-बहुओं को नहीं ले जा सकता । मगर, हाँ ! अगर आप उन्हें उचित पुरस्कार दें तो व्यक्तिगत रूप से मैं उन्हें मना लूँगा ।’

“भाई साहब ने पूछा—‘अन्दाजन कितने रुपए लगेंगे ?’

“मैंने कहा—इधर से कार में ले चलना होगा । कार में ही वापस कर देना होगा । अगर कार संभव नहीं हो तो बस में भी हम लोग चल सकते हैं; मगर दो बेंचें रिजर्व करा लेनी पड़ेंगी । दोनों और का किराया और दो सौ रुपए नगद । समझिए कि ढाई सौ के अन्दर ही अन्दर सब कुछ निबट जाएगा ।’

“भाई साहब ने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा—‘ठीक है । मैं इतना दूंगा । मगर देखिए कृष्णजी ! इज्जत का सवाल है । चाहे किसी भी कारण से, कहीं आप लोग नहीं आ सके तो मैं मुंह दिखाने लायक नहीं रह जाऊंगा ! परसों ही नाटक है । आप लोग परसों सुबह की बस से चलिए । अड़्डे पर आप दो घंटे में पहुँच जाइएगा । वहाँ कार लेकर हमलोग स्वागत में हाजिर रहेंगे । अड़्डे से एक मील पर बस्ती है । लेकिन यह ख्याल रखिए कि ६ बजे सुबहवाली बस जरूर मिल जाय, वरना दूसरी बस शाम को चार बजे खुलती है ।’

“भाई साहब ने बस के किराए और रास्ते के पान वगैरह के लिए चालीस रुपए दिए । चलते वक्त उन्होंने आने की गम्भीरता बताकर चेतावनी भी दी और नमस्कार लेकर विदा हो गए । गोपाल भी उन्हींके साथ चला गया । भाई साहब गोपाल ही के यहाँ ठहरे थे ।

“भाई साहब को विदा देकर मैं शर्माजी के घर गया । सरोज को भेजकर काशी और कुमार को भी बुलवाया । जब सब लोग एकत्र हो गए तो मैंने गोपाल के भाई साहब की बात कही । पहले तो बहुत विरोध हुआ, मगर पुरस्कार की बात सुनकर प्रायः सभी लोग डीले पड़ गए । काशी ने कहा—‘हाँ, तो जब गोपालजी के भाई साहब की बात है तो चलना ही पड़ेगा ।’ शर्माजी, कोकिलाजी, सरोज, रीता, काशी, कुमार, गोपाल और लक्ष्मण के चलने का कार्यक्रम निश्चित हुआ । विचार हुआ कि वहाँ राधा-कृष्णवाला नृत्य, पहाड़ी गीत और इसी तरह की दो और चीजें प्रस्तुत की जायँ; शाम

को उसका रिहर्सल भी कर लिया जाय । यह सब कुछ तय करके मैं काशी और कुमार के साथ घर लौट आया ।

“शाम को ६ बजे रिहर्सल था । हम सभी लोग इफ्टे हुए । रीता और सरोज का राधा-कृष्ण-नृत्य, ताल पर भाव-भंगिमा के साथ ठीक कर लिया गया । मौके-बेमौके के लिए राक्षस-सुन्दरी नृत्य भी दुरुस्त कर लिया गया । कोकिलाजी ने अपने लिए दो गाने भी तैयार कर लिये । जब रिहर्सल समाप्त हो गया और हमलोग बाहर निकले तो देखा—रीता उस विद्यार्थी के कमरे में पर्दे को पकड़कर खड़ी है और वह कुछ कह रहा है । हम लोगों को देखकर रीता घर में चली गई और विद्यार्थी आगे पड़ी हुई किताब को पलटने लगा ।

“काशी ने थोड़ी दूर आगे बढ़ जाने पर मुझे एक तरफ खींच कर व्यंग्य से कहा—‘देखा आपने ? बस चुपचाप रहिए, जब तक कि कोई दुर्घटना नहीं हो जाती !’

“मुझे रीता को उस प्रकार देख कर इतना क्रोध हुआ कि मैंने वह गुस्सा काशी पर ही निकाल दिया ।—‘काशी ! तुम एक नंबर के गुंडे हो ! आखिर तुम्हें इतनी बेचैनी क्यों है ? जाने दो जहन्नुम में ! हम कौन होते हैं, दूसरों के बीच टांग अड़ानेवाले ?’ मैंने ये बातें इतने जोर से डांटकर कहीं कि बाकी सभी साथी चींक पड़े । सबों ने पूछा—‘क्या बात है ?’

“मैंने कहा—‘काशी का कहना है कि कोकिलाजी ने जो गीत चुने हैं, वे मुझे पसन्द नहीं हैं ।’ लोग मेरे बहकावे में आ गए और उसके बाद उन गीतों को लेकर पक्ष-विपक्ष में इतनी बातें कही गईं कि हमलोग डेरे पर कब पहुँच गए इसकी भी खबर नहीं हो सकी । काशी ने मुस्कुराते हुए कहा—‘खैर ! जब उनकी यही पसन्द है, तो ठीक है; आप लोगों को क्या ?’ मैं भी हँस पड़ा । मेरी हँसी और काशी की मुस्कान किसी के भी पल्ले नहीं पड़ी; मगर कुमार को कुछ

शक जरूर हुआ, क्योंकि उसने भी रीता और विद्यार्थी को बहुत घूर-कर देखा था । जब सब लोग प्रणाम करके चले गए तो कुमार ने कहा—‘कृष्ण ! मुझे बहुत भयानक लग रहा है यह । रीता का वह ढंग कुछ अच्छा नहीं था । तुम्हारा क्या ख्याल है ?’

“मैंने कहा—‘बात असल में यह है कुमार ! कि मैं इन सब बातों में पड़ना नहीं चाहता । यह सब नाजुक चीजें हैं । शर्माजी और कोकिलाजी को ही जब यह बर्दाश्त है तो हम-तुम कौन होते हैं ?’

“कुमार ने कुछ सोच-समझकर कहा—‘ठीक ही कहते हो ! बेमतलब की सिरखप्पी से कोई लाभ नहीं । लेकिन एक बात है कृष्ण ! शायद, तुमने उस पर कभी नहीं सोचा । अगर, मान लो, वहाँ बदनामी का वातावरण तैयार हो जाय तो हम-तुम उसके साझेदार नहीं होंगे क्या ?’

“कुमार की बातें पते की थीं । मैंने बहुत गम्भीरता से उसपर विचारकर कहा—‘तुम्हारी आशंका तो ठीक है, मगर मैं इसमें पड़ना नहीं चाहता ! मेरे पड़ने का अर्थ बहुत बुरा होगा कुमार ! तुम्हीं लोग कभी मौका पाकर कोकिलाजी से इशारा कर देना ।’

“इसके बाद कुमार घर चला गया और मैं आँखों में रीता का पर्देवाला वह दृश्य कई बार लाकर सो गया । दूसरे दिन सुबह, जाने की इच्छा ही नहीं हुई । मन में एक अजीब उदासी और वैराग्य का भाव पैदा हो रहा था । शाम को चूँकि रिहर्सल था, और सरोज बुलाने भी आ गया था, इसलिए चला गया ।

“शर्माजी घर पर नहीं थे । कोकिलाजी हारमोनियम पर गीत ठीक कर रही थीं । मैं जैसे ही पहुँचा, सरोज ने कहा—‘कृष्णजी ! प्रणाम !’ कोकिलाजी बिगड़ीं—‘कृष्णजी मत कहा करो ! भैयाजी कहा करो !’ रीता भी वहीं खड़ी थी । उसने हाथ जोड़कर कहा—‘भैयाजी ! प्रणाम !’

“खुश रहो बेटा !’ मेरी जुबान से निकल गया । रीता ‘बेटा’ शब्द सुनकर बेहद खुश हुई । उसने माँ से कहा—‘मुझे जब कोई ‘बेटी’ कह कर पुकारता है तो मुझे बहुत गुस्सा आता है माँ ! भैयाजी तुम लोगों में पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने मुझे ‘बेटा’ कहके पुकारा है ।”

“रीता की भोली बातें सुनकर हृदय का सारा गर्द-गुबार हवा हो गया । मैंने कहा—‘तू है भी बेटा ही ! तुझपर अगर तेरे माता पिता बेटा-जैसा गर्व नहीं करते तो यह उनका अपराध है, और उस अपराध की सजा, जानती है, क्या है ?’

“रीता ने आतुर उत्सुकता से पूछा—‘क्या ?’

“मैंने कहा—‘यही कि सरोज को हम बेटी कहकर पुकारा करें ।’ इस बात पर सरोज इतना झल्लाया और लजाया कि एकबारगी उछल कर मेरी गर्दन पर सवार हो गया । उसी वक्त शर्माजी आ गए । आते ही उन्होंने डाँटा—‘उतर नीचे ! गदहा कहीं का ! यह कौन-सा दुलार है !’

“मैंने कहा—‘लड़कियों का दुलार ऐसा ही होता है !’ इस पर सरोज और ज्यादा गुस्से का अभिनय करता हुआ आंगन में चला गया । रीता ताली बजा-बजाकर हँसने लगी । शर्माजी, कोकिराजी और मैं, सभी हँस पड़े ! जब रीता ने अपने बाबूजी को ‘बेटा-बेटी’ वाला किस्सा सुनाया तो शर्माजी दुबारा हँस पड़े और ऐसा हँसे कि पाँच मिनट तक हँसते ही रह गए ।

“काशी, कुमार, लक्ष्मण और शिवदेव बाबू भी थोड़ी देर के बाद आ गए । रिहसल देखकर शिवदेव बाबू ने पूछा—‘यह क्या हो रहा है ?’ जब उन्हें सारी बात बताई गई तो बोले—‘कल मेरे यहाँ बाहर के कुछ लोग आ रहे हैं, वरना मैं भी चलता ।’ ऐसा कहकर वे चल दिये और जाते वक्त कहते गए—‘कृष्णजी ! अपने नाटक का भी रिहसल सिर पर है ! भूल मत जाइएगा ।’

“इस बात पर सबों का ध्यान ‘जिन्दगी’ पर गया । मुझसे नाटक के खत्म होने की बात दरियाफ्त भी की गई तो मैंने कहा—‘आपलोग रिहर्सल शुरू करें । मैं उसी बीच समाप्त कर लूंगा ।’

“कुमार ने कहा—‘अरे, यह बीहड़ जीव है ! जब पन्द्रह दिन में नाटक और उपन्यास की दो पुस्तकें लिख सकता है तो इस एकांकी की क्या बात है ! आप लोग अपना जिम्मा सम्हालिए ।’

“रिहर्सल खत्म हो चुका था । चाय बनने लगी । सर्दी का महीना । कोकिलाजी ने अंगीठी आगे बढ़ाते हुए कहा—‘कृष्णजी ! आपने अपना काव्य नहीं सुनाया । कुमार और काशी से तारीफें सुन-सुनकर तो हम लोग अधा गए हैं; मगर आज आपको सुनाना ही पड़ेगा ।’

“काशी और कुमार ने भी जोर दिया । शर्माजी बोले—‘आप लोग शान्त हो जाइए !’

“शर्माजी की यह डांट थी तो श्रोताओं पर, मगर उससे मैं शिकंजे में आ गया । खैर, मैंने अपने अधूरे काव्य की भूमिका समझाकर काव्य का प्रथम सर्ग आत्मविभोर होकर सुनाया । रीता काव्य को मूर्ति की तरह सुन रही थी । वर्णन के अनुसार, उसकी भाव-भंगिमा देखकर अचानक मैं रुक गया । कुमार ने पूछा—‘क्यों ?’ भूल गए क्या ?’

“मैंने कहा—‘हाँ !’

“याद करने के बहाने जब मैं कुछ सोचने लगा तो हृदय से आवाज आई—‘तुम्हारे काव्य की नायिका रीता ही है कृष्ण ! इसीकी प्रेरणा से तुम्हारा काव्य समाप्त होगा !’

“रीता ने कहा—‘फिर से पढ़िए न ! याद आ जायगा ।’

“मैंने वैसा ही किया तो याद हो गया । प्रथम सर्ग सुनकर सबों ने कहा—‘हिन्दी साहित्य को आपकी यह अनूठी देन होगी कृष्ण जी ! इसे तुरत समाप्त कीजिए ।’

“मैंने कहा—‘देखिए ! अगर आप लोगों का आशीर्वाद रहा तो समाप्त हो ही जायगी । मैं कुसुमा में आया भी तो इसीलिए हूँ !’

“तबतक सरोज चाय लेकर पहुँच गया । चाय पीकर हमलोग वहाँ से चल पड़े । शर्माजी और कोकिलाजी को कहा—‘आप लोग सुबह सात बजे तक तैयार रहिएगा । हम लोग रिक्शा लिये यहीं पहुँच जाएँगे ।’

“जब हमलोग बाहर निकले तो, सबसे पहले, सबों का ध्यान उस विद्यार्थी के कमरे की ओर ही गया, जिसमें एक मोटा-सा ताला बन्द था । काशी ने एक ठंडी साँस ली । कुमार प्रसन्न हो गया और मुझे तो सबसे ज्यादा सन्तोष हुआ ।”

ललित ने रीता के सम्बन्ध में बहुत-बहुत बातें पूछनी चाही थीं, मगर पहले जो कोकिलाजी के विषय में एक प्रश्न पूछकर उल्लू बन चुका था, सो इन जिज्ञासाओं को वह दबाकर ही रखे चला जा रहा था । किन्तु अब उससे रहा नहीं गया । उसने पूछा—‘कृष्ण भाई ! आप क्या सचमुच रीता को.....?’

ललित का यह अधूरा प्रश्न सुनकर कृष्ण उठ खड़ा हुआ और बोला—‘इसका उत्तर कल दूँगा । आज नहीं !’

कृष्ण ने सिगरेट सुलगाई और धुएँ की दो छोटी-बड़ी अँगूठियाँ ऊपर फेंककर सामने के कुंज की ओर चला गया ।



८

कला-प्रदर्शन

ललित ने आज कौपी खोलते हुए कहा—‘आज आपको मेरे प्रश्न का उत्तर देना है; याद है न ?’

कृष्ण बोला—‘याद तो नहीं था । मगर अब याद हो गया है । देखो, ललित ! तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मैं अभी नहीं देना चाहता ।’
‘क्यों ?’

इसलिए कि उपन्यास में आगे आनेवाली सारी दिलचस्पियों से तुम्हारी उत्सुकता का सम्बन्ध खत्म हो जायगा । अभी तुम धीरज से लिखते चलो । ये सारी बातें तो आखिर तुम्हें ही लिखनी हैं । हाँ ! चलो, आगे लिखो !’

बेचारा ललित चाहते हुए भी कुछ नहीं कह सका और लिखने लगा ।

“नवम्बर का महीना था । पहाड़ी जगह होने के कारण सर्दी में जो कनकनी थी, वह हड्डियों में घुस रही थी । सात बजे तक तैयार होकर मैं, काशी और कुमार शर्माजी के घर पहुँच गए । वहाँ शर्माजी का पूरा परिवार तैयार हो रहा था । सिर्फ मनोज को घर की रखवाली के लिए छोड़ा जा रहा था । कोकिलाजी और ीता को तैयार होने में ज्यादा देर लगी । इसी बीच गोपाल भी आ गया ।

सबों का जलपान पहले से तैयार था । आठ बजे तक जलपान समाप्त करके हम् सभी लोग बस के अड्डे की ओर चल पड़े । रास्ते में लक्ष्मण से भेंट हो गई । वह अपने काम पर जा रहा था । मैंने उसे बुलाकर जबर्दस्ती रिक्शे पर बिठा लिया । मैंने आगे के रिक्शे पर बैठे काशी से कहा—‘काशी ! अगर लक्ष्मण से यहाँ भेंट नहीं होती तो सारा मामला ही चौपट था । घीसूभाई और उसके चेले तो धता बता ही गए !’

“काशी ने कहा—‘हमलोग किस्मतवाले हैं भैया !’

“गोपाल के भाई के समारोह को सफल बनाने के लिए हम-लोगों ने, खासकर शर्माजी और कोकिलाजी ने, अभिनेता घीसूभाई और उनके चेले को भी कहा था । उन्होंने जबान भी दी थी, मगर ठीक उसी मौके पर टाल गए थे ! कहते हैं कि घीसूभाई का पेट बिगड़ गया था और उनके चेले की शायद नानी मर गई थीं । खैर, थर्डक्लासी कलाकारों से सस्ते ही जान बच गई, यह कोई कम बात नहीं थी !

“अड्डे पर हमलोग साढ़े आठ बजे पहुँचे । गोपाल के भाई साहब ने बस में दो बेंचें रिजर्व करवा रखी थीं । बस में हमलोग बड़े इतमीनान से अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए । ड्राइवर के पीछे-वाली बेंच पर, सबसे शुरू में मैं, उसके बाद गोपाल, काशी, कुमार और लक्ष्मण । सामने की बेंच पर शर्माजी का पूरा परिवार । रीता ठीक मेरे सामने थी । जब मोटर चली तो पहाड़ी हवा के हिमानी झोंकों ने सबों की हालत पतली करनी शुरू कर दी । रीता के पास कोट तो था, फिर भी वह काँप रही थी । मैंने अपने तुरत के सिले हुए भारी-भरकम ओवरकोट से उसके सारे शरीर को लपेट दिया । वह बहुत ही आराम से यात्रा करने लगी । मैं लम्बा कोट पहने था; नीचे बंडी भी थी; कान में गुलबन्द था; मगर सारा शरीर पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा था । और लोगों

का तो मुझसे भी बुरा हाल था । गोपाल बेचारा तो पैर मोड़ कर मुझसे ऐसे चिपक रहा था, जैसे मेरे कोट की पाकिट में समा जाना चाहता हो ।

“काशी के पास काफी कपड़े थे । लक्ष्मण केवल कुर्ता ही पहने हुआ था । काशी ने अपनी बंडी उसे दे दी । मैंने देखा कि कपड़ों से यह सर्दी जाने को नहीं तो ऐसे-ऐसे चुटकुले सुनाने शुरू किये कि हँस-हँसकर हम सबों में काफी गर्मी आ गई । सिगरेट भी खूब फूँकी गई ।

“सिगरेट का धुआँ जब कभी रीता की तरफ जाता तो वह घबड़ा जाती । हाथ और फूँक से धुएँ को इधर से उधर बिखेर देने की उसकी चपल चेष्टा मुझे बहुत प्यारी लगी । मैंने सिगरेट का दूसरा कश लेकर धुआँ ठीक उसके मुँह पर फेंका । उसने आँखें मूँद लीं । धुआँ को हट गया जानकर जब उसने मेरी ओर देखा तो मुझे बहुत दुख हुआ । आँखों में आँसू भर आए थे । मैं कुछ कहता कि रीता ने ही कहा—‘आप सिगरेट पीना छोड़ दीजिए ! मैं नहीं पसन्द करती । बाबूजी ! आप भी मत पीजिए ! कैसे पीते हैं आप लोग ? मुझे इसके धुएँ और महँक से बहुत घृणा है ।’

“शर्माजी ने डाँटकर कहा—‘चुप !’

“मैंने सिगरेट सबों की आँख बचाकर बाहर फेंक दी ।

“हमलोग दो घंटे की यात्रा के बाद अड़्डे पर ग्यारह बजे पहुँच गए । वहाँ गोपाल के भाई साहब और शहर के मशहूर रईस रायबहादुर बालकरामजी अपनी तीन-चार कन्याओं के साथ फूलों के गजरे लेकर स्वागतार्थ खड़े थे । बस से नीचे उतरते ही जोरों का जयजयकार किया गया । ‘कृष्णजी की जय !’ तो इतनी बार हुई कि लगा, पाण्डवों की सेना कौरवों को हराकर हर्षोल्लास दिखा रही हो । बाहर दो मोटरें खड़ी थीं । यथोचित परिचय और कुशल-

मंगल के बाद हमलोग मोटरों की ओर बढ़े । नई मोटर की ओर सब का ध्यान था । मैं पुरानी मोटर की ओर चला । जाकर पिछली सीट के पीछे आखिर में बैठ गया । रीता रायबहादुर की लड़कियों के साथ अलग खड़ी थी । मुझे उस मोटर में बैठते देखकर वह तुरत आई और आकर मेरे पास बैठ गई; उसके बाद रायबहादुर की चारो लड़कियाँ; ड्राइवर के पास लक्ष्मण और सरोज बैठ गए । बाकी सभी लोग दूसरी मोटर में जा बैठे । भाई साहब ने आकर ड्राइवर को कुछ आदेश दिया और हमलोगों की मोटर चल पड़ी ।

“रास्ते में रीता मुझसे इस तरह सटकर बैठी कि मैं सकपका गया । मोटर में और भी कई लड़कियाँ थीं । न जाने क्या समझें वे ! मैं हट गया । रीता ने थोड़ी देर के बाद फिर वही हरकत की । जब मैंने उसकी ओर देखा तो उसने भी एक बार मेरी ओर देखकर निगाहें शर्म से नीची कर लीं । यह क्या हो रहा है मेरे साथ !! उफ् ! मेरा सर चकराने लगा । मैं सचमुच एक दूसरा कृष्ण बन गया—वह कृष्ण नहीं, जो दूसरों के मामले में अड़ंगा डालने से डरता था और अलग रहने का उपदेश देता था ।”

ललित ने कृष्ण को गौर से देखते हुए पूछा—‘अर्थात् आपनै.....’

कृष्ण बीच में ही बोल पड़ा—‘हाँ ! मैंने मन में उसी वक्त एक बात का निश्चय कर लिया ललित ! मैं जानता हूँ कि वह निश्चय भावुकतावश था और उसपर मैंने आगे चलकर विजय भी प्राप्त की, मगर उस वक्त तो मेरी भावुकता मेरे कर्तव्य पर हावी हो ही गई ! खैर ! जाने दो इन बातों को । आगे लिखो !’... ललित ने यह महसूस किया कि कृष्ण की गर्म साँस भावुकता की उष्णता से शराबोर होकर उसे भी प्रभावित कर रही है ।

कृष्ण ने कहा—‘हाँ, लिखो !’

“हमलोग थोड़ी देर के बाद रायबहादुर के बँगले पर पहुँच गए ।

उनकी बैठक के पीछे एक बड़ा-सा दालान था । उसीमें हमलोगों का बिछावन लगाया गया । स्नान-भोजन करके हमलोग सामने की छत पर धूप का मजा लेने चले गए । वहाँ कालीन बिछा दी गई थी । ७ बजे रात से ही ड्रामा था, इसलिए पहले कौन-सा नृत्य या गीत हो, इसके विषय में निश्चय हुआ । उसी निश्चय के अनुसार रायबहादुर और भाई साहब को सूचित कर दिया गया कि तीन बजे के करीब हारमोनियम, क्लेरियोनेट और तबलावाले को हमलोगों के पास भेज दिया जाय ताकि हमलोग उनके साथ अपना सारा कार्यक्रम मिलाकर ठीक कर लें ।

“तीन बजे के लगभग तीनों वादक आ गए । उन्हें नृत्य का भाव समझा दिया गया । ताल वगैरह नृत्य के साथ ठीक कर लिया गया । कोकिलाजी ने भी अपने तीन गीत दुहराकर दुरुस्त कर लिये । जब वादक चले गए तो हारमोनियम मैंने अपने हाथ में ले ली और अंग्रेजी-तर्ज में एक अंग्रेजी का ऐसा गाना सुनाया कि लोग हँसते-हँसते लोटपोट हो गए । काशी उठकर नाचने लगा । सरोज ने काशी की धोती पकड़कर मेरी नकल करनी शुरू कर दी । कुमार से भी नहीं रहा गया । वह उठकर भील-नाच की एक मुद्रा दिखा गया । शर्माजी, कोकिलाजी लक्ष्मण और गोपाल हँसते-हँसते बेहाल ! रीता तो मेरा गाना सुनकर ऐसे हँसी, ऐसे हँसी कि मैं भी हारमोनियम और गाना छोड़कर हँसने लगा । हँसी का वह फव्वारा इतना मुखरित हुआ कि रायबहादुर के यहाँ की औरतें दरवाजा खोल-कर झाँकने लगीं । आँगन में खड़े कुछ मजदूर भी दालान में आ गए । हमलोगों को अपनी हँसी के उस जादू का ज्ञान नहीं था, और जब ज्ञान हुआ तो सबलोग ऐसे चुप हुए, जैसे जिन्दगी में उन्हें कभी हँसी से वास्ता ही न पड़ा हो ।

“फिर सभी लोग, रात में जागने की तैयारी में, सो गए । रीता बैठक में जाकर पढ़ने लगी । वह स्कूल से छुट्टी लेकर

आई थी । परीक्षा भी नजदीक थी । सरोज भी रीता के साथ पुस्तक लेकर बैठ गया । मुझे नींद नहीं आई । मैं उठकर बाहर चला गया । छत पर जाकर अपने काव्य के विषय में सोचने लगा, मगर काव्य पर ज्यादा देर तक ध्यान नहीं टिक सका । रह-रहकर दिल धड़क रहा था । भविष्य में क्या होकर रहेगा, यह धड़कनें भी नहीं बता सकीं तो मन और उचाट हो गया । मैं छत पर टहल-टहलकर गुनगुनाने लगा । गुनगुनाने से भी तबीयत नहीं बहली । कुछ समय कट गया । शाम हो गई । पार्टी के सभी लोग जम्हाई ले-लेकर जगे । मेक-अप वगैरह की तैयारी शुरू हुई । रीता ने अपना मेक-अप स्वयं किया, वह भी, इतना सुन्दर और चित्ताकर्षक कि क्या कहूँ ! साक्षात् उर्वशी की तरह दीखने लगी वह । मुझसे रहा नहीं गया तो जाकर जूड़े में लगे हुए गजरे को जरा-सा ठीक कर दिया । रीता ने पूछा—‘कैसी लगती हूँ ?’

“उल्लू की तरह !” मैंने कहा और शर्माजी-कोकिलाजी एक साथ हँस पड़े ।

“काशी जब नींद से उठा तो उसका शरीर गर्म था । देखा गया तो १०२ डिग्री बुखार । काशी को राक्षस-सुन्दरी नृत्य में राक्षस का अभिनय-नृत्य करना था । डाक्टर को बुलाया गया । दवा दी गई । मगर काशी काम के लायक स्वस्थ नहीं हो सका ; इसलिए वह नृत्य नहीं हुआ । किन्तु रंगमंच पर जब रीता राधा बनकर और सरोज कृष्ण बनकर उतरे तो दर्शक निर्निमेष हो रहे । मैं रंगमंच के पीछे से ‘माइक’ पर कथा-सूत्र कह रहा था । मूक-अभिनय के भाव मेरे सूत्र के साथ यूँ अभिनीत हुए कि कस्बे-भर के लोगों की करतल-ध्वनि से सारा शामियाना आलोड़ित हो उठा । अभिनय आशा से कहीं अधिक सफल हुआ था । जब रीता, पर्दा गिरने पर, नेपथ्य में आई तो आकर मेरे पास सट गई । मैंने उसकी दोनों बाँहें पकड़कर कहा—‘तुम इस पर्वत की अम्बपाली हो रीता !’

“रीता मेरी प्रशंसा से इतनी प्रसन्न हुई कि बांह छुड़ाकर दालान में चली गई । मैं उसे बड़े गौर से देखता रहा । कितनी बड़ी कलाकार है इसी उम्र में ! उफ् !”

“शर्माजी और कोकिलाजी भी अपनी बिटिया का कला-कौशल देखकर बहुत गौरवान्वित हुए । सरोज ने पूछा—‘मेरा कैसा रहा भैयाजी ?’

“मैंने कहा—‘तेरा ही तो रहा ! कृष्ण मैं हूँ मगर तूने मेरी नकल करके कमाल कर दिया !’

“सभी लोग हँस पड़े और सरोज इतराकर कूदने लगा ।

“नाटक के बीच-बीच में कोकिलाजी का गीत भी खूब जमा था । अन्त में, राक्षस और सुन्दरी-नृत्य, लक्ष्मण और रीता ने अभिनीत किया था । मेरे पार्श्व-प्रवचन के साथ वह नृत्य भी इतना प्रभावोत्पादक उतरा कि दर्शकों को लगा कि वे किसी पेरिस के थियेटर में बैठे हुए हैं । रायबहादुर पेरिस देख आए थे । उन्होंने आकर कहा—‘मुझे तो लगा कि मैं पेरिस में ही बैठा हुआ हूँ । कृष्णजी ! आपकी ‘परिषद्’ हमारे प्रान्त में एक अभूतपूर्व जीवन पैदा कर रही है । मैं आपलोगों का सहयोग पाकर कृतार्थ हो गया ॥ वाह ! वाह !! क्या कहने हैं !!!’

“मैंने कहा—‘यह सब आप गुरुजनों का आशीर्वाद है राय-बहादुर !’

“रायबहादुर धार्मिक व्यक्ति थे । बोले—‘यह सब भगवान् की कृपा है कृष्णजी !’

“इतना कह-सुनकर रायबहादुर हमलोगों के भोजन के प्रबन्ध में चले गए । उनके जाते ही भाई साहब और गोपाल आए । भाई साहब के साथ वहाँ के और कई नवजवान कलाकार और सम्भ्रान्त नागरिक भी थे । सबों ने हमलोगों के कार्यक्रम की, मुक्त-कण्ठ से, भूरिभूरि प्रशंसा की ।’

“जब सब लोग चले गए तब मैंने भाई साहब से कहा—‘हमलोग सुबह ७ बजे ही चले जाएँगे । इसलिए अच्छा हो कि पैसों का अभी प्रवन्ध कर दीजिए !’

“भाई साहब तुरत बाहर गए और करीब आधा घंटा के बाद उदास सूरत लेकर लौटे । उनका उतरा हुआ चेहरा देखकर दिल धड़का । उन्होंने मुझे एकान्त में कहा—‘कृष्णजी ! कहते हुए बहुत शर्म मालूम होती है, मगर मैं आपमें और गोपाल में कोई फर्क नहीं समझता, इसलिए कह रहा हूँ । बात यह है कि हमलोगों के खजांची अभी-अभी घर चले गए हैं । उनका घर यहाँ से दस मील है । कल दोपहर को लौटेंगे । इस समय चालीस रुपये मेरे पास हैं । आप इन्हें स्वीकार कर लीजिए । गोपाल यहाँ रुक ही रहा है । मैं उसीकी मार्फत १५०) कल भिजवा दूँगा । आप विश्वास मानिए !’

“भाई साहब गोपाल के भाई थे । अविश्वास करने की तो गुंजाइश ही नहीं थी, मगर कवि-सम्मेलनों में सैकड़ों बार छला गया मैं, उनपर भी विश्वास नहीं कर सका । मैंने कहा—‘भाई साहब ! आप अभी ४०) दे दीजिए । मैं उनलोगों को दे देता हूँ । कल जब खजांचीजी आ जायेंगे तब रुपया लेकर ही मैं कुसुमा जाऊँगा; वरना, मैं तो अब ऐसी विचित्र परिस्थिति में हूँ कि बिना रुपए लिए, उनके सामने मुँह दिखाने की हिम्मत ही नहीं कर सकता । आपलोगों के विषय में मैंने सभी कलाकारों से इतनी बड़ी-बड़ी बातें कही हैं कि अब यहाँ का दूसरा रूप दिखाते हुए शर्म मालूम होती है ।’

“भाई साहब चुप हो गए । थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद बोले—‘अच्छा देखिए, मैं फिर कोशिश करता हूँ ।’

“ऐसा कहकर वे गए तो रात में २॥ बजे के करीब चार-पाँच आदमियों के साथ आए । २॥ बजे से ५ बजे तक उपाय सोचा

जाता रहा मगर पैसों का प्रबन्ध नहीं हो सका । ४०) लेकर मैंने अपने पास रख लिए । दालान में गया तो देखा सभी लोग बड़े आराम की नींद ले रहे हैं । मैं इधर पैसों के फेर में तबाह हो रहा था, उधर थके हुए कलाकार सपनों की दुनिया में हवाई किले खड़े कर रहे थे । मुझे कई बार आते-जाते देखकर काशी ने रजाई से सिर निकाला । उसे बुखार था । नींद तो आ नहीं रही थी । उसने पूछा—‘क्या बात है भैया ?’ मैंने कहा—‘काशी ! मैंने तुम लोगों को यहाँ बुलाकर बहुत बुरा काम किया । चार घंटों की थूकमफजीहत पर ४०) निकले हैं । वे लोग कहते हैं कि आप जाइए, रुपए पीछे से भिजवा दिये जाएंगे । सच पूछो तो, काशी, भाई साहब पर विश्वास होते हुए भी जाने की इच्छा नहीं होती । संस्था आखिर संस्था ही है । उसमें कई तरह के आदमी होते हैं । मैंने देखा है, संस्थाओं द्वारा जब कभी कोई उत्सव होता है तो बुलाने के समय तो बेतरह आदर-सत्कार होता है, मगर ऐन विदाई के वक्त, प्रायः ६० प्रतिशत संस्थाओं के मंत्री या आयोजक लोग, किसी न किसी जरूरी काम से, कहीं न कहीं चले जाते हैं ! इसलिए, तुम लोग तो जाओ । मैं शाम की बस से लौटूंगा ।’

‘मैं चूँकि कुछ ऊँची आवाज में बोल रहा था और सुबह भी हो रही थी इसलिए प्रायः सभी लोगों की नींद खुल गई । सबों को जब पैसों का किस्सा मालूम हुआ तो आशा पर तुषारपात हो गया । कोकिलाजी ने कहा—‘मारिए गोली ! आप पैसों के लिए मत रुकिए । गोपालजी को रहने दीजिए । आप हमारे साथ चलिए !’

‘औरों ने भी हामी भरी, मगर मैं अपना दायित्व और कर्तव्य समझता था । मैंने मन ही मन सोचा—अभी तो सब कोई भावुकता में पड़कर मुझे चलने के लिए बाध्य कर रहे हैं, और कुसुमा में पहुँचने के दूसरे-तीसरे दिन से ही गालियाँ देना शुरू करेंगे ! ले चलने के पहले तो यह कहा था, वह सज्जबाग दिखाया था, और वहाँ जाकर

टाँय-टाँय फिस्स ! देख लिया इनका प्रभाव ! कौन जाने, खुद ही मार लिया हो !

“मैं कलाकारों की महानताओं के साथ-साथ उनकी दुर्बलताओं का भी निकट से दर्शक रहा हूँ, इसलिए, सब लोगों को भेजकर मैं रुक गया और चार बजे की बस से कुसुमा लौटा ।”

ललित ने हँसकर कहा—‘आप भी उस्ताद आदमी हैं कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा—‘उस्तादों के यहाँ शागिर्द तो हमेशा आ जाते हैं ललित ! मगर कभी-कभी इन्स्पेक्टर भी पहुँच जाता है । तीन बजे तक तथाकथित खजांचीजी अपने गाँव से नहीं लौटे ! तब मैंने रायबहादुर के पास जाकर सारी परिस्थिति बता दी । वे बहुत दुखी हुए और भाई साहब को बुलाकर कहा—‘देखिए ! १५०) मैं दे देता हूँ, मगर खजांची बाबू के आते ही मुझे ये रुपए मिल जाने चाहिए ।’ रायबहादुर ने, रुपयों के लिए रात-भर ठहर जाने को लेकर, मुझसे माफी भी माँगी । रायबहादुर की कृपा से मैं आखिरी बस पकड़ सका, वरना, कितने दिन वहाँ रहने पड़ते, सो बेचारे भाई साहब भी नहीं जानते थे ! हाँ ! तुम उपन्यास लिखो !’

“कुसुमा में मैं ६ बजे शाम को पहुँचा । सर्दी के ६ बजे फरीब-करीब रात हो जाती है । अपने डेरे पर सामान रख, मुँह-हाथ धोकर करीब ७।। बजे शर्माजी के घर गया । मुझे देखते ही सब खुश हो गए ! शर्माजी ने मुस्कुराते हुए पूछा—‘ठहरना सार्थक हुआ कि नहीं ?’

“मैंने जवाब की जगह १०१) उनके पैरों के पास फेंक दिए । शर्माजी ने गद्गद होकर कहा—‘कृष्णजी ! आपको ठगना असम्भव है !’

“मैंने कहा—‘शर्माजी ! मैं सिर्फ़ अपनों से ही ठगा जाना पसन्द करता हूँ । हाँ, मगर अपने लोग भी मुझे मूर्ख बनाकर नहीं ठग

सकते । यूँ, जान-बूझकर ठगाने और गँवाने में मुझे बहुत मजा मिलता है । मजा क्या, एक आत्मिक सन्तोष होता है !’

“उसके बाद मैंने शर्माजी से वहाँ की सारी कथा कह सुनाई । कोकिलाजी ने कहा—‘हृद है ! जब पैसे नहीं होते तो ये लोग बुलाते क्यों हैं !’

“मैं बोला —‘अपनी भद्दा उड़वाने के लिए ! खैर, छोड़िए इन बातों को ! मुझे १५०) मिले हैं । १०१) आपकी सेवा में हैं । ३४) काशी को देना है और १५) लक्ष्मण को ।’ शर्माजी और कोकिलाजी ने मेरे इस बँटवारे को बहुत पसन्द किया ।

“मैं रात-भर की अनिद्रा और दिन-भर की घिसघिस से इतना थक गया था कि सिर में दर्द तक ले बैठा था । रह-रहकर आँखें झपक जाती थीं । रीता ने पूछा—‘चाय बना लाऊँ ?’

“शाबाश ! जरूर बना ला ! और हाँ, देख, पानी चूल्हे पर चढ़ाकर मुझे जरा वह ‘महल’ फिल्मवाला गीत तो सुना दे । तूने बहुत अच्छी कौपी की है उसकी !’

“रीता पानी रखकर मेरे पास आ बैठी और गाने लगी । उसी बेखुदी और दर्द से—

—आएगा ! आएगा ! आएगा, आनेवाला !! आएगा !!!

“मर्म में पैठ जानेवाले उन मादक स्वरों ने मुझे सुला दिया । इसका ज्ञान मुझे तब हुआ, जब उसने गाना समाप्त कर चाय मेरे सामने रख दी और कहा—‘उठिए न, चाय आ गई है !’

“मैं अकचका कर उठा । पैर से लगकर तिपाई पर रखी प्याली गिरते-गिरते बची ! मैंने कहा—‘धन्यवाद बेटा !’

“सभी लोग हँसने लगे; मनोज और सरोज भी ।

“थोड़ी देर बाद, मैं अपने डेरे की ओर चला । जब बाहर निकला तो रीता ने दरवाजा बन्द करते हुए हाथ जोड़कर धीरे से कहा—‘प्रणाम !’

“शर्माजी और कोक्लाजी भी बाहर आ गए थे इसलिए मैंने जोर से उत्तर दिया—‘खुश रहो, बेटाजी !!’

इतना लिखाकर कृष्ण ने ललित से कहा—‘ललित ! आज की लिखाई खत्म !’

ललित ने मुस्कुराकर धीरे से कहा—‘प्रणाम !’

कृष्ण हँसते हुए जोर से बोला—‘खुश रहो, बेटाजी !’



ह

नाटक की तैयारी

और दिनों की तरह ललित आज भी लिख रहा है—

“उसके दो दिनों के बाद तक कोई खास बात नहीं हुई । मैं शर्माजी के यहाँ रोज सुबह सात बजे जाता रहा । तीसरे दिन मेरे दिमाग में एक बात आई । मैंने सोचा कि हमलोग जो नाटक खेलने जा रहे हैं, उसके सम्बन्ध में एक प्रेस-कान्फरेन्स करें । मोधे, पत्रकारों को बुला लेना उचित नहीं होगा, इसलिए मैंने एक गोष्ठी का प्रबन्ध अपने घर पर ही किया । चाय-पान का भी इन्तजाम रखा गया । कुसुमा के प्रायः सभी कलाकार, कलाप्रेमी और सम्पादक एकत्र हुए । गोष्ठी में मैंने नाटक की तिथि की घोषणा की और एकत्र कलाकार बन्धुओं से सहयोग की अपील भी । गोष्ठी के अन्त में राक्षस-सुन्दरी नृत्य भी हुआ । मैं साथ-साथ कथा-सूत्र बोलता रहा । रीता और लक्ष्मण ने फिर वैसे ही कमाल दिखाया । कवि-गोष्ठी और चाय के बाद सभी लोग हमें, हमारे आयोजन के लिए, बधाई देने लगे । मैंने कहा—‘अभी तो कुछ हुआ नहीं ! अगर आप लोगों की शुभेच्छा से हम सफल हो गए, तभी यह बधाई हमारे योग्य होगी !’

“धीरे-धीरे सभी लोग चले गए । शर्माजी, कोकिलाजी, रीता और सरोज रह गए । मैंने नौकर को दुबारा चाय लाने की आज्ञा दी । सर्दी तो

थी ही। चाय आने के पहले रिहर्सल की तैयारी की बात होने लगी। रिहर्सल हो कहाँ, इसी का प्रश्न था। अन्त में, पास ही के एक खाली मकान में करने का निश्चय हुआ। मकान की मालकिन एक मराठी महिला थीं। तय हुआ कि उनसे मिलकर प्रार्थना की जाय। कोकिलाजी ने यह कार्य मुझपर और शर्माजी पर सौंपा।

‘मैंने उनसे कहा—‘देखिए, शर्माजी को वहाँ मत भेजिए !’

‘कोकिलाजी ने हँसकर कहा—‘कोई बात नहीं है ! आप साथ रहेंगे।’

‘रात के दस बज रहे थे। रीता और सरोज को कोकिलाजी ने कहा—‘तुम लोग चलो; हम लोग आते हैं।’

‘मैंने कहा—‘चाय पी लेने दीजिए !’

‘फिर चाय आ गई। और उसके बाद पूरा परिवार साथ ही चला गया। शर्माजी ने चलते वक्त कहा—‘आज रात में नाटक के कुछ और दृश्य लिख लीजिएगा।’

‘मैंने कहा—‘कोशिश करूँगा !’

‘उन लोगों के जाने के बाद मैंने नाटक की पाण्डुलिपि निकाली और थोड़ी देर तक प्रेरणा की प्रतीक्षा करता रहा। नाटक में कुल बारह दृश्य लिखने थे। छह दृश्य पहले ही लिखे जा चुके थे। उस दिन को गोष्ठी की सफलता और प्रेरणा, दोनों ने मिलकर फिर मेरी सहायता की। मैंने उसी रात चार दृश्य और लिख डाले। दृश्य भी ऐसे, जिनकी भाषा और टेकनीक को देखकर मैं खुद ही दंग रह गया ! मैं ऐसा कैसे हो गया हूँ, यह प्रश्न रह-रहकर मेरे दिमाग और दिल में चक्कर काटता था। स्फुरण की प्रतीक्षा में जहाँ महीनों लग जाते थे, वहाँ आजकल चौबीसो घंटे मिजाज मूड में ही रहता है ! क्या बात है ?’

‘बात क्या थी, सो तो अब तुम भी जान गए हो ललित ! मैं तुम से सच कहता हूँ, मैं एक सर्वथा दूसरा कृष्ण बन गया था। मेरे

रोम-रोम में भावना, कामना और वासना का निवास हो चला था । हर-घड़ी एक अजीब-सा नशा महमूस होता था । और उसी नशे में डूबा हुआ मैं न जाने कहाँ चला जा रहा था । खैर ! उस व्यक्तिगत भावुकता और इस उपन्यास से क्या वास्ता ! आगे लिखो !’ —कृष्ण जैसे अपने को जव्त करके बोला ।

“मैंने नए चारो दृश्यों को कई बार पढ़ा और पढ़ते-पढ़ते सो गया । सुबह निश्चित कार्यक्रम के अनुसार शर्माजी के यहाँ पहुँचा । रीता चौके में थी । बैठक में सिर्फ सरोज बैठा हुआ पढ़ रहा था । शर्माजी और कोकिलाजी छत पर धूप का आनन्द ले रहे थे । सरोज ने मेरे पहुँचते ही चिल्ला-चिल्ला कर घोषणा कर दी—‘भैयाजी आए हैं ! भैयाजी आए हैं !’

“रीता चौके से तुरत बाहर निकली । शर्माजी और कोकिलाजी भी नीचे आ गए ।

‘शर्माजी और कोकिलाजी से मैंने कहा—‘आपलोगों की आज्ञा का पालन हो गया है; मगर सिर्फ आज्ञा का पालन ही नहीं है वह ! सुनिएगा तो दिल बाग-बाग हो जायगा ।’

“रीता ने पूछा—‘नाटक समाप्त हो गया क्या ?’

“मैंने कहा—‘अभी नहीं ! चार दृश्य और लिख लिये हैं !’

“मैंने चारो दृश्य पढ़ सुनाये । शर्माजी, कोकिलाजी, रीता और सरोज, सभी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । शर्माजी ने कहा—‘सुन रही हैं न आप ! बस ! गीत भी ऐसे ही जमें, तब बात है ! और रीता ! तुमलोगों का काम इन दोनों से मुश्किल है । क्योंकि तुम्हारे अभिनय पर ही हमलोगों की सफलता निर्भर करती है ।’

“रीता ने कहा—‘अब तो रिहर्सल में भी कुछ ही दिन रह गए हैं । मीता को आपलोग तार देकर बुलवा क्यों नहीं लेते !’

“कोकिलाजी ने कहा—‘मैं अभी, अभी पत्र लिख देती हूँ । एक पहले भी लिखा जा चुका है ।’

“सरोज ने कहा—‘माँ ! कल डाकिया एक कार्ड दे गया था । तुम्हें देना याद नहीं रहा । मुझे लगता है कि मीता दोदी की हो चिट्ठी है ।’ ऐसा कहकर वह अपनी कोठरी की ओर बढ़ा । उत्सुकता से रीता भी उसके साथ हो ली । रीता दूसरे ही क्षण दौड़ती हुई आई और बोली—‘सच माँ ! चिट्ठी मीता की ही है । वह रिहर्सल शुरू होने के दिन ही आ रही है । बड़ा अच्छा है !’ वह खुश होकर नाचने लगी ।

“कोकिलाजी ने कहा—‘सखी को चिट्ठी पाकर कितना खुश हो रही है !’

“अल्हड़ रीता बोली—‘तुम बाबूजी का खत पाकर कैसे उछलने लगती हो ।’

“शर्माजी ने कहा—‘बिलकुल बेवकूफ लड़की है !’

“कोकिलाजी तो शर्म के मारे शर्माजी के पीछे हो लीं । मैंने बात बदलते हुए कहा—‘शर्माजी ! चलिए जरा रिहर्सलवाले मकान को मालकिनजी से मिल लिया जाय ।’

“उसके बाद मैं और शर्माजी मकानमालकिन से मिलने चले गए और उनसे सारी बातें कहकर अनुमति ले ली । वह स्वयं सितार बजाने की शौकीन थीं । कला-प्रदर्शन के नाम से ही प्रसन्न हो गई । उन्होंने कहा—‘यह सौभाग्य है कि हमारा खाली मकान कुछ दिनों के लिए साहित्य और संगीत के कलरव से गूँजता रहेगा ।’

“उन्होंने हमलोगों को मकान की कुंजी भी दे दी । अपनी सफलता पर अभिमान करते हुए हमलोग घर लौट आए । कोकिलाजी ने पूछा—‘क्या हुआ ?’

“शर्माजी बोले—‘जहाँ कृष्णजी जायँ, वहाँ काम नहीं हो ! ऐसी-ऐसी बातें कहीं इन्होंने कि देवीजी लहालोट हो गई ! अपना अहोभाग्य बतलाते हुए उन्होंने चाभी भी दे दी है ।’

“मैंने देखा कि रीता बड़े आश्चर्य से मेरी ओर देख रही है । कोकिलाजी ने कहा—‘कृष्णजी जादू जानते हैं ! जादू !!’

“रीता मुस्कराकर आंगन में चली गई । उसी वक्त काशी और कुमार भी आ गए । काशी ने कोकिलाजी की बात सुन ली थी । उसने कहा—‘अगर कृष्ण जी जादू नहीं जानते होते तो गोपियाँ यूँ ही नहीं पागल बनी फिरतीं !’

“इस पर बड़े जोरों का कहकहा लगा । रीता हँसी में शामिल होने के लिए अन्दर आ गई । काशी ने कहा—‘तू कहाँ आई है रे !’ खैर, आ गई है तो गोपियों को जरा पान बनाकर खिला दे !’

“इसपर फिर ठहाका लगा । कुमार ने कहा—‘अब तो तीन-चार ही दिन रह गए हैं रिहर्सल में, कृष्ण ! नाटक खत्म हो गया ? रिहर्सल होगा कहाँ ?’

“कुमार को जब अपने प्रश्नों का उत्तर मिल गया तब काशी को भी बहुत प्रसन्नता हुई । इसकेबाद मैं ने उन दोनों को भी नए चारो दृश्य सुनाए । उन्होंने भी हृदसे ज्यादा तारीफ की । थोड़ी दूर बैठने के बाद शर्माजी ने कहा—‘रीता !’ ‘मेरा लाल दुपट्टा मलमल का’ वाले गीत को जरा उसी अभिनय से दिखा तो ।’ रीता शरमाने लगी । शर्माजी ने कई बार कहा, फिर भी वह शरमाती ही रहा । कोकिलाजी बोलीं—‘अब कुछ बड़ी हो गई है; इसीलिए शरमाती है । पिछले साल तक इतना नहीं शरमाती थी !’

“मैंने कहा—‘तैयार हो जाओ बेटा ! इसमें शर्म करने की कोई बात नहीं । कहीं बेटे शरमाया करते हैं !’

“रीता हिम्मत बाँधकर उठी और सिनेमा के उस गीत को, नायिका की उसी भंगिमा के साथ, इतनी सुन्दरता से गाया कि सब लोगों ने उसकी बड़ी-बड़ी प्रशंसा की । रीता को प्रशंसा से और लाज लगी और वह शरमाकर अन्दर भाग गई । सरोज उसको चिढ़ाने के लिए उसके पीछे-पीछे औरतोंवाली चाल से चलते-चलते आंगन तक चला

गया ! मगर रीता का एक गर्म चाँटा खाकर वह तुरत हमलों के पास लौट आया । उस की रोनी सूरत देखकर हमलों को हँसी आ गई ।

“काशी ने अचानक गम्भीर होकर कहा—‘कृष्ण भाई ! मैंने वेश-भूषा का भी प्रबन्ध कर लिया है । पर्दा, लाइट और बाजे भी ठीक कर लिये हैं । अभी सीधे माइक का बन्दोबस्त करके आ रहा हूँ ।’

“शर्माजी ने कहा—‘काशी बाबू ! तो आपको मालूम होना चाहिए कि ‘कला-प्रसार-केन्द्र’ के अधिकांश वादकों ने भी आने का वचन दे दिया है । नन्दी बाबू बेलावाले भी रहेंगे !’

“कुमार ने कहा—‘अरे छोड़िए उसे ! पागल आदमी है ! कहीं समारोह ही न चौपट कर दे !’

“मैंने कहा—‘उनको सम्हालने का जिम्मा मेरा ! मगर एक बात पर आप किसी का भी ध्यान नहीं है । मैं रिहर्सल तबतक ठीक नहीं करूँगा, जबतक सौ रुपए की टिकटें नहीं बिक जातीं । आखिर कला-कारों को रोज-रोज बुलाने, पहुँचाने और चाय-पान वगैरह में जो खर्च लगेगा, वह कहाँ से आएगा ?’

“कुमार ने कहा—‘मैंने तो भाई ! दस रुपयों की टिकटें बेच ली हैं ।’

“काशी ने कहा—‘मैंने भी करीब दस रुपयों की !’

“कोकिलाजी ने कहा—‘हम पति-पत्नी पचास रुपए का जिम्मा लेते हैं ।’

“मुझे इस कर्मठता पर हादिक प्रसन्नता हुई । मैंने उत्साह और विश्वास के साथ कहा—‘बाकी नाटक और रिहर्सल का पूरा खर्च मेरे जिम्मे !’

“इस बात पर काशी और कुमार ने जब तालियाँ बजाईं तो रीता ने भी वही किया । मैं उसकी ताली पर ऐसा शरमाया कि क्या बताऊँ !

“बातें करते-करते दस बजनेवाले थे । कोकिलाजी और रीता के स्कूल जाने का समय हो रहा था इसलिए हमलोग वहाँ से अपने-अपने घरों की ओर चल पड़े ।

“रास्ते में काशी ने कहा—‘नायिका के लिए मीनाक्षी और नायक के लिए अशोक से मेरी बात हो चुकी है । दोनों की जोड़ी भी बहुत सुन्दर है । स्टेज खिल जायगा ।’

“मैंने कहा—‘और यहाँ तो रात-दिन पैसों की ही चिन्ता दिमाग चाटे जा रही है !’

“कुमार बोला —‘सब ठीक हो जायगा कृष्ण ! चिन्ता से कुछ नहीं होता ।’

“कुमार के इस आश्वासन से कुछ ढाढ़स हुआ । काशी ने भी कहा—‘हम लोग बाजी मार लेंगे भैया ! आप बेफिक्र रहिए !’

“इसके बाद काशी और कुमार चले गए । उन्हें भी अपने-अपने काम पर जाना था ।”

कृष्ण ने कहा—‘मुझे भी अभी एक काम से जाना है ललित ! आज इतना ही !’

ललित कृष्ण को नमस्कार करके अपनी कलम-कौपी समेटने लगा ।



रिहर्सल चला

कृष्ण ने आज ललित से कहा—‘ललित ! उस दिन तुमने जो बात कही थी, उस पर मैं बहुत खफा हो गया था; जानते हो क्यों ?’
‘क्यों ?’

‘इसलिए कि तुमने मेरी दुखती नस पकड़ ली थी । ललित ! यह मेरे जीवन की सबसे गहरी और घातक घटना है । उपन्यास के इस कथानक को हृदय में दबाए-दबाए मुझे न जाने कहाँ-कहाँ भटकना पड़ा है । दिल को बहलाने की मृगतृष्णा में, न जाने कितनी उपेक्षा, अनियमितता, अनुशासनहीनता और कर्तव्यविमुखता से भरे सांघातिक कार्य करने पड़े हैं । किसी दिन भोजन नहीं तो किसी दिन, दिन-भर रोना ही रोना ! कभी आत्महत्या की तैयारी तो कभी रीता को ही भगा ले जाने का इरादा ! उदासी और घबराहट तो जैसे मेरे जीवन के क्षण-क्षण में भर गई थी ललित ! लगता था कि किसी दम, दम टूट जा सकता है ।’ इतना कहकर कृष्ण बहुत उदास हो गया । ललित ने हिम्मत बाँधकर कहा—‘ये सब बातें तो आगे आएँगी ही ! आप कृपया उपन्यास लिखाइए !’

कृष्ण ने भाप की तरह गर्म साँस छोड़ी, जो ललित के मुँह से लगकर उसे जलासी गई । कृष्ण ने कहा—‘तुम नहीं जानते ललित !

कि इस उपन्यास को लिखाते हुए और लिखाने के बाद, मेरी क्या हालत होती है । कभी-कभी रात-भर रोता ही रह जाता हूँ । किसी दिन खाना नहीं खाता । किसी दिन किसी के यहाँ, समय निश्चित कर नहीं जा पाता । उस दिन गोपाल के घर उसके प्रथम पुत्र की छठी थी, मैं नहीं जा सका; जो घटनाएँ मेरे जीवन की आत्मा बन गई हैं, उनको उपन्यास के रूप में दुहराते हुए कदम-कदम पर मौत का सामना करना पड़ता है ललित ! इसका, सिवा मेरे, कौन अनुभव कर सकता है ! मैं नहीं जानता था कि इस उपन्यास का लिखाना इतना खतरनाक हो सकता है ! वरना मैं तुमसे ऐसी प्रतिज्ञा कभी नहीं करता । उफ् !'.....कृष्ण एक लम्बी साँस लेकर उठ खड़ा हुआ । ललित को लगा कि कृष्ण शायद चल देगा, मगर कृष्ण गया नहीं । घास पर करीब तीन-चार मिनट तक टहलता रहा । उसके चेहरे से लगा कि वह अपने पर नियन्त्रण पा जाने की भरपूर कोशिश कर रहा है । जब उसे अपनी सफलता पर कुछ विश्वास हुआ तो ललित के पास आकर बैठ गया । पहले कुछ हँसा; फिर अचानक एक जोर का ठहाका लगाया । ललित, इस वक्त, ठहाके का सपना भी देखने को तैयार नहीं था, मगर और दिनों से ज्यादा बुलन्द ठहाका सुनकर उसके रोंगटे खड़े हो गए । वह घबड़ाकर कृष्ण की ओर देखने लगा । कृष्ण ललित को घबड़ाहट भाँप गया । उसने कहा—'अचानक एक मजेदार बात याद आ गई थी ललित ! खैर, तुम उपन्यास शुरू करो ।'

ललित से कुछ भी कहते नहीं बना । उसने कलम हाथ में ले ली । कृष्ण ने कहा—'उस घटना के बाद, रिहर्सल के दिन तक कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई । हाँ, जिस बातपर अभी मुझे हँसी आ गई थी, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता । खैर, तुम अब आगे लिखो !'

“रिहर्सल के एक दिन पहले, मैं, शर्माजी, कोकिलाजी, रीता और सरोज खेत की ओर टहलने चले । रास्ते में दौड़-कूद होती

रही । खेत में दूर तक निकल जाने पर महाबीरजी का एक देवस्थान मिला । उसके सामने सिमेंट का एक साफ-सुथरा चबतरा था । हमलोग उसी पर बैठ गए । सरोज और रीता खेलने लगे । सामने के आम के पेड़ के पास बैठकर कोकिलाजी ने कविता लिखना शुरू किया । मैं और शर्माजी इधर-उधर की गप करते रहे । कोकिलाजी को देखकर मुझे भी कुछ लिखने का मन हुआ । मैंने जैसे ही कागज पाकिट से निकाला कि रीता ने कहा—‘चलिए न, उधर घूमा जाय !’ मैं बिना कुछ सोचे-समझे उठ खड़ा हुआ और नीचे के खेत में उतर गया । वह खेत का छोटा-सा टुकड़ा एक बहुत बड़े गड्ढे में तैयार किया गया था । गोबी के पौधे अभी सिर उठा रहे थे । खेत में और भी कई तरह की हरियालियाँ थीं । रीता ने कहा—‘कितना अच्छा लगता है !’

“मैंने कहा—‘जैसे खेत में कोई शूटिंग होने को हो !’

“रीता को सिनेमा से शौक था ही ! शूटिंग के दृश्य और उसके अर्थ की कल्पना वह तुरत कर गई और लजाकर बोली—‘दुत् !’

“मैंने पूछा—‘झूठ है क्या ?’

“उसने कहा—‘क्या मालूम !’

“इसी बीच सरोज आ गया और उसकी पीठ पर ही कोकिलाजी और शर्माजी भी !”

ललित ! अभी टहलते हुए मुझे लगा कि मैं उसी खेत में घूम रहा हूँ और मैंने रीता से वही प्रश्न पूछ दिया है । उसने लजाकर कहा है—‘दुत् !’ मैं उसी ‘दुत्’ पर मुस्कुरा पड़ा । रीता को देखने के लिए जब मैं पीछे मुड़ा तो तुम्हारी सूरत नजर आ गई ! बस, कुछ न पूछो ! ठहाका लग गया ! आदमी भी क्या जीव है ललित !’

ललित ने कहा—‘तब तो आपको अच्छी रीता मिल गई कृष्ण भाई ! मगर एक बात मैं आपसे कहूँ ? बुरा मत मानिएगा !’

‘कहो ! कहो !!’

‘इस जन्म में तो नहीं, मगर अगले जन्म में मैं कहीं रीता बन कर आपका हार्दिक स्नेह पा सकता, तो.....।

कृष्ण ने कहा—‘बस ! बस ! आगे नहीं । ललितजी ! आप-जैसे लेखकों का दूसरा जन्म भी कम भयानक नहीं होगा । मुझपर दया ही कीजिए और अपना उपन्यास लिखिए ! हाँ ।’

“हमलोग खेत से घूमघामकर धर लौट आए । कोकिलाजी ने ग्राम के पेड़ के पास कविता लिखी थी, इसलिए उसमें रस भी रसाल का ही आ गया था । वे भी ‘कोकिला’ जो जो थीं ! कोकिलाजी ने ग्राम-सी मीठी कविता जब गाकर सुनाई तो एक समाँ बँध गया । रीता ने भाव-विभोर होकर कहा—‘काश ! मैं भी इस तरह की कविता लिख पाती !’

“मैंने कहा—‘लिखेगी ! बहुत शीघ्र लिखेगी !’

“मेरी भविष्यवाणी पर पूर्ण रूप से विश्वास करते हुए रीता ने पूछा—
‘कब ?’

“पत्रा देखकर बताऊँगा !’

“मेरी इस बात पर सभी लोग हँस पड़े और रीता, खेतवाला वही ‘दुत्त !’ कहकर, अन्दर चली गई ।

“दूसरे दिन सुबह से शाम तक दोड़धूप होती रही । रिहर्सल-वाली कोठरी में बिछाने के लिए दरी, पास की चाय की दूकान से हर पन्द्रह मिनट पर चाय आने का प्रबन्ध, कलाकारों के लिए रिक्शा भेजना और इसी तरह के कई काम करते-करते पाँच बज गये । ६॥ बजे रिहर्सल का समय रखा गया था । हारमोनियम, तबला और पायल लेकर मैं, शर्माजी, कोकिलाजी और मनोज रिहर्सलवाली जगह पर पहुँच गए । रीता ने कहा—‘मैं सरोज के साथ आ जाऊँगी ।’ वह वहीं रह गई । विद्यार्थी भी उस वक्त अपने कमरे में ही था । मुझे रीता की वह टालमटोल बहुत बुरी लगी । हमलोग रिहर्सल के कमरे में आकर दरी वगैरह ठोक ही

कर रहे थे कि गोपाल, काशी, कुमार, लक्ष्मण और शिवदेव बाबू भी पहुँच गए । थोड़ी देर के बाद सरोज भागता हुआ आया । मैंने पूछा—‘रीता कहाँ है ?’

“सरोज उछलते हुए बोला—‘मीता दीदी आ गई हैं; उन्हींके साथ आ रही है ।’

“कि रीता मीता के साथ अन्दर आ गई । रीता ने उसे धीरे से कहा—‘यही कृष्णजी हैं !’

“मीता बोली—‘कविता की पुस्तक में जो चित्र है, उससे बहुत मिलते-जुलते हैं !’

“रीता बोली—‘तो वह क्या तेरा चित्र है !’

“तबतक मैं उनके पास पहुँच गया । दोनों की कानाफूसी बन्द हो गई । रीता ने कहा—‘प्रणाम करो !’

“मीता बोली—‘प्रणाम भैया !’

“मैंने बड़ी बेतकल्लुफी के साथ कहा—‘प्रणाम भाई ! हमलोग तुम्हारी प्रतीक्षा जमाने से कर रहे थे ।’

“रीता ने केहुनी से मीता को धीरे से दबा दिया ।’

“कब आई तुम ?’

“आज ही ! बारह बजे की गाड़ी से !’

“परिवार में सब कुशल-मंगल है ?’

“जी हाँ !’

“मैं उन दोनों से इतना घुल-मिलकर क्यों बातें कर रहा हूँ, यह ईर्ष्या वहाँ के सभी युवक कलाकारों को सता रही है, इसका ख्याल करके मैं आकर सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गया और बोला—‘अच्छा ! तो रिहर्सल के लिए तैयार !’

“सभी लोग सैनिकों की तरह सावधान हो गए । मैंने सोचा कि नाटक का रिहर्सल शुरू कराने के पहले सबों को कहावनी, उसका कथासूत्र और तारतम्य बता दिया जाय । स्थिति, परिस्थिति और

वातावरण का ज्ञान हो जाने के बाद ही अभिनय करने में ज्यादा स्वाभाविकता और तादात्म्य सम्भव होता है । यही सब सोचकर मैंने एक वक्तव्य दिया —

“आप तो जानते ही हैं कि इस नाटक का नाम ‘जिन्दगी’ है ! और यह ‘जिन्दगी’ क्या है !”

“मेरा इतना ही कहना था कि गोपाल और कुमार ठठाकर हँस पड़े । मेरे गम्भीर भाषण पर इस तरह उल्लू की तरह हँस पड़ना सभी लोगों को बुरा लगा । मगर मैं उन सबों से ज्यादा जोर से हँस पड़ा और दो-तीन मिनटों तक हँसता रहा । मेरा हँसना देखकर सारा का सारा समुदाय साथ हो गया । रीता और मीता भी खब हँसीं । सरोज तो सबों से ज्यादा हँसा, इसलिए कि उसने वह बात सबों से कम समझी ! जब हँसी का वातावरण हलका पड़ा तब मैंने स्थिति को अनुकूल बनाने के ख्याल से गोपाल और कुमार की हँसी का रहस्योद्घाटन किया । मैंने कहा—‘आप सभी लोग गोपाल और कुमार पर नाराज हो गए थे, मगर मेरा हँसना देखकर आप भी हँसी नहीं रोक सके; तो अब इसकी भेद-भरी कहानी भी सुन लीजिए !’

“बहुत दिन पहले की बात है । बनारस में एक बार मेरे जातिवालों की एक अखिल भारतीय सभा हुई थी । उसमें देशभर के जातीय विद्वान और पूँजीपति लोग एकत्र थे । कपूरकोट के महाराज सभापति थे । जब बड़े-बड़े विद्वान बोल चुके तब स्वागताध्यक्ष महोदय ने मुझसे प्रार्थना की कि कुछ मैं भी बोलूँ । एक तो, मैं भाषणों से भागता हूँ । दूसरे, मुझे जातीय सभाओं से सख्त नफरत है । पिताजी की जबर्दस्ती से बस शामिल भर हो गया था । मगर जब यह बोलने की मजबूरी आई तो मैं घबड़ा गया । मैं ‘ना-नहीं’ कर ही रहा था कि सभापति जी ने घोषणा की—‘अब आपके सामने हमारी जाति के सर्वश्रेष्ठ कवि लेखक पत्रकार और

नाटककार और क्या नहीं, श्री कृष्णजी अपने विचार प्रकट करेंगे !'

“मैंने सोचा—अगर ये लोग मुझे बेइज्जत करने पर ही तुले हुए हैं तो इन्हें भी ऐसा सबक सिखाना चाहिए कि जिन्दगी भर याद रखें ! उसी वक्त दिमाग में एक फितूर आ गया । मैं उठकर मंच पर खड़ा हो गया और भाषण देने लगा—

“श्रद्धेय सभापति जी ! विद्वान गुरुवरो, भाइयो और बहनो ! मैं भाषण देना नहीं जानता । लिखनेवाला आदमी हूँ । चूँकि मैं लेखक हूँ, इसलिए वक्ता भी होऊँ, यह कोई जरूरी नहीं है । मगर जब आप गुरुजनों की आज्ञा है तो विवश हूँ ।

“मैं जातीय बातों को गहराई से नहीं समझता; इसलिए उसपर मेरा बोलना बेकार है । चूँकि मैं अपने-आपको जिन्दगी का एक साहित्यकार मानता हूँ, इसलिए उसी पर अपने तुच्छ विचार प्रकट कर रहा हूँ ।

“जिन्दगी क्या है ? जिन्दगी को पहुँचे हुए लोगों ने पानी का बुलबुला कहा है । और यह बुलबुला ही क्या है । पानी की हिलोर से पैदा हुआ एक क्षण का तमाशा । तमाशा देखने में आदमी को आनन्द आता है । आनन्द तो एक ऐसी चीज है जो हर जगह मौजूद है; यहाँ तक कि हम दूसरों के गिरने पर भी आनन्द उठा लेते हैं । मगर इस संसार में पैदा होकर कौन नहीं गिरता । मगर गिरते-पड़ते हुए बढ़ना ही मर्दानगी है । बिना मर्दानगी के हिटलर और मुसोलिनी भी नाम नहीं कमा सके । मगर नाम कमाना कोई आसान काम नहीं है । आसान तो, यूँ, सब कुछ नजर आता है, मगर करने पर कई चीजें कठिन दिखाई देने लगती हैं । वह कठिनाई कैसे हल हो, इसीमें आदमी उलझता-सुलझता जिन्दगी की राह पर आगे बढ़ता है । आगे बढ़ने के कई तरीके हैं । और तीकों के भी क्या कहने ! एक से एक ! एक से दो और दो से नौ । नौ और दो ग्यारह का मुहावरा तो आप सभी जानते हैं !'

“रिहर्सल में मैंने अपने पुराने भाषण का इतना ही हिस्सा सुनाया था कि सब लोग कहकहा लगाकर हँस पड़े । गोपाल और कुमार तो हँसते-हँसते दुहरे हो गए । रीता और मीता भी बेहद हँसीं । शर्माजी और कोकिलाजी के तो पेट में दर्द हो गया । जब सब लोग चुप हो गए तो मैंने कहा—‘इसी तरह मैं अपनी जातीय सभा में पूरा आधा घंटा बिना बीच में पानी पिये ही बोलता रहा । जब मैं भाषण समाप्त करके बैठा तो उस बैठक में सबसे ज्यादा तालियाँ उस दिन मेरे ही भाषण को नसीब हुई । सभापति महोदय भी मेरी दार्शनिक विद्वत्ता देखकर बहुत प्रभावित हुए । जब मैं अपना आसन ग्रहण करने लगा तो वे बोले—‘क्या बात है ! आप ‘सर राधाकृष्णन्’ और ‘रसेल’ के मुकाबले के विचारक हैं !’ मैंने गम्भीर विनयशीलता से कहा—‘आपका ही आशीर्वाद है ।’

“जब मैं अपनी जगह पर आकर बैठ गया तो दिल्ली से आए हुए एक सम्पादकजी ने मेरे कान में मुँह सटाकर कहा—‘कृष्ण ! तुम्हारा लोहा मान गए ! क्या उल्लू बनाया है तुमने इन उल्लू के पट्ठों को !’ मैंने कहा—‘अभी चुप रहिए ! वरना सारी विद्वत्ता की पोल खुल जाएगी !’

“उस भाषण में मैंने एक खास टेकनीक से काम लिया था । जो मन में आता था, बोल देता था । और उस वाक्य के अन्तिम शब्द को लेकर फिर एक दूसरी बात का सूत्र निकाल लेता था । इस तरह बातों के पेट से मैंने ऐसे-ऐसे सूत्र के लच्छे निकाले कि सभा में मेरा भाषण द्रौपदी का चोर हो गया !”

“भाषणवाली मेरी यह बात सुनकर रिहर्सल के सभी लोगों का हृद से ज्यादा मनोरंजन हुआ । रीता ने मुझे ऐसी श्रद्धा से देखा कि मानो कह रही हो—‘आप कितने प्यारे हैं ! कितने अच्छे हैं !’ मीता की माती आँखें भी जैसे कह रही थीं—‘कैसे आदमी हैं ! कमाल हैं ! !’

“इसके बाद रिहर्सल शुरू हो गया और खूब जमकर हुआ । चलते समय मीता ने कहा—‘भैया !’

“मैंने कहा—‘भैया नहीं ! दादा ! मैं बंगाल से लौटा हुआ आदमी हूँ । मुझे पछाँही ‘भैया’ से पूरबी ‘दादा’ कहीं प्यारा लगता है।’

“रीता ने उसे चिकोटी काटकर कहा—‘कहो न ‘दादा’ !’

“मीता बोली—‘कृष्ण दा ! मुझे घर तक पहुँचा आइए । मामाजी ने कहा था कि कृष्ण दादा के साथ ही आना ।’

“रीता ने कहा—‘मेरे हाथ की अँगुलियाँ सूज गई हैं । मैं सँकने जा रही हूँ । मीता ! नमस्ते ! ! !’

“ऐसा कहकर वह अकेली अपने डेरे पर चली गई । शर्माजी, कोकिलाजी, गोपाल, काशी, कुमार और लक्ष्मण बाजा बगैरह सम्हालने लगे । रीता का माता-पिता के साथ न जाकर अकेली ही घर चले जाना मुझे शंका में डाल गया । मगर मैं करता क्या ! मैं मन को पीछे छोड़ चुपचाप मीता के साथ आगे बढ़ गया !”

लिखाते-लिखाते कृष्ण थकान-सा महसूस करने लगा । उसने जम्हाई ली तो ललित बोला—‘शेष कल ?’

कृष्ण ने खुश होकर कहा—‘धन्यवाद !’

जब ललित उठा तो उसने देखा कि कृष्ण अपने उस ढँके हुए अँगूठे को कुछ दर्द से सहला रहा है ।



११

धुएँ से आग

कृष्ण ने उपन्यास लिखाने के पहले ललित से कहा—‘सच पूछो तो, आज ही इस उपन्यास की वास्तविक कथा शुरू हो रही है ।’

ललित ने हैरान होकर पूछा—‘तो अबतक मैं क्या लिखता रहा हूँ ?’

‘भूमिका !’

‘सिर्फ भूमिका ?’

‘हाँ !’ कहकर कृष्ण शान्त मुद्रा में पेड़ के तने के सहारे उठँग गया । ललित ने कुछ सोचने के बाद कहा—‘आपका जीवन समुद्र है कृष्ण भाई !’

कृष्ण बोला—‘जिस बात को लेकर तुम मेरे जीवन को समुद्र समझ रहे हो, उसे मैं समुद्र से भी ज्यादा गहरा और महान मानता हूँ । मगर, जहाँ तक संपूर्ण जीवन की बात है, वहाँ इस उपन्यास का कथानक मेरे जीवन-समुद्र की एक लहर-भर है । प्रेम के अति-रिक्त मैं और भी अनेक प्रकार के संघर्षों और दिशाओं में इसी तेजी से क्रियमाण और वद्विष्णु रहा हूँ । जब कभी मुझे वे बीती घटनाएँ याद आ जाती हैं, तो लगता है, मैं वह कृष्ण नहीं हूँ मैं वैसे कृष्ण नहीं हूँ ! मैं ऐसा कृष्ण नहीं हूँ !’

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! अगर आप अपना जीवन-चरित लिखें तो वह साहित्य की एक अमर निधि बन जाय !’

कृष्ण ने हँसते हुए कहा—‘मैं आदमी और उसकी कृतियों की शाश्वत अमरता का रहस्य भलीभाँति समझता हूँ ललित ! आत्म-प्रवचन में अमरता की कल्पना बहुत सहायक होती है । वर्तमान की आँखों में धूल झोंककर भविष्य की आँखों में काजल करनेवालों से मुझे कोई सहानुभूति नहीं ! हाँ उस जीवनी से वर्तमान का कुछ लाभ हो तो मैं अपना भविष्य बनाने को तैयार हूँ !’

ललित बेचारा विचारों का इतना बोझ कहाँ बर्दाश्त करता । बोला—‘अच्छा ! कुछ भी हो ! कृष्ण भाई, आप बात तो कुछ और कुछ कह रहे थे न ?’

कृष्ण बोला—‘बातें मेरे पास बहुत हैं ललित ! तुम अपना उपन्यास लिखो !’

उपन्यास आगे बढ़ा । कृष्ण ने कहा—‘आज के अध्याय का शीर्षक रख दो ‘धुएँ से आग !’—और हाँ, देखो इस शीर्षक के विषय में अभी कुछ सवाल-जवाब मत करो । चुपचाप लिखते चलो ।’

“दूसरे दिन सुबह मैं शर्माजी के घर पहुँचा । रीता रजाई ओढ़े बैठी थी । कल के रिहर्सल पर कोकिलाजी बहुत खुश थीं । उन्होंने कहा—‘आज रीता ने आपके लिए बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की हैं !’

“क्या रीता ?’ मैंने रीता से ही पूछा ।

“रीता बोली—‘आज आपको आलू का रसगुल्ला खिलाऊँगी ।’

“मैं पेटू तो हूँ नहीं और न मिठाइयों से शौक रखता हूँ, मगर न जाने रीता के आलू के रसगुल्लों ने कहाँ से मेरा पेटूपन जाग्रत कर दिया और मुझे तुरत भूख महसूस होने लगी । मैंने पेट पर हाथ रखते हुए कहा—‘बड़े जोर की भूख भी लगी है रीता ! जा, जरा जल्दी बनाकर ला !’

“रीता रजाई से यूँ उछली जैसे कभी-कभी मछली पानी के ऊपर उछल आती है !

“कोकिलाजी ने कहा—‘आलू का रसगुल्ला तो यह बेजोड़ बनाती है। प्रायः खाने-पीने की चीजों में इसकी बहुत दिलचस्पी है। स्कूल में भी, खाना बनाने की परीक्षा में प्रथम आई थी।’

“इसी बीच खिड़की से जरा दूर होकर रीता ने अपनी माँ को इशारे से बुलाया। कोकिलाजी खिसियाकर बोलीं—‘मैं नहीं आती ! कह न !’

“रीता ने कहा—‘माँ ! आ न !’

“उसका रुआँसा-सा मुँह देखकर कोकिलाजी आंगन में चली गई। रीता ने धीरे से कुछ कहा। कोकिलाजी ने भी उत्तर धीरे से ही दिया। जब वे रीता से निबटकर आ गई तो मैंने पूछा—‘क्या बात थी ?’

“वे छिपाने लगीं, मगर मेरे जोर देने पर शर्माजी ने कहा—‘इनसे क्या छिपाती हो ! ये कोई गैर हैं ! कहो न, क्या बात थी !’

“कोकिलाजी बोलीं—‘चीनी नहीं थी !’

“मैं हँस पड़ा। मैंने कहा—‘हद हो गई ! खोदा पहाड़, निकली चुहिया ! तो इसमें क्या बात है ! सरोज को मेरे घर भेज दीजिए; नौकर से चीनी माँग लाएगा !’

“सरोज मेरे घर पर चला गया। मैंने रीता से कहा—‘तू मिठाई की तैयारी कर। मैं भी ऊपर जाकर रसगुल्ले की तरह ही दो मीठे दृश्य लिख लेता हूँ।’

“रीता बोली—‘हाँ ! अभी दो दृश्य बाकी ही हैं न !’

“हाँ !’ कहकर मैं छत पर चला गया। ऊपर जाकर मैंने लिखना शुरू किया। थोड़ी देर बाद रीता भी ऊपर आकर पास बैठ गई। स्वेटर बुन रही थी। मैंने कहा—‘रीता ! तू यहीं बैठी रह ! जब तू पास रहती है तो लिखने में बड़ा मन लगता है।’

“रीता हताश-सी होकर बोली—‘बाबूजी कहते हैं कि जब वे लिखते हों, तो उनके पास मत जाया कर ! खलल पड़ता है !’

“मैंने हँसकर कहा—‘तेरे बाबूजी तो लेखक हैं नहीं; वे हमलोगों का मर्म क्या जानें !’

“रीता पुलकित होकर स्वेटर और तेजी से बुनने लगी । मैंने पूछा—‘तेरी अँगुलियाँ कैसी हैं ?’

“उसने अँगुलियों को दिखाकर कहा—‘देखिए न, फूल गई हैं । बहुत दर्द है !’

“और तू स्वेटर बुन रही है !’

“हाँ ! ऊपर आते हुए ले लिया था ।’

“ओ !!!’

“रीता शरमा ही रही थी कि नीचे से सरोज ने पुकारा—‘दीदी ! चीनी आ गई !’

“रीता एक बार मेरी आँखों में उतरी और फिर नीचे चली गई । मैंने करीब आधे घंटे में ही दोनों दृश्य समाप्त कर लिए । वे दृश्य ‘जिन्दगी’ के सर्वश्रेष्ठ दृश्य थे । मैंने जब दुबारा उन्हें पढ़ा तो आँखों में आँसू आ गए । नाटक समाप्त कर मैं हाथ-पैर सीधा कर रहा था कि सरोज ने आवाज दी—‘चलिए भैयाजी ! रसगुल्ला तैयार !!’

“मैं जब सीढ़ी के पास आया तो ऊपर से ही देखा कि जहाँ सीढ़ी खत्म होती थी, वहाँ बैठी रीता स्वेटर और तेजी से बुनती चली जा रही है । मैंने उसके पास उतरकर कहा—‘आज ही समाप्त कर देगी क्या ?’

“रीता बोली—‘कोई बड़ी बात नहीं है !’

“मैं जाकर बैठक में बैठ गया । रसगुल्ले आने लगे और मैं पेटू पाँड़े की तरह बस खाता ही चला गया । सरोज बहुत नटखट था । उसने कहा—‘भैयाजी पेटू पाँड़े !’

“मेरा खाना बन्द; उधर रसगुल्ले भी समाप्त !”

“मैं करीब साढ़े नौ बजे दिन को शर्माजी के डेरे से अपने डेरे पर लौट आया ।

“शाम को रिहर्सल में सबों से भेंट हुई । आज मीनाक्षी भी आई थी । माधुरी और उर्मिला भी । रिहर्सल इतना बढ़िया जमा कि मैंने चाय की दूकान से उस दिन बिस्कुट और केक भी मँगाए । सब कलाकारों ने जमकर खाया । दी वगैरह जब समेट ली गई तो मीता ने कहा—‘रीता ! मैं जाऊँ ?’

“रीता बोली—‘आज मैं भी चलूँगी ।’

“उसने बाबूजी से कहा—‘मैं भी भैयाजी के साथ मीता को पहुँचाने जा रही हूँ । उधर से इन्हीं के साथ लौट आऊँगी ।’ उसे इजाजत मिल गई । बाबूजी के पास से आकर उसने कहा—‘चलिए !’

“मैं जैसे ही दोनों के साथ आगे बढ़ा कि काशी और कुमार भी साथ हो लिए । दोनों आगे अपने घर तक गए और मैं रीता-मीता के साथ मीता के घर की ओर चला गया । मीता को छोड़कर जब हम वहाँ से चले तो एक विचित्र हालत थी । न मैं रीता से बोलता था, न रीता मुझ से । मेरी सारी वाचालता और रीता की संपूर्ण चंचलता न जाने कहाँ काफूर हो गई थी ! आधे रास्ते तक हम दोनों चुप रहे । जब प्रमुख सड़क से गली में आए तो मैंने ही चुपी तोड़ी—‘रीता !’

“रीता मूक !’

“मैंने कहा—‘रीता !’

रीता पास आ गई । मैंने फिर कहा—‘रीता !’ और रीता और पास आ गई ! हम दोनों का शरीर सट गया । उफ् ! जैसे बिजली की धारा अचानक समा गई हो शरीर में ! आगे कुछ भी नहीं कहा जा सकता । हम दोनों तुरत अलग हट-हटकर चलने

लगे । सामने बिजली का खम्भा भी आ गया था । फिर थोड़ी दूर आगे बढ़कर मैंने कहा—‘रीता !’ आज मैं तुम से एक बात पूछना चाहता हूँ ! उत्तर दोगी ?’

“रीता नहीं बोली ।

“उत्तर दोगी ?’

“उसने सिर हिला दिया कि ‘हाँ’ !’

“मैंने कहा—‘रीता ! तुम मुझे.....’

“इसके आगे मैं कुछ भी नहीं कहा । रीता थर-थर काँपने लगी । अगर वह कहीं बैठी होती तो उठकर भाग जाती; अगर कहीं खड़ी होती तो घर में जा छिपती ! मगर रास्ते की बात—वह मेरे पास आकर चिपक-सी गई । मैंने कहा—‘मुझे आज ही इसका उत्तर नहीं चाहिए । कल बताना ।’

“इससे ज्यादा बातें नहीं हो सकीं । हमलोग घर पर आ गए । उस वक्त शर्माजी और कोकिलाजी सरोज से एक गीत सुन रहे थे । मैं आकर उनके पास बैठ गया । रीता अपने कमरे में चली गई । कोकिलाजी ने रीता को नहीं देखा तो पूछा—‘रीता कहाँ है ?’

“अन्दर से मनोज बोला—‘यहाँ है !’

“मैं मनोज से मिलने का बहाना करके अन्दर गया तो देखता हूँ—रीता रजाई में छिपी हुई है । मैंने पुकारा—‘रीता !’

“रीता चुप ! मैंने रजाई हटाने की कोशिश की तो उसने हाथ-पैर से रजाई को ऐसे दबा लिया कि कहीं मुँह न दिखाई पड़ जाय । मनोज ने डाँटा—‘यह क्या तमाशा है !’ मगर रीता नहीं उठी । रजाई में सारे शरीर को गठरी-सा समेटे वह पत्थर की तरह पड़ी रही । हारकर मैं बैठक में लौट आया । मेरी नस-नस में एक अभूतपूर्व रक्तसंचार का अनुभव हो रहा था । वहाँ ज्यादा देर तक बैठना सम्भव नहीं हो सका । मैं उठकर डेरे पर चल दिया ।

“डेरे पर आया तो नौकर ने पूछा—‘खाना लाऊँ ?’

“नहीं !’—मैंने, कहा—‘भूख नहीं है !’

“उस दिन मुझे ऐसा लगा, जैसे शराब पी लो हो । जाकर चुपचाप बिछावन पर लेट गया । मैं जब बिछावन पर लेटा तो कई अजीबोगरीब बातें दिमाग में आने लगीं । अनुकूलता के अति-रिक्त मैं यह भी सोचने लगा, कहीं उसने आज की बात अपने पिता-माता से कह दी तो ! उफ् ! मैंने यह क्या किया ? कितना मूर्ख हूँ मैं ! मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था । उफ् !

“लेकिन उस दिन के पहले की सैकड़ों बातों का जब ध्यान आया तो लगा कि ये सारी आशंकाएँ निर्मूल हैं; मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए । मगर मन माने तब न ! फिर मैंने सोचा—अगर कहीं रीता ने उनलोगों से मेरी बात कह दी तो मैं दूसरे दिन ही कुसुमा छोड़ दूँगा । कैसे और कब छोड़ूँगा, यही योजना बनाते-बनाते मुझे नींद आ गई ।”

ललित ने लिखना बन्द करके कहा—‘आपने ठीक हो कहा था कृष्ण भाई ! वास्तव में यह अध्याय उपन्यास का पहला ही अध्याय है । ‘धुएँ से आग’ का शीर्षक तो और उपयुक्त है !’

धुएँ की बात सुनकर कृष्ण को जैसे कुछ याद हो आया । उसने तुरन्त सिगरेट सुलगाई और धुएँ से वातावरण को धुँधला करते हुए कहा—‘ललित ! सिगरेट प्रेमियों से सर्वथा भिन्न है । इसमें पहले आग है ! पीछे धुआँ !’

ऐसा कहकर कृष्ण उठ खड़ा हुआ और आगे बढ़ते हुए बोला—‘मैं जा रहा हूँ ललित !’

ललित ने कुछ नहीं कहा । वह कृष्ण के चले जाने के बाद कितनी देर तक वहाँ बैठा रहा, यह किसी को नहीं मालूम !!!



आदर्श की कुरबानी ?

अजायबघर की फुलवारी में दो तोपें रखी हुई हैं । ललित आज उन्हीं तोपों को देख रहा था कि कृष्ण आ गया । ललित को तोपों के पास खड़े देखकर कृष्ण को हँसी आ गई ! कृष्ण ने ललित के पास आकर पूछा—‘क्या ख्याल है, इनके विषय में ?’

कृष्ण कब आ गया और यह प्रश्न कैसे पूछ दिया गया, ललित को यह जरा भी नहीं मालूम हो सका । तबतक कृष्ण ने उसकी पीठ पर हाथ रख दिया । ललित को कुछ तसल्ली हुई । उसने कहा—‘कृष्ण भाई ! तोपों को देखकर मैं यह सोच रहा था कि पुरुष कठोरता, और स्त्री कोमलता के प्रतीक मान तो लिये गए हैं, मगर यह गलत है । बात यह है कि पुरुष की कठोरता तुरत एक आकार धारण कर लेती है—कभी भाषा में, कभी शरीर में, कभी पत्थर में और कभी इस्पात की बनी हुई इन तोपों में ! मगर स्त्री भाषा, शरीर और दूसरे-दूसरे उपकरणों द्वारा कोमल बनी रहने पर भी आत्मा और हृदय से इतनी कठोर होती है कि जहाँ तोपों और बमों का प्रहार बेकार साबित होता है, वहाँ वह एक मुस्कान या आँसू के दो कतरों से ही प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देती है !’

स्त्रियों के विषय में ललित की यह धारणा किस बात की प्रतिक्रिया है या कैसे चिन्तन का परिणाम, कृष्ण नहीं जान सका !

इसलिए वह हैरान होकर ललित को देखने लगा । उसने ललित से पूछा—‘प्रकाशकों और कुंजियों का अध्ययन करते-करते तुम्हें स्त्रियों के अध्ययन का सुअवसर कैसे मिल गया ललित ?’

ललित ने बहुत गम्भीर होकर कहा—‘मैंने भी एक-दो बार प्रेम किया है कृष्ण भाई ! मगर मुझे प्रेम से घृणा हो गई है । अगर प्रेम की दुनिया से औरतों का अस्तित्व हटा दिया जाय तो प्रेम जीवन का वरदान बन जाय !’

कृष्ण को बड़े जोर की हँसी आ गई । उसने पूछा—‘तो प्रेम किया किससे जाय ?’

ललित ने कहा—‘आप इस भीषण प्रश्न से मुझे निश्चर नहीं कर सकते कृष्ण भाई ! जहाँ तक प्रेम की बात है, वह किसीसे भी किया जा सकता है । फूलों से, पेड़ों से, लताओं से, झरने, नदी और पहाड़ों से प्रेम किया जा सकता है ! और कुछ नहीं हो तो पुस्तकें कहाँ गई हैं ! मगर औरत से नहीं ! औरत से नहीं !!’

कृष्ण ठहाका मारकर हँसा तो ललित ने महसूस किया कि शायद वह अजीब बातें कर रहा है । उसने कुछ ठहरकर कहा—‘कृष्ण भाई ! किसी दिन मैं आपको अपनी दोनों कहानियाँ सुनाऊँगा । ज्यादा लम्बी नहीं हैं । पहली दो महीनों में ही समाप्त हो गई थी ! दूसरी भी यही करीब एक-डेढ़ महीना चली थी ! बड़ी मूजी बीमारी है यह !’

कृष्ण फिर हँसा । ललित को कृष्ण का बार-बार हँस पड़ना कुछ अच्छा नहीं लगा । उसने कहा—‘आपको मेरे साथ जरा भी सहानुभूति नहीं है, कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने कहा—‘हाँ, ठीक है ! मैं प्रेम करनेवालों से सहानुभूति नहीं रखता ललित ! कोई भी नेक आदमी, भूखी बाधिन की माँद से बचकर, दूसरों को उधर जाने का बढ़ावा नहीं दे सकता ।

लेकिन ये सब बातें बेकार हैं । आज तुमने बहुत समय नष्ट कर दिया । चलो, उपन्यास लिखो !'

"दूसरे दिन सुबह, मैं शर्माजी के यहाँ काशी और कुमार के साथ गया । रिहर्सल की सफलता और नाटक की खूबियों पर तरह-तरह की बातें हुई । सरोज, मनोज, सभी आए, मगर रीता नहीं आई । कोकिलाजी ने पुकारकर कहा—'रीता ! ओ रीता !!'

"रीता आकर दरवाजे के पीछे खड़ी हो गई । उसकी एक आँख भर दिखाई पड़ी । मगर जैसे ही मेरी दो आँखें उस एक आँख में गई, वह एकदम पीछे हट गई । कोकिलाजी ने डाँटा—'यह क्या नाटक करती है ! अन्दर आ !'

"मैं तुरत बोल पड़ा—'नाटक की तो आपने एक ही कही ! रोज रिहर्सल करती है तो यहाँ नाटक भी नहीं करेगी !'

"सभी लोग हँसने लगे तो कोकिलाजी भी हँस पड़ीं । उन्होंने कहा—'देख, भैयाजी आए हैं । जरा जल्दी जलपान तैयार कर !'

"काशी ने कहा—'मैं भी हूँ रीता !'

"कुमार गम्भीर होकर बोला—'और मैं बिलकुल नहीं हूँ ।' कुमार की बातों पर जोरों का कहकहा लगा । इस हँसी से, रीता की शर्म कुछ हलकी पड़ गई । उसने अन्दर से पुकारा—'भाँ !' और आने का इशारा किया । कोकिलाजी तुरत उठकर अन्दर चली गई । दो मिनटों के बाद जब लौटकर आई तो बोलीं—'कृष्णजी ! आर्ज रीता आपको एक अद्भुत चीज खिलाएगी । पहचानिएगा तब जानूँगी !'

"मैंने कहा—'जरूर पहचानूँगा !'

"काशी ने कहा—'आप कभी नहीं पहचान सकते !'

"कुमार बोला—'ठीक है कृष्ण ! नहीं पहचान सकते तुम !'

"सबों के द्वारा दबा दिये जाने पर मैंने सरोज की शरण ली । बाहर थूक फेंकने के बहाने जाकर उससे पूछा तो उसने बता दिया

कि रीता क्या बना रही है । सरोज बड़ा होशियार और चंचल है । उसने रीता को बेवकूफ बनाने के ख्याल से जाकर कहा—‘दीदी ! भैयाजी से पूछना कि तुमने क्या बनाया है । माँ, बाबूजी, सबों से बाजी लगी है कि भैयाजी इसे नहीं पहचान सकते !’

“रीता में, इस बात से, कुछ ऐसा साहस आ गया कि वह जलपान लेकर अन्दर आ गई । सबों के सामने तश्तरियाँ रखते हुए उसने माँ की ओर देखा । कोकिलाजी ने कहा—‘अच्छा, जरा इसे चखकर बताइए तो कि क्या है ?’

“मैंने चखा । कुछ पता नहीं चला । तब एक-दो मिनट सोचने-परखने का नखरा करके मैंने कहा—‘कढ़ू का छिलका !’

“रीता चिल्ला पड़ी—‘बाबूजी ! सरोज ने बता दिया होगा । नहीं ! नहीं !! यह नहीं होगा ! अच्छा कल फिर मैं दूसरी चीज बनाऊँगी । इस गदहे को रसोई से बाहर निकाल दूँगी । सब बता देता है ! देखिए न बाबूजी !’

“सरोज हँसकर बाहर भाग गया । मैंने कहा—‘हाँ ! मैंने ही उससे पूछ लिया था; इसमें उसका कोई कसूर नहीं है !’ सरोज बाहर खड़ा रीता को जीभ निकाल-निकालकर चिढ़ा रहा था । रीता उसे मारने दौड़ी तो मैं इतना खुश हुआ, इतना खुश हुआ कि कह नहीं सकता ।”

ललित ने पूछा —‘सरोज को मार खाते देखकर आपको खुशी क्यों हुई ?’

कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—‘सरोज की मार और मेरी खुशी से कोई वास्ता नहीं है ? औपन्यासिक महोदय ! मुझे खुशी इस बात की थी कि रीता ने कल रातवाली बात किसी से नहीं कही थी !’

कृष्ण की यह बात सुनकर आज ललित भी ठहाका मारकर हँसा । हँसी समाप्त करते हुए उसने कहा—‘कृष्ण भाई ! मुझे वह हँसी, इस बात से ज्यादा, अपनी बेवकूफी पर आई है !’

कृष्ण बोला—‘ललित ! ऐसे बिरले ही हैं, जो अपनी बेवकूफी का आनन्द उठाते हैं ! तुम धन्य हो !!’

ललित ने लज्जित होकर कहा—‘आप तो मुझे बनाने लगे कृष्ण भाई !’

कृष्ण बोला—‘अजीब आदमी हो ! भला सनकी की बातों को भी कहीं ऐसे लेते हैं ! चलो, उपन्यास लिखो ! हाँ, तो’—

‘मैं बहुत खुश हुआ । खुशी के मारे शर्माजी से मैंने कहा—‘शर्माजी ! सिगरेट मंगाइए ! जरा तबियत आ गई है !’ शर्माजी ने सरोज को तुरत बाजार भेजा ।

‘‘उस वक्त मैं सिगरेट बहुत कम पीता था । कभी किसी ने दे दिया या धुआँ उड़ाने का मूड आ गया, तभी । मगर रिहर्सल के समय एक-दो घंटे में मैं करीब १०-१२ सिगरेट पी जाता था । रीता मेरा सिगरेट पीना देखकर हैरान रहती । पीता को भी वह आदत कुछ अच्छी नहीं लगती थी ।

‘‘सरोज जब सिगरेट लेकर आया तो कुमार ने कहा—‘कृष्ण ! तुम इधर बहुत सिगरेट पीने लगे हो । यह अच्छी बात नहीं है ।’

‘‘काशी ने कहा—‘सिगरेट कोई जहर थोड़े है !’

‘‘रीता ने चिढ़कर कहा—‘नहीं, अमृत है !!!’

‘‘रीता का बिगड़ना देखकर सबों को हँसी आ गई । मैंने सिगरेट सुलगाकर कहा—‘जहर से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ सकता पीता !’

‘‘शर्माजी बोले—‘मगर कृष्णजी ! रीता ठीक कहती है । ज्यादा पीना नुकसानदेह है ।’

‘‘कोकिलाजी ने भी समर्थन किया । मगर मैं धुनी आदमी ! कश पर कश खींचता चला गया । पीता दूसरे ही क्षण आँगन में चली गई और वहीं से बोली—‘स्कूल का समय हो रहा है माँ ! तैयार हो जाओ ।’

‘‘कोकिलाजी घड़ी की ओर देखकर बोलीं—‘अभी साढ़े नौ ही तो बजे हैं !’

“रीता ने कहा—‘आज हमलोगों को जल्दी बुलाया गया है । मैं जा रही हूँ !’

“जब रीता नहा-खाकर स्कूल चली गई तब हमलोग भी अपने-अपने घरों की ओर चल पड़े । रास्ते में काशी ने कहा—‘आज विद्यार्थी महोदय को नहीं देखा ?’

“कुमार बोला—‘आजकल वे ‘जिन्दगी की’ टिकटें बेच रहे हैं ! शर्माजी और कोकिलाजी ने उन्हें भी एक दस रुपए की टिकट दी है । बड़ा उदार लड़का है !’

“काशी ने मुस्कराकर कहा—‘होना ही चाहिए ! मुझे यह प्रश्न उस वक्त बहुत बुरा लगा, मगर मैं करता तो क्या !’

“कुमार ने पूछा—‘तुम चुप क्यों हो कृष्ण ?’

“मैंने कहा—‘तुमलोगों की बातें सुनकर !’

“काशी बौखलाकर बोला—‘ठीक ही है ! जब वहाँ सब कुछ देखकर चुप रहते हैं तो यहाँ बातें सुनकर क्यों नहीं चुप रहिएगा !’

“काशी की ये बातें सीधे मर्म पर लगीं । मैंने कहा—‘काशी ! आखिर, तुम चाहते क्या हो ?’

“काशी ने कहा—‘उसे उस घर से निकलवा देना !’

‘क्यों ?’

“इसलिए कि रीता मेरी रिश्तेदार है ।’

“मैं कुछ नहीं बोल सका । बात करते-करते घर आ गया था । मैंने कहा—‘अच्छा ! शाम को रिहर्सल में फिर भेंट होगी ।’

“कुमार और काशी कुछ बतियाते हुए चले गए । मैं घर पर आकर परेशान हो गया । उफ् ! दुनिया में कहीं भी शान्ति नहीं । कहाँ जाऊँ ! क्या करूँ !! मेरा सिर चकराने लगा । इसी बीच गोपाल आ गया । उसने कहा—‘चलो कृष्ण ! आज स्कूल में एक गोष्ठी है । लोग तुम्हें याद कर रहे हैं !’

“इच्छा नहीं होते हुए भी मैं चला गया । शाम को रिहर्सल में पहुँचा तो देखता हूँ कि सभी लोग हैं मगर रीता नहीं है । रीता थोड़ी देर के बाद मीता के साथ आई । मीता ने आते ही मुझे बहुत गौर से देखा । फिर मुस्कुरा पड़ी । रीता ने उसकी बाँह पकड़कर खींच लिया और दोनों एक तरफ जाकर न जाने क्या-क्या बतियाने लगीं । जब सभी लोग आ गए तो काशी ने पुकारा—
‘ये दोनों कहाँ गईं ! चलो भाई ! रिहर्सल शुरू हो रहा है !!’

“दोनों के आते ही रिहर्सल शुरू हो गया । रिहर्सल भर मीता मुझे बड़े ध्यान से पढ़ती रही । रीता जब उसे मेरी ओर गौर से देखते हुए देखती तो धीरे से उसका पैर अपने पैर से दबा देती ! मैं बोलते-बोलते रुक जाता । लोग समझते कि मैं कुछ सोच रहा हूँ । मेरी अजीब हालत हो जाती । उस दिन बड़ी मुश्किल से रिहर्सल समाप्त हुआ । जब मैं मीता को पढ़वाने चला तो रीता साथ नहीं गई । उसने मीता से कहा—‘अँलियों में ज्यादा दर्द है, डेरे पर जा रही हूँ !’

“मीता धीरे से बोली—‘कि दिल में है !’

“रीता ने गुस्से से उसे देखा । मेरा सारा शरीर ईर्ष्या और द्वेष से थर्रा उठा । मैंने सोचा कि जरूर यह उस विद्यार्थी से बात करने के लिए ही, पिता-माता से पहले, यहाँ से चल देती है—यह तक कि सरोज या नौकर को भी साथ नहीं ले जाती ! आखिर इसका दूसरा क्या कारण हो सकता है ? मगर ये माता-पिता भी धन्य हैं, जिन्होंने इतनी सुविधा दे रखी है अपनी जवान लड़की को, जहन्नुम में जाने की !!! मुझे रीता से जितनी वितृष्णा हुई, उससे कहीं ज्यादा गुस्सा उसके पिता-माता पर आया । किन्तु ‘मैं होता कौन हूँ ?’ जब इस पहलू पर ध्यान गया तो सिट्टी गुम हो गई । मैं मीता को लेकर कोठरी से बाहर निकला तो काशी ने आकर

कहा—‘कृष्ण भाई ! आपसे एक बहुत जरूरी बात करनी है ।’ मैंने कहा—‘चलो मेरे साथ !’

“काशी, मैं और मीता जब चलने लगे तो कुमार भी हमलोगों के साथ हो लिया । मीता को उसके घर पहुँचाकर हमलोग चाय की दुकान पर बैठ गए । काशी आज बेतरह उदास और गंभीर था । कुमार का भी चेहरा उतरा हुआ था । काशी ने कहा—‘भैया ! मैं शर्माजी के घर पर नहीं जाऊँगा !’ ।

“कुमार ने कहा—‘कृष्ण ! तुम्हें अब कुछ करना चाहिए !’ दोनों को काफी उत्तेजित देखकर मैंने पूछा—‘आखिर बात क्या है ?’

“काशी ने कहा—‘यहाँ बातचीत करना ठीक नहीं है; अपने डेरे पर चलिए ।’

“उन दोनों को साथ लेकर मैं अपने डेरे पर आया । काशी ने इधर-उधर देखकर कहा—‘कृष्ण भाई ! आज मैंने और कुमार ने जो बातें अपने कानों से सुनी हैं, अगर आप सुनते तो न जाने क्या कर बैठते !’

“मैं रीता के चले जाने से ईर्ष्यालु और क्रोधित तो था ही, काशी की ये बातें सुनकर और बौखला गया । मैंने डांटकर कहा—‘काशी ! बुझौअब मत बुझाओ ! साफ-साफ कहो ।’

“काशी ने कुमार से कहा—‘तुम्हीं कह दो कुमार !’ कुमार ने कहा—‘जब हमलोग रिहर्सल को आ रहे थे, तब हमलोगों के आगे-आगे वह विद्यार्थी, और उसके साथ, उसे शर्माजी के यहाँ रखवाने-वाला, रीता का वह ‘भैया’ भी जा रहा था । जब वेलोग रिहर्सल-वाले घर के पास पहुँचे तो उस विद्यार्थी ने उस कोठरी की ओर इशारा करके कहा—‘आजकल हमारी प्रेयसी यहीं आया करती है । नाटक का रिहर्सल हो रहा है !’ ऐसा कहकर वह जोर से हँसा । तबतक विद्यार्थी के दोस्त ने हमलोगों को देख लिया और दोनों चुप हो गए !’

“काशी ने कहा—‘अगर बात बहुत आगे तक नहीं बढ़ गई है तो ये बातें उन्होंने कैसे कहीं कृष्ण भाई ?’

“मैंने कहा—‘काशी ! बात तो कुछ जरूर है ! मगर जिस गहराई तक तुम जा रहे हो, वहाँ तक यह बात नहीं है । मैं विद्यार्थी-समुदाय और उनकी बातों की गंभीरता को बहुत दूर तक जानता हूँ । सिनेमा की अभिनेत्रियों की तस्वीरों में, और अपने साथ पढ़नेवाली छात्राओं की सीधी-सी नजरों में भी, उन्हें लैला की मुहब्बत दिखाई पड़ती है । उसका स्वयं मैं भी भुक्तभोगी रहा हूँ । हाँ ! जहाँ तक रीता के साथ उस विद्यार्थी के सम्बन्ध की बात है, उसमें कुछ न कुछ सचाई जरूर है, यह मैं मानता हूँ !’

“कुमार ने कहा—‘तुम ये सारी बातें कोकिलाजी से कह दो । और, मेरी बात मानो तो, तुमसे एक और प्रार्थना करूँ । मगर तुम बिगड़ जाओगे ! कहोगे—तुम गुंडे हो !!’

“मैंने कहा—‘कभी नहीं ! तुम कहो !’

“कुमार बोला—‘रीता की उम्र लड़कपन और जवानी के बीच की है; कलाकारों के घर में पैदा हुई है; स्वभाव से बहुत ज्यादा चंचल और जिदी है; स्वयं भी कलाकार और भावुक है ।’

“काशी बीच में ही टपक पड़ा—‘सिर्फ इतना ही नहीं,, शर्माजी का घर, आपके जाने के पहले तक, गर्वियों और बजर्वियों का अड्डा रहा है । अजीबोगरीब सूरतें वहाँ कई-कई दिनों तक रहती-ठहरती रही हैं । कई मनचले साहित्यिक और टुटपूँजिए शिक्षक वहाँ मुफ्त में साहित्य-संस्करण के लिए जाते रहे हैं । बेकारजी, सुकुलजी, देवजी, और इसी तरह के दर्जनों कलाकारों का वहाँ अखाड़ा रहा है । ‘कला-प्रसार-केन्द्र’ के अधिकारियों और दूसरों के साथ रीता इधर-उधर बराबर घूमती रही है । कई बार केन्द्र के अधिकारियों को घर तक बुलाने का जिम्मा भी उसीको सौंपा जाता रहा है, इसलिए भ्रातृत्व उसकी कुछ बिगड़ गई हैं । उसकी शादी अगर तुरत नहीं हो गई तो

कोई न कोई दुर्घटना होकर रहेगी, कृष्ण भाई, आप देख लीजिएगा ! मैं बाजी लगाकर कहता हूँ !!!'

“कुमार ने काशी को डांटा—‘तुम ऊलजलूल बहुत बकते हो काशी ! काम की बातें करो ! मैं यह कह रहा था कृष्ण ! कि अगर तुम एक कुरबानी करो तो यह सारा मामला ठीक हो जाय !’

“मैंने पूछा—‘क्या ?’

“कुमार ने कहा—‘जहाँ तक मेरा अध्ययन और मनोविज्ञान का ज्ञान है, मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि रीता तुम्हारी ओर से निराश होकर ही उस विद्यार्थी की ओर बढ़ रही है । अगर उसे यह मालूम हो जाय कि तुम उसे प्यार करते हो तो उसके जीवनसमुद्र में ज्वार-भाटों का ताँता बँध जायगा । वह कभी भी छिछलेपन की ओर नहीं जा सकेगी ! कृष्ण ! मैं तुमसे सच कहता हूँ ।’

“मैंने कुमार से पूछा—‘अगर यह अभिनय आगे चलकर गम्भीर रूप धारण कर गया तो ?’

“कुमार बोला—‘हमें तुम्हारी ताकत और अक्लमंदी पर पूरा विश्वास है कृष्ण ! बस, तुम रीता से स्पष्ट कह दो कि तुम उसे प्यार करते हो । मैं कहता हूँ, कृष्ण, वह तुमपर निछावर हो जायगी ! तुम अपने आदर्श की कुरबानी करके उस परिवार की प्रतिष्ठा बचा लो ।’

“मैंने कहा—‘शर्माजी और कोकिलाजी का क्या होगा ? जिसदिन उन्हें ये बातें मालूम होंगी, वे क्या समझेंगे मेरे विषय में ! क्या यह विश्वासघात नहीं होगा कुमार ? क्या मेरे इस कार्य से उस परिवार की प्रतिष्ठा बच जायगी ? तुम क्या कहते हो कुमार !’

“काशी बोला—‘ये सब बहुत दूर की बातें हैं कृष्ण भैया ! अभी आप वर्तमान को सुधारिए । भविष्य की चिन्ता पीछे की जायगी । और हाँ ! कल, कोकिलाजी को, विद्यार्थीवाली वह बात जरूर कह दीजिएगा ।’

“मगर मेरा मन नहीं माना । यूँ तो मैं रीता से कल एक नया जीवन शुरू ही कर चुका था, मगर काशी से उसके विषय में भयानक-भयानक बातें सुनकर मेरा मन बहुत दुखी हो गया । थोड़ी देर तक संकल्प-विकल्प में डूबे रहकर मैंने कुमार से कहा—‘कुमार ! तो यह यात्रा अब ऐसे शुरू होगी । मैं प्रयाग से बम्बई चलूँगा । गाड़ी में रीता से भेंट हो जायगी । रीता को खण्डवा उतर जाना है और मुझे बम्बई । प्रयाग से खण्डवा, अर्थात्, इस प्रेम से उसके विवाह तक की यात्रा का भार मुझे अच्छी तरह ढोए चलना है ! यही न ?’

“कुमार और काशी, दोनों मेरी बात सुनकर उछल गए । कुमार ने कहा—‘बस ! बस !! क्या बात कही है तुमने !!!’

“इस निश्चय के बाद हम तीनों एक बजे रात तक और कई तरह की बातें करते रहे । बहुत देर हो जाने के कारण कुमार ने कहा—‘चलता हूँ भाई ! बीवी बिगड़ रही होगी ।’

“कुमार और काशी, दोनों चले गए । मैं भी लेटते ही सो गया ।”

इतना लिखाकर कृष्ण ने ललित से पूछा—‘ललित ! तुम्हें आज का अध्याय कैसा लगा ?’

ललित खोया-खोया-सा हो रहा था; बोला—‘मैं तो खुद ही एक पात्र बन गया हूँ इस उपन्यास का, कृष्ण भाई ! मैं कुछ भी नहीं कह सकता ! एक शब्द भी नहीं !!!’



‘दोनों तरफ थी आग....’

‘ललित ! आज मैं तुम्हें रिहर्सल के तीसरे दिन की बात लिखा रहा हूँ । लिखो ।’

‘मैं डेरे पर सुबह उठकर बैठा ही था कि काशी और कुमार आ गए ।’

‘मैंने हैरानगी से कहा—‘अलसुबह !! क्या बात है भाई ?’

‘काशी ने कहा—‘अभी-अभी मेरे मालिक का हुक्म आया है कि मैं एक बहुत जरूरी काम से कलकत्ता चला जाऊँ । वहाँ आठ-दस दिनों का काम है । अब अगर उन्हें नहीं मनाया गया, तो नाटक नहीं हो सकेगा कृष्ण भाई ! आप क्या राय देते हैं ?’

‘मैं बोला—‘इसमें राय की क्या बात है काशी ! तुम्हें किसी भी हालत में कलकत्ता नहीं जाने दिया जा सकता । मैं चलकर अभी तुम्हारे मालिक से मिलूँगा । उनसे प्रार्थना करूँगा । चलो, शर्माजी से राय ली जाय !’

‘मैं लुंगी पहने, मुंह धोते-धोते कुमार और काशी के साथ शर्माजी के घर चला गया । जब उन्हें काशी की यह बात बताई गई तो पति-पत्नी दोनों बहुत घबराए । काफी बहस-मुबाहसे के बाद तय पाया कि

मैं, कोकिलाजी, कुमार और काशी, चारों आदमी जायें और काशी के मालिक सेठजी से प्रार्थना करें। शर्माजी ने कहा—‘देवीजी के जाने से जरा उनको लिहाज होगा। ओरतवाली बात है न?’

“मैंने कहा—‘ठीक है!’

“हम चारों आदमी वहाँसे काशी के मालिक के यहाँ गए। जिस वक्त हमलोगों ने सेठ साहब के दर्शन किये, उस वक्त वे हजामत बना रहे थे। हमलोगों को देखकर वे उठे; सत्कार से बिठाया और चाय पिलाई। मगर जब उनसे यह कहा गया कि हमलोग रिहर्सल के लिए काशी को रोकना चाहते हैं तो उन्हें उपदेश देने का अलभ्य सुअवसर मिल गया। काले मुँह में साबुन का सफेद झाग लगाए हुए वे काशी की ओर देखकर कहने लगे—‘आप अजीब आदमी हैं साहब! आपको मैंने कई बार समझाया कि जिन्दगी बनाइए, इस नाच-गाने से ऊपर उठकर जरा समाज-संसार में इज्जत का काम कीजिए, तो आपके भेजे में कुछ धँसता ही नहीं। आपकी मर्जी है! मगर देखिए! कह देता हूँ, यह नाच-गाना आपको किसी दिन ले डूबेगा!’

“फिर वे मेरी ओर मुखातिब हुए। बोले—कृष्णजी, माफ कीजिएगा! मैं कोई गलत कह रहा हूँ?’

“मैंने कहा—‘भला आप गलत कह सकते हैं!’

“शह पाकर वे फिर बोलने लगे—‘दुनिया में पैसा सबसे बड़ी चीज है। इज्जत, कला और साहित्य, सब पैसे में ही हैं। आप ही कहिए, कृष्णजी! मैं कोई गलत कह रहा हूँ?’

“मैंने कहा—‘आप का कहना बावन तोले पाव रत्ती ठीक है, मगर आप काशी को, मेरी प्रार्थना पर रोक लीजिए; वरना हमलोगों का रिहर्सल चौपट हो जायगा; नाटक भी नहीं हो सकेगा।’

“उन्होंने कहा—‘अच्छा! जब आप प्रार्थना करते हैं तो रोक लेता हूँ। मगर इससे मेरा हजारों रुपयों का नुकसान हो जायगा। खैर,

कोई बात नहीं। मगर, काशी बाबू ! आपकी जिन्दगी खराब हो रही है ! आप कौड़ी के तीन हो रहे हैं ! मैं कोई गलत कह रहा हूँ कृष्णजी ?'

“इस बार जो उन्होंने ‘मैं कोई गलत कह रहा हूँ !’ का जुमला दुहराया तो मुझे हँसी आ गई। कोकिलाजी भी मुँह छिपाकर हँसने लगीं। मैं सेठजी को बहुत सारा धन्यवाद देकर कोकिलाजी, कुमार और काशी के साथ चल पड़ा। रास्ते में मौका पाकर काशी ने कहा—‘अभी वह बात इनसे कह दीजिए !’

“मैंने लाख कोशिश की, मगर कहने के लिए जुबान ही नहीं खुली। जब डेरा सौ गज की दूरी पर रह गया तब मैंने दुस्साहस का सहारा लिया। कोकिलाजी मेरे पीछे-पीछे आ रही थीं। मैंने रुककर उन्हें पास आ जाने दिया। जब वे साथ हो गईं तब मैंने कहा—‘कोकिलाजी ! कई दिनों से मैं एक बात कहना चाह रहा था। वह विद्यार्थी, जिसे आपने अपने डेरे में टिका रखा है, मुझे डर है, आपके खानदान में कलंक का टीका न लगाकर चल दे। मैंने उसकी कई नाजायज हरकतें देखी हैं। रीता भोली-भाली लड़की है; दुनिया को नहीं जानती। आपलोग उसे चाय, चीनी, मिर्च-प्याली के लिए बार-बार उसके कमरे में भेज देते हैं, यह अब बहुत बुरे ढंग से जड़ पकड़ रहा है। कल, वह विद्यार्थी अपने एक साथी से रिहसलवाले घर के पास, ऐसी-ऐसी बातें कह रहा था कि सुनकर गर्म से सिर नीचा हो गया।’

“कोकिलाजी ने घबराकर पूछा—‘क्या कह रहे थे ?’ इसपर काशी और कुमार ने कलवाली पूरी घटना उन्हें सुना दी। वे चुप हो गईं। कुछ भी नहीं बोलीं। उनके चेहरे से लगा, जैसे उनके लिए यह कोई नई बात नहीं। काशी और कुमार पर उनकी चुप्पी की क्या प्रतिक्रिया हुई, सो तो मैं नहीं कह सकता, मगर मैं बहुत अधिक

क्षुब्ध हुआ । बेटी की ऐसी शिकायत सुनकर माँ इतनी शान्त रह जाय, यह मेरे जीवन में अपूर्व दर्शनीय शान्ति थी । बाहरी गरीबी ! बाहरी कलाप्रियता !!

“वे डेरे पर आकर भी पहले की ही तरह बातचीत करने लगीं । लेकिन वहाँ से विदा होते वक्त मैंने कहा—‘मेरी बात भूलिएगा मत ! आपको इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए !’

“जब मैं ये बातें कह रहा था तो रीता खिड़की से सटकर चोरी की तरह सब सुन रही थी । काशी ने कहा—‘हमलोगों ने अपने कानों से सुना है ! यह आदमी बदमाश मालूम होता है !’

“रीता उसके बाद रसोई में चली गई और हमलोग अपने डेरे पर लौट गए ।

“शाम को रिहर्सल में फिर वही चहलपहल ! उस दिन नाटक में भाग लेनेवाले प्रायः सभी कलाकार आ जुटे थे । रिहर्सल भी इतना सफल रहा कि सब लोगों ने कहा—नाटक अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करेगा ।

“रिहर्सल खत्म करके मैं मीता को पहुँचाने चला । थोड़ी ही दूर आगे बढ़ा था कि रीता ने पुकारा—‘मीता ! मैं भी चल रही हूँ । उस दिन रीता से मैं कुछ खिँचा-खिँचा-सा था । वह आ गई तो मीता बोली—‘आज अँगुलियाँ ठीक हैं क्या ?’

“रीता ने कहा—‘करीब-करीब ।’

“फिर दोनों एक दूसरे को देखकर हँस पड़ीं । मैंने हँसी के उस रहस्य के प्रति कोई उत्सुकता नहीं दिखाई । थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर रीता ने मुझपर गुस्सा निकालने के ख्याल से कहा—‘अब मैं जाती हूँ मीता !’

“जाओ !’—मैंने कहा ।

“रीता जाने लगी कि मीता ने दौड़कर उसे पकड़ लिया । रीता को यह उम्मीद नहीं थी कि मैं इतनी जल्दी इतना कठोर बन जाऊँगा ।

किन इस क्रोध का अच्छा असर पड़ा । मीता को पहुँचाकर जब हमलोग चले तो आगे जाकर रिक्शा कर लिया । रिक्शे में थोड़ी दूर तक चुप रहने के बाद मैंने पूछा—‘रीता ! तुम्हें मेरा प्रश्न याद है ?’

“रीता ने अपने दोनों पैर एकसाथ सटाकर दूसरी ओर कर लिये और खुद रास्ते की ओर ताकने लगी । मैंने फिर पूछा—‘तुमने कुछ सोचा ?’

“रीता लाज से जैसे गड़ी जा रही थी । मैंने उसके दोनों हाथों को पकड़कर पूछा—‘रीता ! तुम मुझे.....?’

“रीता ने आँखें नीची कर लीं और धीरे से कहा—‘हूँ !’

“सच ?’

“उसने सिर हिलाकर स्वीकार किया—‘हाँ’ ।

“हाँ’ बताकर वह मेरी देह से चिपक-सी गई । मैंने कहा—‘डार्लिंग ! आइ लव यू ! (प्रियतमे ! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ !)’ वह मेरे शरीर से और चिपक गई ।

“हमलोगों का रिक्शा डेरे के पास पहुँचा ही था कि वह विद्यार्थी और नर्सका साथी, दोनों नजर आए । दोनों ने रीता को मेरे साथ उतरते हुए गौर से देखा । रीता ने कहा—‘मैं इनलोगों को दुरुस्त कर दूंगी । बड़े सुन्दर बने फिरते हैं !!!’

“रीता में अचानक ऐसा परिवर्तन देखकर मैं आश्चर्य से भर गया । मैंने पूछा—‘क्या बात है रीता ?’

“रीता बोली—‘कुछ नहीं ।’ ऐसा कहकर वह तेजी से आगे बढ़ गई । वहाँ से उसका डेरा बीस ही कदम के लगभग था । मैं भी उसके पीछे ही पहुँचा । उसमें आकस्मिक परिवर्तन देखकर मैं समझ गया कि कल जो शिकायत की गयी थी, यह उसी की प्रतिक्रिया है । मैंने सोचा कि तब तो रीता मुझसे भी नाराज होगी । मैं यही सब

सोचता हुआ शर्माजी और कोकिलाजी से इधर-उधर की बातें करने लगा कि रीता आ गई । मगर मेरे सामने खड़ी नहीं हुई । मैंने देखा तो लजाकर दरवाजे के पास चली गई । कोकिलाजी ने पूछा—
‘क्या बात है रीता ?’

“रीता चुप !

“बोल न रे !’ माँ ने कहा ।

“सरोज बोला—‘दीदी कहती थी कि भैयाजी को यहीं खाना खिलाओ !’

“शर्माजी प्रसन्न होकर बोले—‘ठीक तो है ! इसमें शरमाने की कौन-सी बात है !’

“रीता खुशी-खुशी रसोई में चली गयी । मैं, शर्माजी और कोकिलाजी करीब एक-डेढ़ घंटे तक राजनीति, साहित्य और धर्म पर न जाने क्या कुछ कहते-सुनते रहे । कोकिलाजी ने कहा—‘आप की बातें सुनकर लगता है कि बरसों तक साथ रहकर, बस, सुनते ही रहें ! ओह !’

“शर्माजी बोले—‘सिर्फ पढ़ने से ही ये बातें नहीं आतीं कोकिला ! आदमी को कुछ गुनना भी चाहिए ।’

“सरोज ने आकर घोषणा की—‘खाना तैयार ! भैयाजी ! होशियार !’

“हमलोग हँसने लगे । तबतक रीता खाना लेकर आ गई । मगर उस दिन कुछ भी नहीं खाया गया । लगा कि अभी-अभी खाना खाकर आ रहा हूँ । रीता ने इशारे से माँ को कहा कि मैं कुछ और खाऊँ तो कोकिलाजी बोली—‘अच्छा, एक रोटी और ले लीजिए !’

“मैंने कहा—‘आज मैंने अमृत पी लिया है !’

“सरोज ने आश्चर्य से पूछा—‘कहाँ ?’

“मैंने कहा—‘रास्ते में ।’

“रीता घबराकर अन्दर भाग गई। मैं बोला—‘हवा इतनी ठंडी चल रही थी कि लगा कि रन्ध्र-रन्ध्र में अमृत का प्रवेश हो रहा है। एक नशा-सा महसूस होता था। भूख भी मर गई है।’

“रीता बाहर खड़ी हांकर सब कुछ सुन रही थी। जब उसे निश्चय हो गया कि मैंने रास्ते की बात उसके पिता-माता से नहीं कही है तो वह सिर नीचा किये हुए आई और थाल लेकर अन्दर चली गई। मैं जब शर्माजी और कोकिलाजी से विदा लेकर बाहर निकला तो रीता खिड़की के छेद से मुझे देख रही थी।”

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! आपको काशी और कुमार ने विद्यार्थीवाली जो घटना कही थी, मेरा ख्याल है, उसमें उन लोगों की ईर्ष्या-भावना भी काम कर रही थी। संभव है, उन्होंने आप से झूठ ही कह दिया हो।’

कृष्ण बोला—‘इस दुनिया में सब कुछ संभव है ललित ! सब कुछ संभव है !! जब माता-पिता का लड़की को गलत राह पर लगाना संभव है; जब ‘भैया’ कहाकर और ‘बेटा’ कहकर एक लड़की को मेरा ‘डार्लिंग’ कह देना सम्भव है; तो असम्भव क्या हो सकता है ललित ! कुछ भी असंभव नहीं हो सकता इस दुनिया में !!!’

ललित ने कहा—‘आदमी जानवर से भी बदतर होता है कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने गर्म सांस छोड़ते हुए कहा—‘नहीं ललित ! आदमी आदमी होता है। वह न तो देवता होता है, और न राक्षस !’



मर्ज बढ़ता गया

कृष्ण ने उपन्यास लिखाते हुए कहा—‘ललित ! उस दिन जो तुमने कहा था कि अगर औरतों को प्रेम की दुनिया से हटा दिया जाय तो प्रेम, जीवन का वरदान बन जाय—उसकी सत्यता का अनुभव मैंने भी कई बार किया है । और तुम्हें आज जो घटना लिखाने जा रहा हूँ, वह तुम्हारी ही बात का एक दृष्टान्त है । उपन्यास शुरू कर दो !’

“रिहर्सल रोज-रोज चलता रहा और प्रायः रीता हर दूसरे दिन अँगुलियों को सेंकने के बहाने सबसे पहले घर चली जाती रही; अकेली । कभी-कभी नौकर हारमोनियम लेकर साथ जाता, मगर वह भी तुरत लौटा दिया जाता । इधर मेरे साथ रीता का वह समर्पण और उधर विद्यार्थी के साथ वह लुकाछिपी, बात कुछ समझ में नहीं आ रही थी । मैं जब-जब इस रोग की दवा तलाश करता, काशी की वे बातें याद आ जातीं । बचपन से ही ज्यादा आजादी पाकर किशोरों और युवकों के साथ हेल-मेल बढ़ाने के कारण, रीता संयत नहीं हो पाई थी । अब वह संयत कैसे बने, मैं इसी चिन्ता में रहने लगा ।

“करीब तीन-चार दिनों के बाद की बात है । मैं ३ बजे दिन में शर्माजी के घर पर गया । दरवाजा बन्द था । विद्यार्थी का

घर खुला हुआ था । मगर अन्दर से उसका भी दरवाजा बन्द था । मैं पैर दबाकर आगे बढ़ा । रीता बैठक में, उसके और अपने कमरे के बीचवाले दरवाजे से सटकर बैठी थी । यह दरवाजा भी बन्द था । मैंने पुकारा—‘शर्माजी ! शर्माजी !!’

“रीता पहले तो चुप रही । फिर थोड़ी देर के बाद वह बिना दरवाजे खोले हुए ही बोली—‘बाहर गए हैं !’

“मुझे रीता के इस व्यवहार से इतना क्रोध आया कि इच्छा हुई कि वह चाँटा जड़ूँ कि मुँह से खून निकल जाय ! मैंने डपटकर कहा—‘दरवाजा खोलो !’

“दरवाजा खोलने पर मैं ज्यूँ ही अन्दर गया कि देखा—बैठक के दरवाजे के छेद से वह विद्यार्थी अन्दर की ओर झाँक रहा है । उसी छेद के पास रीता आरामकुर्सी पर बैठी थी । वह सारा दृश्य देखकर मन घृणा और क्रोध से भर गया । मैंने अपने आपको जब्त करते हुए पूछा—‘माँ कहाँ हैं ?’

“वे भी बाहर गई हैं !’

“सरोज और मनोज ?’

“वे भी नहीं हैं ।’

“क्या कर रही थीं तुम ?’

“पढ़ रही थी !’ रीता ने घबड़ाकर कहा ।

“मैं कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा । रीता की आँखें उस छेद की ओर गईं । उसने उधर फिर देखा और तुरत बाहर निकल आई । मैंने बाहर आकर रीता का हाथ पकड़ लिया और अपनी दोनों हथेलियों में कसते हुए कहा—‘तुमने उस दिन मेरे प्रश्न का जो उत्तर दिया था, उसे भूल मत जाना रीता ! बस ! मैं यही कहने आया था ।’

“मेरी शंकाग्रस्त और दुखी मुद्रा देखकर रीता बहुत हतप्रभ हुई । वह मुझसे कुछ कहे-कहे कि मैं तेजी से बाहर निकल गया ।

“शाम को रिहर्सल में भी मैं बहुत उदास और अन्यमनस्क रहा । उस दिन की उदासी सबोंपर परिलक्षित हो गई । कोकिलाजी ने पूछा—‘आज आप बहुत उदास नजर आ रहे हैं ।’

“मैंने कहा—‘हाँ ! घर याद आ गया है !’

कोकिलाजी बोलीं—‘परिवार को क्यों नहीं बुला लेते ?’

“मैं बोला—‘सोच रहा हूँ ।’ इस प्रश्नोत्तर से रीता और मीता कुछ घबड़ाई दिखाई पड़ी ।

“उसके बाद जब रिहर्सल समाप्त हुआ तो रीता अकेली घर नहीं गई । उस दिन वह अपने पिता-माता के साथ ही गई; फिर भी, उसका कोई खास प्रभाव मुझ पर नहीं पड़ा ।”

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! आपकी बातें सुनकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उस वक्त आप में ईर्ष्या की मात्रा बहुत ज्यादा थी ।’

कृष्ण ने कहा—‘सही बात है । मैं प्रेम की दुनिया में बहुत ज्यादा ईर्ष्यालु हूँ ललित ! लेकिन इस मामले में किसी उदार व्यक्ति से मेरी अभी तक मुलाकात नहीं हुई है !’

ललित ने कहा—‘यूरोप में ऐसे व्यक्ति जरूर होंगे !’

कृष्ण ने कहा—‘यूरोप से तुम्हारा मतलब अगर वहाँ की बुरी लड़कियों और वेश्याओं से है तो मुझे कुछ नहीं कहना । अगर तुम वहाँ के प्रेमियों और प्रेमिकाओं की बात करते हो तो याद रखो ! यूरोप तो यूरोप, अफ्रीका के हबशियों में और उत्तरी ध्रुव के एस्किमो लोगों में भी मानवीय मजबूतियाँ और कमजोरियाँ एक-जैसी ही हैं !’

ललित बोला—‘मेरा ख्याल है, कृष्ण भाई ! जहाँ-जहाँ एकाधिकार की भावना है, वहाँ-वहाँ ईर्ष्या और द्वेष का साम्राज्य है !’

कृष्ण ने मुस्कराकर कहा—‘तुम तो दार्शनिक की तरह बोल गए ललित ! बात भी यही है । खैर, आगे लिखो !’

“उस दिन के बाद, जितने दिन तक रिहर्सल हुआ, रीता अकेली घर पर नहीं गई। मैं रीता के इस व्यवहार से धीरे-धीरे उसकी ओर फिर खिंचने लगा। मन की मौल तो दूर हुई ही, हृदय की पवित्रता भी ईमान खराब करने पर आमादा हो गई !

“नाटक होने में सिर्फ दो दिन रह गए थे। उस दिन काशी और कुमार के साथ मैं अपने डेरे पर बैठा था कि रीता और मीता आ गई। रीता ने कहा—‘बाबूजी ने कहा है कि आपको साथ लेकर संघ से पर्दा और नाटक का सामान माँग लाएँ। चलिएगा ?’

“मैं काशी और कुमार से माफी माँगकर पर्दे और सामान के लिए संघ में चला गया। संघ से सारा सामान लेकर दो रिक्शों पर लादा। एक रिक्शे पर मैं और सामान तथा दूसरे रिक्शे पर थोड़ा-सा सामान और रीता-मीता। जब हमलोगों का रिक्शा शर्माजी के मुहल्ले की ओर बढ़ा तो कुछ किशोरों ने रीता-मीता को देखकर आवाजें कसीं। जब मैंने उन्हें घूरकर देखा तो वे सब घर में घुस गए। मैं सोचने लगा—‘रीता-मीता को देखकर इस तानाकशी का क्या अर्थ है ? क्या इनकी जानकारी इन किशोरों तक को है ! मैं कुछ निश्चय नहीं कर सका। फिर दिल को तस्कीन देने के लिए सोचा कि वे लड़के ही गुंडे टाइप के होंगे। खैर, कोई बात नहीं। मैंने दिल में रखकर भी उस क्षोभ को एक कोने में दबा दिया।

“शर्माजी के यहाँ सामान रखकर मैं डेरे पर लौट जाना चाहता था, लेकिन कोकिलाजी ने कहा—‘चाय पी लीजिए तब जाइएगा !’

“जब चाय आ गई तो शर्माजी ने सिगरेट निकालकर आगे बढ़ा दिया। मैंने पूछा—‘आप भी सिगरेट पीने लगे क्या ?’

“वे बोले—‘नहीं ! कल के रिहर्सल की बची हुई सिगरेटें हैं।’

“सिगरेट का धुआँ खिड़की से बाहर निकलता देखकर रीता आंगन से बैठक में आ गई। उसके साथ मीता भी आई। रीता

ने कहा—‘बाबूजी ! आप बहुत खराब आदमी हैं । आपने इन्हें सिगरेट क्यों दी ?’

“शर्माजी को रीता ने ऐसा डाँटा कि उन्हें कोई भी उत्तर नहीं सूझा । वे बोले—‘देखते हैं कृष्णजी ! यह तो हमलोगों गार्जियन-जैसी बात कर रही है !’

“रीता बिगड़कर जब अन्दर जाने लगी तो मैंने कहा—‘रीता ! सुनो !’

“रीता रुक गई । मैंने सिगरेट तोड़कर नाली में फेंक दी । मीता ने रीता की ओर मुस्कराकर देखा । रीता ने मीता का हाथ पकड़ लिया और बोली—‘चल, उठ यहाँ से । आज खाना तुझे ही बनाना है ।’ रीता मीता को घसीटते हुए अन्दर ले गई ।”

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! यह रीता भी आपकी ही तरह एक रहस्यभरी लड़की मालूम होती है । उस विद्यार्थी से सम्बन्ध, फिर आपसे प्रेम ! ऊपर से काशी की वे बातें ! कुछ समझ में नहीं आता !’

कृष्ण ने कहा—‘स्त्रियों का समझना हमारे-तुम्हारे जैसों का काम नहीं है ललित ! उसके लिए अगले जन्म में स्त्री बनना ही एकमात्र रास्ता है ।’

ललित ने हँसते हुए कहा—‘तभी तो मैं अगले जन्म में रीता बनना चाहता हूँ कृष्ण भाई !’

कृष्ण बोला—‘फिर मेरा क्या होगा ?’

ललित ने कहा—‘आप कोकिलाजी बन जाइएगा !’

इस पर दोनों हँस पड़े ।

कृष्ण ने कहा—‘हाँ, तो आगे लिखो !’

“उस दिन शर्माजी के यहाँ ही मेरा भोजन था । शर्माजी के बहनों के कलकत्ता में बैरिस्टरी करते थे । वे भी भोजन करने के समय ही पधार गए । जिस वक्त बैरिस्टर साहब आए, मैं भोजन

समाप्त कर छत पर चला गया था; ऊपर बैठकर नाटक के दृश्यों में कुछ काट-छाँट और सुधार कर रहा था। थोड़ी देर बाद, काशी और कुमार के साथ बैरिस्टर साहब ऊपर आए; शर्माजी भी। शर्माजी ने बैरिस्टर साहब से परिचय कराया। दस-पाँच मिनट तक बैठकर बैरिस्टर साहब ने कहा—‘रिहर्सल में मैं आऊँगा; अभी एक काम से जरा बाहर जा रहा हूँ। आप भी अपना काम खत्म कर लीजिए।’

‘काशी और कुमार उन्हीं के साथ चले गए। शाम को रिहर्सल में बैरिस्टर साहब आए। उन्हें देखकर कोकिलाजी बाहर चली गईं। वे इतने दिलचस्प और हँसोड़ आदमी थे कि क्या कहा जाय। खुद जाकर कोकिलाजी को बाहर से बुला लाए। बोले—‘शर्म क्यों करती हैं? यह लीजिए, मैं ही पहले शुरू कर देता हूँ।’ इतना कहकर उन्होंने कव्वाली और फिल्मी गीत इतने सुन्दर ढंग से और ऊँचे स्वर में गाए कि लुत्फ आ गया। सभी लोग बूढ़े बैरिस्टर साहब की जिन्दादिली देखकर हैरान थे। कुछ देर बाद वे चले गए।

‘भूझे देखकर उन्होंने शर्माजी से कहा—‘आपने बहुत बड़े आदमी का पल्ला पकड़ा है। देखिए, चेहरे में कितनी कुलीनता, कितना रोब और कितना आकर्षण है! भूझे लगता है, इस आदमी से आपलोगों का कुछ बनकर रहेगा!’

‘शर्माजी ने ये बातें भूझे से उनके जाते ही कहीं।

‘प्रशंसा किसे प्यारी नहीं! मैं अभिमान से अकड़कर विनम्र हो गया। मैंने कहा—‘यह सब उनकी महानता है शर्माजी! बड़े लोग छोटों को भी बड़ा ही समझ लेते हैं!’

‘खैर, ये बातें तो एक-दो दिन पीछे की हैं ललित! मैं तुम्हें, नाटक शुरू होने के एक दिन पहले की, कुछ चिरस्मरणीय घटनाएँ लिखाता हूँ। लिखो!’

“ ‘जिन्दगी’ खेले जाने के एक दिन पहले से स्टेज-रिहर्सल था । सभी कलाकारों को गाँधी-हील में तीन बजे पहुँच जाने को कह रखा गया था । उस दिन सुबह, मैं शर्माजी के घर नहीं गया । चन्दा इकट्ठा करने के लिए कई जगह भटकना पड़ा था । करीब एक बजे मैं शर्माजी के घर पहुँचा । शर्माजी, कोकिलाजी, सरोज, रीता और मीता, सभी छत पर थे । मैं ऊपर गया तो शर्माजी बोले—‘आपके ही इन्तजार में.....’

“रीता ने वाक्य समाप्त किया—‘सभी गोपिकाएँ बँठी हैं ।’

“कोकिलाजी और शर्माजी इस वाक्य-पूर्ति से एकदम गम्भीर हो गए । कोकिलाजी ने कहा—‘जा, जा ! जाकर सब सामान तैयार कर ले !’

“रीता बोली—‘सब तैयार है ।’

“शर्माजी ने कहा—‘हमलोग पीछे से आ रहे हैं । आप रीता-मीता को साथ लेकर चलिए । रीता ! दाढ़ी-मूँछ, मुकुट, हार, सब ले लेना । और हाँ ! धुंधरू न छूटने पाए !’

“रीता और मीता धड़ाधड़ नीचे उतर गईं । मैं जब जाने लगा तो कोकिलाजी ने कहा—‘इधर से जरा कला-प्रसार-केन्द्र से होते जाइएगा । वहाँ किसी को भी निमन्त्रण-पत्र नहीं गया है । आपके पास सादे लिफाफे हैं न ?’

“मैंने कहा—‘हाँ’ और नीचे उतर गया ।

“उस दिन मैंने रास्ते में चाकलेट खरीद लिए थे । रीता और मीता को चार-चार चाकलेट दे दिए । रीता ने पूछा—‘इतना ही ?’

“रीता उस दिन एक अजीब मस्ती में थी । उसकी आँखें रह-रहकर चमक उठती थीं और मीता की बड़ी-बड़ी आँखों से टकराकर मेरी ओर लौट आतीं । मैंने रीता के सवाल का कुछ जवाब नहीं दिया । बदले में चार और चाकलेट निकालकर उसकी हथेली पर रख दिए । रीता ने कहा—‘और मेरी सहेली को ?’

“मैंने मीता को भी दो चाकलेट दे दिए !”

“आगे आकर रास्ते पर रिक्शा करने की बात चली तो मैंने दो रिक्शेवालों को पुकारा । रीता बोली—‘दो क्या होंगे !’

“एक रिक्शावाला बेचारा, निराश होकर लौट गया ।

“मैंने पूछा—‘एक ही रिक्शे पर सामान और हम तीनों कैसे अटेंगे ?’

‘रीता बोली—‘आप बैठिए न ! मैं बता देती हूँ कि कैसे अटेंगे ।’

“मैं रिक्शे पर बैठ गया । सामान नीचे रख दिया गया । रीता ने मीता से कहा—‘मोटकी ! चल बैठ ! मैं तेरी गोद में बिराजूंगी !’

“मीता बोली—‘मेरी गोद में काहे को बिराजोगी !’

“इस पर रीता ने मीता को इतने जोर से चिकोटी काटी कि मीता जोर से चीख उठी । रिक्शेवाला धूमकर ताकने लगा । मैंने मीता को बाँह पकड़कर उसे रिक्शे पर खींच लिया । मीता सीट पर बैठे-बैठे कि रीता उसकी जाँघों पर धम्म-से बैठ गई !

“मैंने कहा—‘बढ़ाओ रिक्शा !’

“हमलोग वहाँ से सीधे कला-प्रसार-केन्द्र में आए । रिक्शा बाहर खड़ा करके मैं थियेटर के अन्दर गया और वहाँ के सभी निर्देशकों, अधिकारियों और अभिनेताओं को ‘पास’ और निमन्त्रण-पत्र दे आया । मुझे बाहर तक पहुँचाने के लिए, वहाँ के सबसे ज्यादा रसिक निर्देशक, महादेव सिंह बाहर आए । रिक्शे पर दो लड़कियों को बैठे देखकर पूछा—‘क्या बात है हजरत ?’

“मैंने कहा—‘आज स्टेज-रिहर्सल है । वहीं जा रहे हैं ।’ मेरी गम्भीर आकृति देखकर बेचारे सिंहजी की रंगीनी आगे बढ़ने से गई ।

“सिंहजी थियेटर के मशहूर और बदनाम, दोनों तरह के अधिकारियों में हैं। एक अभिनेत्री को फिल्मकम्पनी में ले जाने का प्रलोभन देकर उससे शादी भी कर ली है। यूँ, बहुत ही दिलचस्प, दिलफेंक और मस्त जीव हैं। लापरवाही और दबंगपन के अलावा भी उनमें ऐसी कई सिफतें हैं, जिनसे लोग उन्हें मानते हैं ! कोकिलाजी से उनकी बहुत बनती है।

“मैं सिंहजी से विदा लेकर रिक्शे पर जवतक बैठ नहीं गया, तबतक वे बड़े प्रेम और सन्देह से हमलोगों की ओर घूरते रहे। उन्हें ऐसा ताकते देखकर रीता और मीता हँस पड़ीं। जब रिक्शा आगे बढ़ा तो रीता ने चमेली के फूलों के दो गुच्छे धीरे से मेरी ओर बढ़ा दिए। मैंने उन्हें चूम लिया। उसके बाद मैंने बड़ा गुच्छा रीता के और छोटा मीता के जूड़े में लगा दिया। दोनों एक दूसरे की ओर तिरछी निगाहों से देखकर मुस्कुरा पड़ीं। मैं गम्भीर होकर रास्ते पर आने-जानेवाली मोटरों और रिक्शों को देखने लगा। सामने से दो-तीन युवक आ रहे थे। देखने में तो सरकस के बाहर खड़े होनेवाले छोकरोँ की सूरत थी, मगर रीता-मीता को देखकर यूँ ललचाए, जैसे अश्विनीकुमारों के भतीजे हों ! रीता बेहद चंचल लड़की है। उसने उन्हें देखकर कुछ कह दिया। वे भी मैं जाने क्या कुछ कहकर चले गए।

“मैंने रीता को डाँटा—‘देखो रीता ! ऐसा नहीं किया करते ! तुम्हें कई बार देखा है कि जब तुम चलती हो, तब रास्ते में ऊट-पटाँग हरकतें करती हो। तुम तो अपनी सहज स्वाभाविक चंचलता और अलहड़ता से यह सब करती हो लेकिन लोग ऐसी लड़कियों को बुरी नजर से देखते हैं। उस दिन की याद है—जब हमलोग सामान लेकर आ रहे थे तो तुमलोगों को देखकर कुछ लड़कों ने तानाकशी की थी ? रीता ! अब गम्भीर बनो। मीता तो गम्भीर है, मगर जब तुम दोनों साथ हो जाती हो तो ऐसा रवैया अख्तियार करती

हो कि गुंडे तो गुंडे, अच्छे-अच्छे नवजवान भी तुम लोगों का पीछा करने लगें ।’

“रीता पर मेरा यह लम्बा उपदेश बहुत गहरा लगा । वह कुछ सोचने लगी । मीता ने कहा—‘बात तो ठीक ही है, रीता !’ रीता और गम्भीर हो गई ।

“गाँधी-हौल पहुँचकर हमलोगों ने अपना-अपना काम सम्भाल लिया । मैं धूम-धूमकर माइक, रोशनी, मेक-अप, पर्दा वगैरह का प्रबन्ध देखने लगा । कुमार, काशी और लक्ष्मण पहले से ही पहुँच गए थे । जब सब साजो-सामान ठीक हो गया तब काशी ने कहा—‘अब रिहर्सल शुरू हो ।’

“मैंने कहा—‘जरा शर्माजी और कोकिलाजी को आ जाने दो !’

“माधुरी, मीनाक्षी और उर्मिला भी आ गई थीं । शिवदेब बाबू भी थे । काशी ने पूछा—‘ये रीता-मीता कहाँ गईं ?’

“मैंने कहा—‘अभी तो यहीं थीं !’

वह दोनों को देखने के लिए बाहर जा ही रहा था कि वे आ गईं । रीता के हाथ में सफेद फूलों का एक गुच्छ था । काशी ने पूछा—‘कहाँ गई थीं तुमसब ?’

“रीता बोली—‘बगीचे में !’

“क्या करने ?’

“फूल तोड़ने ।’

“यह फूल मुझे दे दो !’

“नहीं दूँगी !’ रीता ने डपटकर कहा ।

“काशी ने झपटकर रीता के हाथ से फूल ले लिए । मीता ने उच्चकर काशी से फूल छीन लिए और रीता को देकर बोली—‘लो रीता !’

“रीता ने फूल हाथ में लिए ही थे कि काशी ने दुबारा चील-झपट्टा मारा और फूल छीन लिए । जब रीता बिगड़कर फूल माँगने

लगी तो काशी ने उसे फर्श पर गिराकर जूने से ऐसे रगड़ा कि बेचारे फूल उबाले हुए साग की तरह हो गए। रीता की आँखें डबडबा आईं। उससे रहा नहीं गया। मीता रीता की बांह पकड़कर बोली—‘चलो ! दूसरा ले आएँ !’ रीता ने मीता से हाथ छड़ा लिया। वह इतने गुस्से में थी कि कुछ बोल नहीं सकी। उसकी आँखों से चिनगारियाँ बरस रही थीं। उसने फूत्कार छोड़ते हुए कहा—‘राक्षस कहीं का ! ! !’

‘मैं स्टेज से ही, यह दृश्य देख रहा था। मगर पास इसलिए नहीं गया कि लोगों के सामने फूलों का अधिकारी अपने आपको क्यों घोषित करूँ। काशी ने जब मुड़कर मुझे देखा तो बेशर्मी से कहा—‘हैं हैं हैं हैं ! आप यहीं हैं ?’

‘जी हाँ !’ मैंने गम्भीर होकर कहा।

‘मेरा ‘जी हाँ’ सुनकर काशी घबड़ा-सा गया। वह चुपचाप ‘मीनरूम’ की ओर खिसक गया। काशी के लज्जित होने, और मेरा कड़ा रख अस्तिथार करने से रीता को कुछ सन्तोष हुआ। मगर गुस्सा अभी भी उसके चेहरे पर तमतमा रहा था। वह मीता को साथ लेकर बाग की ओर चली गई। गाँधी-हौल के चारों ओर सुन्दर-सा बगीचा है। तरह-तरह के देशी-विदेशी फूलों को खुशबू और रंगीनी देखने ही लायक है। करीब पाँच-सात मिनटों के बाद, तीन-चार फूलों को सरों के पत्तों के ऊपर रखकर, बाँधे हुए गुच्छे के साथ, रीता हौल में आई। उस वक्त गर्माजी और कोकिलाजी भी आ गए थे। रीता ने मीता को कहा—‘तू दे दे !’

‘मीता डरने लगी तो रीता ने कहा—‘अच्छा चल ! स्टेज पर चल !’

‘मैं स्टेज पर ही था। स्टेज के पास दीवार से हटकर एक पर्दा टेंगा हुआ था। रीता और मीता उसी पर्दे के पीछे चली गई। थोड़ी देर के बाद जब मैं उधर झाँका तो देखा—रीता कालिदास की शकुन्तला की तरह लेटी हुई कुछ गुनगुना रही है। मीता उसकी बगल

में बैठी, उसके जूड़े में जड़े हुए मेरे फूल से खेल रही है । मुझे देखते ही रीता उठ बैठी । मीता ने कहा—‘इधर आइए न !’

“जब मैं पास गया तो रीता ने उठकर मेरे ओवरकोट में वे फूल लगा दिए । यह वही ओवरकोट था, जिससे मैंने रीता का सारा शरीर उस बस-यात्रा में लपेट दिया था और उसकी सर्दी कम हो गई थी । मैंने फूलों को कोट से निकालकर आँखों से लगा लिया । रीता शरमा-कर स्टेज से नीचे भाग गई । मीता भी धीरे-धीरे उसके पीछे चली गई ।

“उसके कुछ ही मिनटों बाद, स्टेज-रिहर्सल शुरू हो गया । रिहर्सल को देखकर नाटक की सफलता सुनिश्चित हो गई । काशी और कुमार भी बहुत प्रसन्न हुए । शर्माजी ने कहा—‘कृष्णजी !’ आज-तक ऐसी चीज यहाँ कभी नहीं हुई थी ।’ कोकिलाजी बोलीं—‘यह सब कृष्ण भगवान की ही कृपा है !’

“रीता और मीता ने एक दूसरे को देखा और मुस्कुरा पड़ीं । हौल के बाहर घोड़ागाड़ी खड़ी थी । हनलोगों को उसी पर जाना था । बैठने के पहले, कौन किधर बैठे, इसको लेकर, मैं, रीता और मीता उलझन में पड़ गए । चूँकि मैं खड़ा था इसलिए शर्माजी और कोकिलाजी भी नहीं बैठ रहे थे । मैं बिना आगा-पीछा सोचे एक कोने में जा बैठा । मेरा बैठना था कि काशी लपककर मेरे पास बैठ गया । काशी के साथ कुमार और मनोज बैठ गए । सामने की सीट पर शर्माजी, कोकिलाजी, मीता, रीता और सरोज । गाड़ी घर की ओर बढ़ी । कुछ दूर आगे जाने पर कोकिलाजी ने कोट में लगे हुए फूलों को देखकर कहा—‘बहुत सुन्दर लगते हैं आपके कोट में ! कहाँ से लिए थे ?’

“मैंने कहा—‘वहीं, हौल के बगीचे से !’

“रीता डर के मारे सरोज से बोल पड़ी—‘क्यों धक्का दे रहा है मुझे ! सीधी तरह बैठ न !’

“सरोज रुआँसा-सा होकर बोला—‘देखिए न बाबूजी ! मैं कितना अलग बैठे हूँ, फिर भी डाँट रही है !’

“शर्माजी ने दोनों को डपट दिया । फूलों की बात आगे बढ़ने से बच गई ! रीता की जान में जान आई । मीता ने कहा—‘आगे रुकवा लीजिएगा । मेरा घर आ गया है !’

“जब मीता का घर आ गया तो वह उतर पड़ी । काशी उसे पहुँचाने गया । काशी ने सर्दी की वजह से उसे अपना गुलबन्द दे रखा था । घोड़ागाड़ी से मैं और कुमार भी उतर पड़े । हमलोगों का घर भी वहाँ से करीब ही था । शर्माजी, कोकिलाजी और रीता से नमस्ते-नमस्ते हुई और घोड़ागाड़ी आगे बढ़ गई । जब काशी मीता को पहुँचाकर हमलोगों के पास आया तो बोला—‘कृष्ण भाई ! मैं ने भी अपना खाता खोल लिया है !’

“क्या मतलब ?”

“जब मैंने मीता से गुलबन्द माँगा तो वह मेरे गले से लिपट गई ! अहा हहा ! लुत्फ आ गया ! ! !”

“कुमार ने लंबी साँस लेकर कहा—‘और एक मैं हूँ !’

“मैंने कहा—‘कुमार ! यह काशी बाबू की बातें हैं । सी में सवा सौ बाद करके समझो !’

“तब कुमार को कुछ तसल्ली हुई और काशी बेचारा मुँह बनाकर रह गया ।

“कुमार ने मेरे कोट में लगे हुए फूलों को देखकर कहा—‘सचमुच कृष्ण ! तुम्हें ये फूल इतना फब रहे हैं कि कुरबान जाऊँ ! भरसक तुम्हें.....!’

“काशी ने कहा—‘बड़े भैया हैं भाई ! !’

“मैंने कहा—‘तुमलोग चुपचाप घर चले जाओ ! देर हो रही है; वरना बीवियों से जूते खा जाओगे !’

“दोनों हँसते हुए चले गए ।”

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! क्या अच्छा हो कि अब हम दोनों भी हँसते हुए ही यहाँ से घर चल दें ।’

ललित गंभीर होकर बोला—‘आप तो इस दुनिया में हँसते हुए आए हैं भैया ! हँसते हुए चले भी जायेंगे । बन्दे की किस्मत में तो रोना ही लिखा है । मरते दम तक भी उसका दामन नहीं छूटने का ! खैर, आप कहते हैं तो हँसते हुए ही चलता हूँ ।’ ऐसा कहकर ललित ने पूरी की पूरी बत्तीसी बाहर कर दी । कृष्ण ठहाका मारकर हँस पड़ा । कृष्ण ने जब ठहाके पर ठहाके लगाने शुरू किए तो ललित भी नहीं रह सका और हँसते-हँसते उसके ठहाके में सम्मिलित हो गया !



नाटक ! नाटक !! नाटक !!!

ललित ने कहा—‘आज जो अध्याय शुरू होगा, उसका शीर्षक क्या रखूँ कृष्ण भाई ?’

कृष्ण ने कहा—‘शीर्षक अध्याय लिखे जाने के बाद ही रखना चाहिए। मगर यह उपन्यास ऐसा उपन्यास नहीं, जिसमें कुछ नया जोड़-जाड़ करने की गुंजाइश हो। इसलिए इस अध्याय का शीर्षक रख दो—‘नाटक ! नाटक !! नाटक !!!’

ललित ने कहा—‘यह तो विचित्र शीर्षक है कृष्ण भाई !’

कृष्ण मुस्क्राते हुए बोला—‘हाँ ललित ! इस अध्याय में ऐसे महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक दिन की चर्चा है, जिस दिन तीन-तीन नाटक हो गए थे। उस दिन की याद आते ही रोमांच हो जाता है। खैर, मेरे रोमांच और तुम्हारे उपन्यास से क्या वास्ता ! चलो, लिखना शुरू कर दो।’

“सुबह चार बजे एक घोड़ा-गाड़ी आकर मेरे डेरे के सामने खड़ी हो गई। मैं तो नींद में बेखबर था, मगर नीकर जगा हुआ था। उसने दरवाजा खोलकर देखा तो दौड़ा हुआ मेरे पास आया। उसने मुझे रजाई सहित झकझोर कर जगा दिया और बोला—‘हुजूर ! मालकिन आ गई हैं !’ मुझे लगा कि सपना देख रहा हूँ। मैं करबट

बदल कर सो रहा । तब तक मेरे दोनों बच्चे 'बाबूजी ! बाबूजी !' कहते हुए कोठरी में दाखिल हो गए । उनके पीछे श्रीमतीजी भी पधारीं । सामान वगैरह रखवाकर साले साहब ने भी दर्शन दिए । मैंने पूछा 'तुम ? क्या बात है ?'

"श्रीमतीजी बोलीं—'घर पर कोई नहीं है । माँ-बाबूजी तीरथ चले गए हैं । चाचाजी ने बँटवारा कर लिया है । वे अब साथ नहीं रहते । अकेले वहाँ मन नहीं लगता था । भैया गए तो सोचा कि यही चली आऊँ; हवा-पानी बदल जायगा ।'

"मैंने छोटे बच्चे को गोद में उठाते हुए कहा—'ठीक है, कई दिन पहले कोकिलाजी ने भी कहा था कि श्रीमतीजी को बुला लीजिए ।' वास्तव में, श्रीमती का उस समय आ जाना मुझे फूटी आँखों भी नहीं भाया, मगर मैं तो उन लोगों में हूँ जो सोचते हैं कि 'जाही बिधि राखे राम, ताही बिधि रहिए ।'

"श्रीमतीजी ने तुरत पूछा—'कौन कोकिलाजी ?'

"मैंने उनसे शर्माजी, कोकिला जी, रीता, मनोज, सरोज, कुमार, काशी और गोपाल, सभी का परोक्ष परिचय दे दिया । उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—'बहुत जल्दी आपने यहाँ इतना बड़ा परिवार बना लिया है !'

"मैं बोला—'पति किसका हूँ !'

"पत्नीजी गर्व में चूर ! वे बोलीं—'इधर पन्द्रह-बीस दिनों से आपने पत्र क्यों नहीं लिखा ?'

"नाटक की तैयारी में मशगूल था !'

"कैसा नाटक ?'

"हमलोग एक नाटक खेल रहे हैं; आज ही । तुम भी आज ऐसे नाटकीय ढंग से आ गईं कि क्या कहूँ ! वरना यह नाटक तुम नहीं देख पातीं । यह ऐसा नाटक है कि देखोगी तो बस, देखती रह जाओगी ! हाँ ! ! !'

“पत्नी मुस्कराने लगीं । उसके बाद गोपाल, काशी और कुमार पहुँचे । सबसे पत्नी का परिचय करा दिया । वे लोग गए कि कोकिलाजी, रीता और सरोज के साथ, न जाने कैसे-कैसे आ गई । पत्नी और बच्चों को देखकर तो उन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि जैसे मुँहमागी मुराद मिल गई हो । उन्होंने बड़े उल्लास से कहा—‘वाह ! यह आपने बहुत अच्छा किया ।’ वे बच्चों को उठा-उठाकर पुचकारने-दुलारने लगीं ।’

“मैंने देखा—रीता का मुँह कुछ उदास हो गया है । पत्नी कोकिलाजी के साथ आँगन में चली गई । बच्चे और सरोज छत पर खेलने लगे । मैंने मौका पाकर रीता से कहा—‘उदास होने की जरूरत नहीं है रीता ! बहुत शीघ्र चली जायँगी ।’

“मगर रीता ऐसी गहरी चिन्ता में निमग्न थी कि कुछ भी नहीं बोल सकी । किताब के पन्ने उलट-उलटकर उसने अपनी परेशानी छिपाने की कोशिश की पर सफ़ल न हो सकी तो पूछा—

“कब आई हैं ?”

“सुबह चार बजे !”

“इन्हें जाने मत दीजिएगा !”

“क्यों ?”

“मैं रोज़ आया करूँगी ?”

“रीता के इस वाक्य को सुनकर मेरी अक्ल ने कहा—‘कृष्ण ! तुम उल्लू आदमी हो । वह पन्ने उलट-उलटकर तरकीब सोच रही थी और तुम उसे परेशानी में पड़ी हुई देखकर सहानुभूति की वर्षा करने जा रहे थे ! कैसी है खोपड़ी तुम्हारी !’

“पत्नी अन्दर से बोलीं—‘सुनते हैं ! रीता को जाने मत दीजिएगा । आज सबलोग यहीं जलपान करेंगे !’

“मैंने कहा—‘ठीक है ।’

“मुझे इससे ज्यादा और क्या चाहिए था। रीता कुर्सी से उठकर बिछावन पर चली गई। मेरे तीसरे बच्चे को, जो उस वक्त आठ महीने का था, गोद में उठाकर रीता ने कहा—‘बहुत कमजोर है!’

“हाँ ! जन्म से ही ऐसा है !’ ऐसा कहकर मैंने शिशु को अपनी गोद में लेने के लिए हाथ बढ़ाया। कहीं मेरे हाथ रीता के शरीर को छू न लें इसलिए उसने शिशु को तुरत आगे कर दिया। मगर दो अँगुलियाँ आखिर जा ही लगीं। वह हिरनी-सी चौंकर खड़ी हो गई और कुर्सी पर आकर बैठ गई। मैंने शिशु को बिछावन पर सुला दिया और रीता के पास आकर कुर्सी पर बैठ गया। मेज पर राखदानी पड़ी थी। रीता ने उसमें झाँक कर देखा। उसमें सिगरेट के कुछ टुकड़े नजर आए। टुकड़ों की ओर देखकर फिर उसने मेरी ओर देखा और उसके बाद दीवाल पर टँगे बापू के चित्र को देखने लगी। थोड़ी देर बाद उसने कहा—‘आज आपको एक बात की शपथ खानी होगी !’

“सिगरेट नहीं पीने की ?’

“हाँ ! और आज ही से !’

“मैंने कहा—‘रीता ! मैं सिगरेट छोड़ दूँगा ! लेकिन मुझे दो दिन और पीने दो। आज और कल ! परसों से एकदम छोड़ दूँगा। तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ। रीता ! तुम्हारे लिए मैं दुनिया की प्यारी-से-प्यारी चीज भी छोड़ सकता हूँ। आज्ञा देकर देखो !’

“रीता की आँखें डबडबा गईं। मैंने उधर देखा और कुछ कहना ही चाहता था कि कई बूँदें किताब पर आ गिरीं। उस वक्त रीता का चेहरा पूर्णिमा के चाँद की तरह देदीप्यमान हो गया था। आँखें अमृत बरसा रही थीं !! मैंने उसके आँसू हाथ से पोंछ दिए और धीरे से उठकर आंगन में चला गया ताकि गैरहाजिरी में उसे सम्भलने का मौका मिल जाय। पत्नी और कोकिलाजी के आ जाने की भी कुछ आशंका थी !

“थोड़ी देर बाद, आंगन में सबोंने मिल-जुलकर जलपान किया । रीता बेहद खुश नजर आ रही थी । कोकिलाजी ने सरोज और रीता की ओर इशारा करके कहा—‘इन्हें ये अपने बच्चों से भी ज्यादा प्यार करते हैं !’

“मैंने तुरत कहा—‘मगर अब नहीं कल्लंगा !’

“पत्नी चमककर बोली—‘क्यों ?’

“इसलिए कि अब मेरे अपने बच्चे आ गए हैं !’ पत्नी को मेरी यह बात बहुत बुरी लगी । उन्होंने सोचा कि कैसे आदमी हैं कि दूसरों के बच्चों के प्रति उसके मुँह पर ही ऐसी उपेक्षा दिखाते हैं ! शायद कोकिलाजी को भी मेरी वह बात अच्छी नहीं लगी; मगर रीता मेरा अर्थ समझ गई ।

“जब वे लोग अपने घर जाने लगे तो पत्नी ने कहा—‘रीता ! रोज आ जाया करना ! मैं तो यहाँ अकेली हूँ न !’

कोकिलाजी बोली—‘हाँ हाँ ! रोज आ जाया करेगी !’

“उनलोगों के चले जाने के बाद श्रीमतीजी मुझपर टूट पड़ीं—‘आप साहित्यिक लोगों को बातचीत करने की भी तमीज नहीं होती !’

“कैसे ?”

“उनके मुँह पर कहने की क्या जरूरत थी कि अब उनके बच्चों को प्यार नहीं करेंगे ?’

“तो क्या मन में ही रखे रहता ! देखो शारदा, मुझे न तो झूठ बोलना आता है, न कुछ छिपाना ! जो पेट में, वह जुबान पर !’

“पत्नी मेरी पढ़ी तो नवीं क्लास तक ही हैं मगर कान काटती हैं डाक्टरों के भी । तुरत बोलीं—‘जो पेट में, वह जुबान पर ! राम ! राम !!’

“उनका अभिनय देखकर मुझे अपनी बेवकूफी का भरपूर ज्ञान हो गया । मगर तीर तो निकल चुका था । मैंने पति होने के अधिकारी

स्वर में डाँटा—‘चलो, चलो ! जाकर बच्चों के कपड़े बदल डालो !’
पत्नी मुस्कराती हुई अन्दर चली गई ।”

ललित से कृष्ण ने कहा—‘यह तो हुआ पत्नी का नाटक । अब दूसरे नाटक का हाल लिखो ! इस दूसरे नाटक में ही तीसरा नाटक समाया हुआ है ! हाँ !—

“जिन्दगी के, जिसकी तैयारी कई दिनों से हो रही थी, जनता के सामने अभिनीत होने के दिन की यह घटना है । दर्शक धीरे-धीरे हौल में भर रहे थे । शहर के सभी प्रतिष्ठित और माने-जाने लोग आए थे । स्त्रियाँ भी काफी तादाद में थीं । नाटक शुरू होने के पहले की घंटी बजी । मैं उस वक्त हौल में अपनी और गोपाल की पत्नी को अच्छी जगह बिठाने की धुन में था । उसी वक्त शर्माजी घबड़ाए हुए आए । उन्होंने कहा—‘जरा जल्दी कीजिए ! घंटी बज गई है !’

“मैं बोला—‘इन लोगों को बिठाकर तुरत आता हूँ ।’ शर्माजी चले गए । इधर औरतों की सीटें प्रायः सब की सब, भर गई थीं । मैं कुर्मी मंगवाकर उन्हें बिठा ही रहा था कि शर्माजी फिर आ गए और तमककर बोले—‘आप क्या तमाशा कर रहे हैं ! सब लोग बिगड़ रहे हैं ।’

“मुझे शर्माजी का वह रवैया बहुत अपमानजनक मालूम हुआ । मैंने उन्हें डाँटा—‘आप चुपचाप जाइए ! मैं इन लोगों को बिठाकर ही आऊँगा । और, जरा बोलने की तमीज मीखिए ।’

“मैं जब उन लोगों को बिठाकर बाहर निकला, तो भी उस्ता कम नहीं हुआ था । वे आगे-आगे जा रहे थे । मैं जब भीनरूम में आया तो बोला—‘आपने वहाँ जाकर क्यों ऐसा व्यवहार किया मेरे साथ ? आपको मालूम होना चाहिए, मैं कृष्ण हूँ , कोई गुलाम नहीं आपका !’

“शर्माजी थे बीमारी के शिकार ; शरीर से कमजोर । मिजाज चिड़चिड़ा हो गया था ! पिनककर बोले—‘चलिए, चलिए ! ऐसे-ऐसे कई कृष्णों को देखा है मैंने !’

“बस, इतना मुनना था कि बदन में आग लग गई। उस वक्त मैं सीढ़ी से स्टेज पर जा रहा था। मैं ऊपर से ही उनपर कूद पड़ा। बीच में शिवदेव बाबू और काशी वगैरह ने रोक लिया, वरना उस दिन एक भयानक काण्ड हो जाता। फिर भी मेरा दिमाग इतना खराब हुआ कि रह-रहकर इच्छा होती, जाकर उन्हें जान से मार दूँ ! मुझे सभी लोग पकड़कर स्टेज पर ले आए। मैं माइक के सामने बिठा दिया गया, तो भी रह-रहकर बदन में चिनगारी फूट उठती और मैं उठ-उठ पड़ता। मुझे इस खौफनाक आकृति में रीता ने जो देखा तो अवाक रह गई। इस वक्त रोता, मीता, माधु, उर्मिला, मीनाक्षी और वादक, सभी लोग स्टेज पर ही थे। उनमें से किसी को भी ग्रीनरूमवाली घटना का पता नहीं था।

“रीता खिसककर मेरे पाँव के पास चली आई, और इशारे से पूछा—‘क्या बात है ?’

“मैंने कहा—‘कुछ नहीं !’

“मैं उस वक्त इतना क्रोधित और उत्तेजित था कि रोता आगे कुछ नहीं पूछ सकी। उसने धीरे से मेरे पैर पर अपना हाथ रख दिया। शिवदेव बाबू ने उसी वक्त आकर कहा—‘शर्माजी को यहाँ से हटा दिया गया है। देर बहुत हो रही है। कहिए तो तीसरी घंटी बजाकर पर्दा उठवा दूँ ?’

“मैंने कहा—‘ठीक है !’

“उसके बाद पर्दा उठा। मैं पार्श्वभूमि से कथा-सूत्र पढ़ने लगा। पहले दो दृश्य तो यूँही किताब की तरह पढ़ दिए। मगर धीरे-धीरे ‘मूड’ आता गया और अन्त में कलाकार राक्षस पर विजयी हुआ; मैं एकदम शान्त हो गया। फिर तो नाटक ऐसा जमा कि कमाल हो गया !

“नाटक समाप्त होते ही मैं तुरत बाहर भागा। बाहर शहर के एक प्रतिष्ठित मित्र खड़े थे। उन्होंने पूछा—‘चल रहे हैं क्या ?’

“मैं ‘हाँ’ कहकर उनकी कार में सवार हो गया ।”

ललित ने पूछा—‘और रीता, मीता वगैरह ?’

‘लिखो न, सब लिखा रहा हूँ !’

“मैं कार में बैठकर अपने डेरे पर चला आया । पत्नी पहले ही उठकर चली आई थीं । अन्त के दो दृश्य बच्चों के मारे वे नहीं देख सकी थीं । मैं जो अजीबोगरीब आकृति लेकर आया तो पत्नी ने पूछा—‘आपकी आँखें चढ़ी हुई क्यों हैं ? भाँग खाई है क्या ?’

“नहीं तो !’

“फिर क्या बात है ?’

“कुछ नहीं !’ मैंने छिपाने की कोशिश की । पत्नी को मेरा टालना शक में डाल गया । उन्होंने कहा—‘खाना खा लीजिए !’

“मैंने कहा—‘भूख नहीं है !’

“तब उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—‘आपको मेरी कसम है ! सच-सच बताइए ! क्या हुआ है ?’

“मैंने सारी घटना उनसे कह दी । वे बोलीं—‘आप बहुत शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं ! आखिर शर्माजी आपके पिता की उम्र के हैं !’

“मैं चुप रहा । पत्नी उसके बाद भी न जाने क्या-क्या उपदेश देती रहीं मगर मैं रजाई लेकर लेटा तो लेटे-लेटे सो गया ।”

ललित ने पूछा—‘खाना नहीं खाया आपने उस दिन ?’

‘नहीं ! तुम आगे लिखो !’

“दूसरे दिन सुबह, किसी के रोने की आवाज सुनकर नींद खुल गई । दिमाग में कई तरह की शंकाएँ हुईं । मैं पत्नीवाले कमरे में गया तो देखता हूँ—कोकिलाजी मेरी पत्नी का हाथ अपने हाथ में रखकर जार-बेजार हो चली जा रही हैं !

“मुझे तो वह दृश्य देखकर काठ मार गया । इच्छा हुई कि चरणों में सिर रखकर माफी माँग लूँ ! शारदा ने कहा—‘बैठिए न !’

“मैं बैठ गया तो कोकिलाजी ने रोते हुए कहा—‘आपको मैं उनसे जरा भी कम नहीं मानती । जबसे मुझे यह मालूम हुआ है, मैं कह नहीं सकती, मेरी क्या हालत हुई है । रातभर रोती रही हूँ । रीता भी रोती रही है । सरोज, मनोज, सभी रो रहे हैं । शर्माजी भी बहुत दुखी हैं । मैं आपसे प्रार्थना करने आई हूँ—आप उन्हें माफ़ कर दीजिए । मैं आपके पैर पकड़ती हूँ !’ ऐसा कहकर उन्होंने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा दिए । मैं चौकी से तुरत नीचे उतर गया । एक शब्द भी कहने की हिम्मत नहीं हुई । आँखों में आँसू आ गए । मेरा रोना देखकर शारदा भी डबडबा गयी । कोकिलाजी, मैं और शारदा, किसी के भी आँसू नहीं रुके । कुछ देर बाद, अपने पर काबू पाकर मैंने कहा—‘आप रोइए मत ! समझिए कि कल कोई घटना घटी ही नहीं थी । मैं भी भूल जाऊँगा !’

“कोकिलाजी बोलीं—‘नहीं ! आप अभी मेरे साथ चलिए ! रात में किसी ने भी खाना नहीं खाया । रीता तो रो-रोकर और बेहाल हो रही है !’

“मैंने कहा—‘आप चलिए, मैं एक घंटे में आता हूँ ।’

“शारदा ने भी उन्हें काफी तसल्ली दी । पत्नी का हार्दिक आश्वासन पाकर वे आँसू पोंछती हुई चली गयीं । मैं चुपचाप नहा-धोकर बैठक में चला आया । पत्नी ने कहा—‘जाइए न !’

“इच्छा नहीं होती है !’

“एक घंटा से ज्यादा हो गया !’

“नहीं जाऊँगा !’

“पत्नी मुझपर बिगड़ना ही चाहती थीं कि रीता पहुँच गई । उसकी आँखें रो-रोकर बेतरह सूज गई थीं । बाल चारों ओर बिखरे हुए थे । वह आकर चुपचाप बैठ गई । पत्नी ने कहा—‘इन्हें पकड़कर ले जाओ रीता !’

“रीता ने आँसू-भरी आँखों से मेरी ओर देखा । मैं नख से शिख तक थर्रा उठा । करुणा की ऐसी भींगी और जीती-जागती तस्वीर मैंने जीवन में कभी नहीं देखी थी । मैंने हृदय और मस्तिष्क का सारा साहस बटोरकर कहा—‘चलो रीता ! चलता हूँ !’

“मैं रीता के साथ उसके घर की ओर चल पड़ा । रीता मेरे इस आकस्मिक फैसले पर जैसे गौरवान्वित हो उठी । उसने मन में सोचा होगा, माँ के आने से यह नहीं गए और मैं लेकर जा रही हूँ !’

“जब हमलोग चलते-चलते घर के पास पहुँचे तो मैं अचानक रुक गया । रीता ने मेरा हाथ पकड़कर कहा—‘चलिए न !’

“न जाने मुझे क्या हो गया । मैंने झटके से रीता का हाथ छड़ा लिया और अपने डेरे की ओर तेजी से भाग पड़ा । रीता भी मेरे पीछे-पीछे ही आई ! उसने मेरे डेरे पर आकर कहा—‘आपको मेरी कसम है, चलिए ! आपको चलना ही होगा !!!’

“मैंने कहा—‘रीता ! जहाँ मेरा इतना अपमान हुआ है, वहाँ मुझे मत ले जाओ ! मत ले जाओ मुझे वहाँ !’ ऐसा कहकर मैंने अपना सिर रीता की गोद में रख दिया । रीता मुझे आँसुओं में भींगा देखकर स्वयं रोने लगी । शारदा उस समय छत पर थी । रीता का रोना देखकर मैं और ज्यादा दुखी हो गया । बहुत देर के बाद हम दोनों चुप हुए । रीता ने आँसू पोंछते हुए कहा—‘अगर आप नहीं चलिएगा तो मैं जहर खा लूंगी । आप की शपथ कहती हूँ । यह प्रतिज्ञा मैंने उसी वक़्त की थी जबकि माँ ने कहा था कि आप अब हमारे यहाँ कभी नहीं आएँगे । मैंने मन-ही मन प्रण किया था कि या तो आपको अपने घर ले आऊँगी या घतूरे के बीज खाकर प्राण दे दूँगी । बीज अभी तक घर पर हैं !’

“रीता की भयानक दृढ़ता देखकर मैं विचलित हो गया । मैंने अपनी व्यर्थ की भावुकता को दबाकर कहा—‘रीता ! अब मैं जरूर

चलूंगा, चाहे जो हो ! मगर याद रखो । मैं आज तुम्हारे लिए ही चल रहा हूँ । सिर्फ तुम्हारे लिए !!'

“रीता कुछ भी नहीं बोली । वह उठकर खड़ी हो गई और मुझे आगे बढ़ने के लिए रास्ता दे दिया । मैं रीता के साथ उसके घर जाकर सीधे उसीके कमरे में चला गया । बाहर की बैठक में कोकिलाजी, शर्माजी और सरोज बैठे थे ! मनोज कहीं बाहर गया था । सरोज ने मुझे अन्दर जाते देख लिया था । उसने चिल्लाकर कहा—‘माँ ! बाबूजी !! भैयाजी आ गए !!!’

“वे तीनों तुरत रीता के कमरे में आ गए । मैं चौकी पर बैठा था । शर्माजी झुककर मेरे सीने से लिपट गए । मैंने भी उठकर उन्हें बाँहों में बाँध लिया ।

“रीता खुशी के मारे रो पड़ी । कोकिलाजी भी डबडबाकर बाहर चली गई । सरोज ने ताली बजा-बजाकर कहना शुरू किया—‘भरत-मिलाप हो रहा है ! देखो रीता ! भरत-मिलाप हो रहा है !! देखो भाइयो ! भरत-मिलाप हो रहा है !!!’

इतना लिखकर ललित ने कहा—‘अब आगे नहीं लिखा जा सकता कृष्ण भाई ! बस कीजिए । अगर यह काण्ड भरत-मिलाप से समाप्त नहीं होता तो मैं नहीं कह सकता कि कल से मैं उन्म्यास आगे लिखने के लायक रह जाता कि नहीं !’



सिगरेट पीना बन्द !

और दिनों की तरह उपन्यास आज भी चल रहा है—

“रीता के कहने पर मैंने सिगरेट पीना छोड़ दिया । शर्माजी, काशी और कुमार का ख्याल था कि मैं सिगरेट नहीं छोड़ सकूँगा । उनका ख्याल सही था । मगर मैं छोड़ क्यों रहा हूँ, यह कोई नहीं जानता था । तीन-चार दिनों तक शर्माजी तंग करके रह गए, मगर मैंने नहीं पी ! नहीं पी !! एक दिन कुमार ने अपने पैसे से सिगरेट खरीदी । वह न तो खुद पीता था, न किसी को पिलाता था । हम दोनों उस दिन शर्माजी के घर बैठे हुए थे । चाय पीने के वक्त कुमार ने कहा—‘कृष्ण ! सिगरेट और चाय का रिश्ता, दामन-चोली का रिश्ता है । लो, आज भर पी लो !’

“मैंने कहा—‘कुमार ! आज क्या, कई वर्षों तक नहीं पीना है ।

“क्यों ?’

“यूँही !’

• “शर्माजी ने कहा—‘कृष्णजी ! आप भी कमाल के आदमी हैं ! मैं तो पान कम्बख्त को छोड़ना चाहता हूँ और नहीं छूटता !’

“कुमार को शर्माजी की इस बात से सन्तोष नहीं हुआ । उसने फिर जोर देकर पूछा—‘आखिर अचानक सिगरेट छोड़ देने का कारण क्या है ?’

“मैंने प्रतिज्ञा कर ली है !”

“क्यों ?”

“इसीलिए कि मैं उसका गुलाम बनता जा रहा था ।”

“कुमार ने मेरे संयम और नियन्त्रण-बल की बहुत-बहुत प्रशंसा की । जब हमलोग बाहर निकले तो रीता ने आकर कागज के तीन टुकड़े दिए और कहा—‘एक कहानी लिखी है ! जरा इसे ठीक कर दीजिएगा ।’

‘ललित ! रीता ने जीवन में पहली बार कहानी लिखी थी । आदमी लेखक कब, कैसे और क्यों बन जाता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण वह कहानी थी ।’

ललित ने पूछा—‘आपको वह कहानी याद है ?’

पूरी तो नहीं ! हाँ ! थोड़ी-थोड़ी याद है । उसने उस कहानी का शीर्षक दिया था—

‘वह परकटा परिन्दा’

कहानी यूँ थी—

‘लो, सिगरेट पियो !’ श्याम बोला ।

‘नहीं !’ सुमन ने कहा !

‘क्यूँ ?’

‘यूँही !’

‘तुम्हें पीने से किसी ने मनाकर दिया है ? तुम तो बिना सिगरेट के एक क्षण भी नहीं रहते थे ! विचित्र बात है ! ओहो ! अब समझा ! तुम्हारी उसने.....।’

‘चुप रहो ! एक चाँटा जड़ दूँगा ज्यादा बदतमीजी करोगे तो ! कहे देता हूँ ! हाँ !’

‘भला ! अवश्य !! उसके चलते जड़ दो चाँटा ! मैं थोड़े रोक रहा हूँ !’

‘अरे यार ! तुम तो नाराज हो गए ! अच्छा, सभी बातें कहता हूँ । पहले हाथ मिलाओ !’ दोनों दोस्त मुस्कुरा उठे ।

‘हूँ हूँ ! मैं क्यों नाराज होने लगा !’ श्याम हँस पड़ा ।

सुमन ने कहा—‘ओह ! हाँ, कहता हूँ । इधर मेरी तरफ कान करो । कान में ही कहूँगा । नहीं तो.....।’

‘बलम धीरे बोल, कोई सुन लेगा । क्यूँ ?’—श्याम ने कहा ।

‘अच्छा, अब सुनोगे या नखरे करोगे ?’

श्याम कुर्सी खींचकर सुमन के पास बैठ गया । थोड़ी देर तक फुस-फुस बातें होती रहीं ।

श्याम बोला—‘ओ ! समझ गया !!! आपकी मंजरी बे सिगरेट छुड़वा दी ! और आप उसकी बात मान गए ! हाँ, ठीक ही किया तुमने सुमन ! नहीं तो वह नाराज हो जाती और तुम दोनों की मीठी-मीठी बातें और.....और.....क्या-क्या बन्द हो जाता !’

सुमन चुप रहा । श्याम ने कहा—‘अरे यार ! वह अभी यहाँ कहाँ है कि देखेगी ! पी लो एकाध ! क्यों, क्या गलत कह रहा हूँ ? यही तो जीवन है । अहा !.....।’

सुमन जरा घबड़ाकर बोला—‘वह न सही, उसकी आत्मा तो देखती होगी । उसके प्रति मैं ऐसा अन्याय नहीं कर सकता । उफ् ! कितनी प्यारी है ‘वह’ !

सुमन आँखें बन्द किए रहा और अचानक फिर बोला—‘श्याम ! तुमने देखा है मंजरी को ?’

‘हाँ, हाँ ! कितनी बार देखा है ! अच्छा ! चलते हो या मंजरीमय हो जाओगे ?’

दोनों दोस्त रास्ते-भर मंजरी की ही चर्चा करते रहे ।

मंजरी १४ साल की लड़की है । देखने-सुनने में साधारण ।

हाई स्कूल में पढ़ती है । उसके पिता व्यापार करते हैं । भाइयों की लाड़ली बहन है वह ! माँ उसे बहुत प्यार करती हैं ।

एक वर्ष के उपरान्त !!!

सुमन आफिस से लौट रहा था । गली में आते ही किसीने पीछे से उसकी आँखें मूँद लीं ।

‘कौन ? श्याम ? अरे तुम यहाँ कैसे ?’

‘यहीं बदली हो गई है !’

‘अच्छा ! चलो डेरे पर । वहीं बातें होंगी ! श्याम सुमन के साथ उसके डेरे पर चला गया ।

श्याम ने सुमन को बड़े गौर से देखकर कहा—‘एक बात पूछूँ सुमन ? तुमने अपनी यह क्या दशा बना रखी है ?’

‘कैसी दशा ?’ पैकेट खोलकर, मुँह में सिगरेट लगाते हुए सुमन ने कहा और पैकेट श्याम की ओर बढ़ा दिया ।

‘अरे ! तुम सिगरेट पीने लगे ? कब से ? और मंजरी कहाँ गई ?’

‘हाँ ! मैं सिगरेट पीता हूँ ! मंजरी को भूलने के लिए पीता हूँ । उसीने आदेश भी दिया था । अकेले मनुष्य का सिगरेट ही न साथी है श्याम ! उसने कहा था—‘मैं तो अपनी ससुराल जा रही हूँ ! तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ ! मैं मजबूर हूँ ! नहीं तो तुम्हें छोड़कर नहीं जाती !’

‘श्याम ! वह मुझसे कह गई है—सिगरेट पीना ! और खूब पीना !! और श्याम ! तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मंजरी अब इस दुनिया में नहीं रही ! सुना कि शादी के कुछ ही महीने बाद वह इस दुनिया से चल बसी !

‘तबसे मैं खूब सिगरेट पीता हूँ श्याम ! पी रहा हूँ !! और पीऊँगा भी !!!’

सुमन ने सोचा कि शायद श्याम को उन्माद हो गया है !
कृष्ण ने कहा—‘यही कहानी थी ललित ! रीता की पहली कहानी ! ! !’

कृष्ण ने देखा कि ललित की आंखें आंसुओं से भर आई हैं तो उसने ढाँटा—‘यह क्या है ललित !’

ललित बच्चे की तरह फूट पड़ा । ललित की इस हालत से कृष्ण को न जाने क्या हुआ कि वह उठकर सामने के कुंज की ओर टहलने चला गया । थोड़ी देर के बाद आकर उसने ललित से कहा—‘देखो ललित ! अगर ऐसा करोगे तो मैं उपन्यास लिखाना बन्द कर दूँगा ! ये सब मेरी अपनी बातें हैं । तुम्हें इनमें दखल देने का कोई हक नहीं है !’

ललित ने दृढ़ होकर कहा—‘ये बातें आपकी नहीं हैं कृष्ण भाई ! ये बातें हमारी हैं ! संसार के अनगिनत प्रेमियों की हैं, जो मरे नहीं, मगर अपनी जिन्दा लाश जिन्दगी भर ढोते रहे !! उफ् ! ! !’

कृष्ण ने डपटकर कहा—‘व्यर्थ की बातें मुझे पसन्द नहीं हैं ललित ! चलो, उपन्यास लिखो !’

‘घर पर उस कहानी को मैंने कई बार पढ़ा । अगर मैं तुरत पत्नी से कोई दूसरी बात नहीं शुरू कर देता तो रो पड़ता । शारदा तबतक उठकर जलपान ले आई । मैं जलपान कर ही रहा था कि सरोज आ पहुँचा । उसने कहा—‘बाबूजी ने आपको, काशी बाबू को और कुमार बाबू को दोपहर में बुलाया है । रसीद बही लेते आइएगा । ‘जिन्दगी’ का हिसाब करना है ।’

‘दोपहर के करीब एक बजे, हम तीनों शर्माजी के यहाँ गए । देखा—रीता अपनी प्यारी सहेली मीता के साथ घुल-मिलकर बातें कर रही है । जब हमलोगों ने हिसाब-किताब खत्म कर लिया तो रीता चाय बनाकर ले आई । चाय पीकर काशी अन्दर चला गया

और कोकिलाजी, रीता और मीता से न जाने क्या-क्या बातें करता रहा ।

“रीता अन्दर से काशी के साथ ही लौटी । मीता भी आई । उस वक्त शर्माजी दूसरी कोठरी में चले गए थे । रीता-मीता को एकसाथ देखकर काशी ने कहा—‘तुम दोनों एक ही दूल्हे से विवाह क्यों नहीं कर लेतीं !’

“रीता-मीता हँस पड़ीं और मेरी ओर देखने लगीं । काशी उनसे और भी ऊटपटांग बातें करता रहा ! जब कोकिलाजी अन्दर आईं तो रीता ने कहा—‘माँ ! काशी दादा कहते थे कि दादा-पोती का रिश्ता घर पर रहेगा और बाहर, साली-बहनोई का रिश्ता रहेगा !’

“रीता की यह बात सुनकर कोकिलाजी सन्न रह गईं, क्योंकि वे हमेशा रीता को जहाँ-तहाँ काशी के साथ भेज दिया करती थीं । मुझे भी वह बात काँटे-जैसी चुभी । आखिर रीता को ऐसा कहने का साहस कैसे हुआ ? काशी का बर्ताव उससे किस प्रकार का रहा है, मैं इसी चिन्ता में खो गया ।

“जब हमलोग चलने लगे तो रीता ने कहा—‘मैं मीता को पहुँचाने जाऊँगी तो भाभीजी से मिलने के लिए आपके यहाँ भी आऊँगी । मीता भी आएगी !’

“मैंने कहा—‘जरूर आना ।’

“जब हम लोग आगे बढ़े तो काशी ने कहा—‘मैं कई दिनों से आपको एक बात कहना चाहता था कृष्ण भाई !’

“मैं बोला—‘देखो काशी ! मैं तुम्हें अपने छोटे भाई की तरह मानता हूँ । तुम जी खोलकर जो कहना चाहते हो, कहो । कोई बात छिपाओ मत ।’

“मैंने काशी से ये बातें इसलिए कहीं कि शायद ऐसा कहने से रीता और उसके सम्बन्ध का मुझे कुछ ज्ञान हो सके !

“काशी ने कहा—‘कृष्ण भाई ! मैं इस परिवार में तीन-चार बरसों से आ-जा रहा हूँ । ये लोग दूर के मेरे रिश्तेदार भी हैं । मैं इन लोगों को खूब अच्छी तरह जानता हूँ ! शर्माजी पेचिश के जन्मजात रोगी हैं । होमियोपैथी से ज्यादा आमदनी होती नहीं । घर का पूरा जिम्मा कोकिलाजी पर ही है । वे जिस प्रकार के जीवन में रखी जाती रही हैं, वह कलाकारों का जीवन रहा है । घर पर पेशेवर गायकों-वादकों और मनचले कवियों का जमघट; उनसे बेतकल्लुफी ! किसी-किसी का तो महीनों वहाँ ठहरे रहना । शर्माजी की अनुपस्थिति में भी वही हो-हल्ला । कोकिलाजी और शर्माजी का ऐसा रवैया देखकर उनके सगे रिश्तेदारों ने भी उनके यहाँ आना-जाना बन्द कर रखा है ।

“कृष्ण भाई ! रीता भी उसी वातावरण में पलकर सयानी हुई है । जो बचपन से देखा है, वही चढ़ती जवानी पर भी सवार है । मेरे साथ वह कई बार सिनेमा गई है । नैनीताल के एक राज-कुमार आए थे । उनसे गीत सिखवाने के बहाने मैं उसे कहीं-कहीं न ले गया हूँ । राजकुमार ने तो एक दिन उसे खींचकर गोद में बिठा लिया था । एक दिन मीता भी वहाँ गई थी । राज-कुमार बड़ा छँटा हुआ था । चूँकि मालदार था, इसलिए उसके यहाँ जाने देने में कोकिलाजी और शर्माजी कभी भी एतराज नहीं करते थे ।

“एक दिन की बात है । वह मेरे साथ सिनेमा गई हुई थी । जिस कोठरी में आजकल यह विद्यार्थी महोदय रहते हैं, उसी कोठरी में एक और लड़का रहता था । कोकिलाजी ने उन दोनों को इतनी छट दे रखी थी, जितनी बेटी और दामाद को भी नहीं मिलती । वे चाहती थीं कि दोनों में प्रेम हो जाय या कुछ लटपट हो जाय तो शादी कर दें । मगर वह लड़का बदमाश था । खूब मोज उड़ाता रहा, और शादी की बात तय पाकर भी नहीं हो सकी ।

जबतक वह शर्माजी के घर पर रहा, तब तक तो यही कहता रहा कि शादी जरूर करूँगा मगर अपने घर जाकर वह साफ मुकर गया । उससे मेरी बातें हुई थीं । वह कहता था कि ये लोग ऐसे नहीं कि मैं विवाह करके अपना जीवन शान्तिमय बनाए रख सकूँ । लड़की भी बेहद चंचल और उच्छ्रंखल है !

“हाँ, तो वही लड़का सिनेमा में हमलोगों के जाने के पहले से बैठा हुआ था । उसे देखकर रीता ने धूँधट निकाल लिया । मैं चुपचाप एक तरफ हो गया ।

“एक बात और है कृष्ण भाई ! लेकिन मैं उसे नहीं कहना चाहता !’

“इतना कहकर काशी चुप हो गया । मेरे बदन में आग तो लग ही गई थी, मैंने दिल कड़ा करके कहा—‘तुम्हें मेरी कसम है काशी ! तुम जरूर कहो !’

“काशी ने कहा—‘जब आपने अपनी कसम दे दी है तो मुझे कहना ही पड़ेगा । मेरा रीता के साथ बहुत दूर तक सम्बन्ध हो गया है !’

“मैंने मर्महित होकर पूछा—‘क्या मतलब ?’

“काशी बजाय कुछ कहनेके, मुँकुराने लगा ।”

‘ललित ! तूम नहीं जानते कि इतनी बातें सुनकर मेरी क्या हालत हुई । अगर उस वक्त मेरे पास पिस्तौल होती तो रीता को मारकर स्वयं अपने आपको भी खत्म कर लेता । मगर.....!’

ललित ने कहा—‘मगर कृष्ण भाई ! मैं एक बार आप से पहले भी कह चुका हूँ और अब भी कह रहा हूँ कि ये सारी की सारी बातें काशी की ईर्ष्या की उपज थीं । हो सकता है, कुछ अंश में सही भी हों, मगर, जैसाकि उसने आपसे कहा था, वह सरासर गलत था ! एकदम बकवास थी !’

कृष्ण ने कहा—‘हाँ ! और इसी सही-गलत को कसौटी पर कसने के लिए मैंने विचार किया कि मैं आज अचानक ये बातें रीता से पूछूंगा और देखूंगा कि उसपर कैसी प्रतिक्रिया होती है ।’

‘तो आपने रीता से वे बातें पूछीं ?’

‘हाँ !’

‘तो ?’

‘यह मैं कल लिखाऊंगा ललित ! वहाँ से बातें बहुत आगे बढ़ गई, और उन सबों को आज ही लिखाकर पूरा नहीं कर सकूंगा !’



१७

गर्दन पर गर्म तरकारी !

आज आसमान में बादल छाए हुए हैं। थोड़ी-सी बारिश भी हो चुकी है। घास भीग गई है। ललित और कृष्ण अजायबघर के उत्तरवाले बरामदे में बैठे हुए हैं। उनके सामने एक भीगी बिल्ली सिकुड़कर बैठी हुई है।

ललित ने कहा—‘आज का मौसम कितना सुहावना हो गया है कृष्ण भाई !’

कृष्ण गम्भीर होकर बोला—‘इसे दुर्दिन भी कहते हैं ललित ! मुझे भी पहले बरसात बहुत अच्छी लगती थी ! बरसात जैसा मौसम मेरे लिए और कोई नहीं था ! मगर जबसे मेरी जिन्दगी के आकाश में बादल घिर गए, आँखों में बरसात समा गई, मैं प्रकृति की बरसात से डरने लगा ललित ! यह मुझे काटने को दौड़ती है ! अब तो मैं, प्रायः, बरसात में बीमार भी हो जाया करता हूँ !’

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! मैं भी बरसात से बहुत घबड़ाता हूँ। एक तो कहीं का आना-जाना मुश्किल हो जाता है। चारों ओर कीचड़ ही कीचड़। मैं जिस गली में रहता हूँ, उसके नाले का पानी तो उपटकर घर तक में घुम आता है। बदबू के मारे नाक फटने लगती है। मच्छर बेतरह बढ़ जाते हैं। कपड़े भी नहीं सूखते !’

ललित का बरसाती कष्ट सुनकर कृष्ण को हँसी आ गई । उसने कहा—‘ललित ! जब तुम्हारे जैसे कर्तव्यनिष्ठ आदमी को बरसात नहीं भाती, तब मुझ-जैसे सनकी की क्या बिसात है ! लेकिन तुम्हें एक फायदा जरूर होता होगा । बरसात के आने पर कम से कम मच्छर मारने का एक रोजगार जरूर मिल जाता होगा तुम्हें !’

ललित लजाकर कापी उलटने लगा । कलम निकालकर उसने कृष्ण को देखा तो कृष्ण ने कहा—‘मैं समझ गया ! चलो, लिखना शुरू कर दो !’

“रीता और मीता मेरे डेरे पर ३ बजे के करीब आईं । उस समय शारदा अपने भैया के साथ सिनेमा चली गई थी । मैं खाट पर लेटा-लेटा कुछ सोच रहा था । दरवाजा खुला । देखा, रीता है । रीता ने पुकारा—‘आ न !’ मैंने पूछा—‘कौन है ?’ रीता ने कहा—‘मीता है ! आ ही नहीं रही है !’

“मैं मीता को ले आने के लिए बाहर जा ही रहा था कि मीता अन्दर आ गई । रीता और मीता, दोनों आकर कुर्सियों पर बैठ गईं । इधर-उधर की कुछ बातें होने लगीं । मीता बोली—‘मैं जा रही हूँ रीता !’ रीता ने मीता का हाथ पकड़ लिया । मीता बोली—‘जरूरी काम है ! कलकत्ते से माँ आनेवाली हूँ !’

“मैंने कहा—‘तब जाने दो रीता !’

“रीता बोली तो कुछ नहीं, मगर मीता का हाथ तबतक पकड़े रही जबतक वह छड़ाकर तेजी से बाहर नहीं भाग गई ।

“मीता के जाने के बाद रीता की हालत देखने के लायक थी । शर्म के मारे जैसे जमीन में गड़ी जा रही हो । कुछ देर तक मेरी भी जुबान नहीं खुली ।

“मैंने कहा—‘रीता !’

“रीता ने सिर नीचा किए हुए ऊपर की ओर देखा । उस वक्त को उसकी आँखें ! उफ् ! मैं तिलमिलाकर रह गया । मैंने कहा—‘रीता ! तुम मेरे साथ रहो ! तुम्हें छोड़कर मैं.....!’

“इसके आगे कुछ भी नहीं कहा जा सका । रीता चुप थी । असन्न थी । सन्तोष और शान्ति की चमक से उसकी आकृति और सलोनी बन गई थी । मैंने रीता का हाथ अपने हाथ में ले लिया । उसकी अँगुलियों से खेलते-खेलते मैं जब प्रकृतिस्थ हुआ तो बोला—‘रीता ! उस घर में चलो ।’ रीता जाने में सहमी । मैं उसे पकड़कर घर में ले गया । वह पलंग पर बैठ गई । मैंने कहा—‘पैर ऊपर करके आराम से बैठ जाओ !’

“रीता टस से मस नहीं हुई । जब मैंने उसके पैर पकड़कर पलंग पर रख देने की कोशिश की तो उसने मेरे हाथ पकड़ लिये । मैंने फिर वैसे ही किया । रीता अपना पैर हट नहीं छूने दे । जब मैंने उसका कन्धा पकड़ा तो उसने वहाँ से भी मेरा हाथ हटा दिया । लाज के मारे उसकी बुरी हालत हो रही थी । मैंने उसकी बेणी पकड़ ली । वह कुछ नहीं बोली । जब मैंने फिर उसके दोनों पैर पकड़े तो वह उठकर खड़ी हो गई । मैंने बैठने के लिए कई बार कहा मगर वह नहीं बैठी । खुशामद और प्रार्थना के बाद एक ही रास्ता बच गया था, जबरदस्ती का, जिसे मैं पशुता से भी बदतर समझता हूँ । मैं चुपचाप पलंग पर बैठ गया । फिर वह भी बैठ गई । मुझे रीता के उस व्यवहार पर बहुत क्रोध आया । उस क्रोध के पीछे रीता का संकोच जितना बड़ा कारण नहीं था, उससे कहीं बड़ा कारण था—काशी का रीता के विषय में बाँधन !

“मुझसे रहा नहीं गया । नहीं चाहते हुए भी मैंने गुस्से में कहा—‘रीता ! इस शर्म का क्या अर्थ है ? एक तरफ तो तुम

काशी के साथ दुनिया-भर का चक्कर मारती फिरती हो, सिनेमा देखती फिरती हो, दूसरी तरफ तुम.....तुम !'

"मैं बहुत बुरी बात कहने जा रहा था, मगर रुक गया । मैंने अपने आपको रोकते हुए कहा—'रीता ! काशी से मुझे जो कुछ मालूम हुआ है, मैं उसमें थर्रा गया हूँ ।'

"रीता ने चौंककर पूछा—'क्या कहने थे वे ?'

"कहता था कि रीता के साथ मैं बहुत दूर तक जा चुका हूँ । उससे मेरा.....।' मैं इतना कहकर चुप हो गया । मेरा इतना ही कहना था कि रीता क्रुद्ध सिंहनी की तरह कौंधकर खड़ी हो गई । वह बोली—'ठीक ऐसे ही कहा था ?'

"हाँ !'

"मैं जानी हूँ !'

"कहाँ ?'

"उन्हीं के यहाँ !' ऐमा कहकर रीता बिजली की तरह बाहर निकल गई । मैं उसे रोकने के लिए बाहर निकला, लेकिन वह इतनी तेजी से काशी के घर की ओर बढ़ गई कि मैं वहीं का वहीं रह गया ।"

ललित ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—'फिर क्या हुआ ?'

कृष्ण ने कहा—'लिखते चलो चुपचाप !!'

"वह मेरे डेरे से सीधे काशी के डेरे पर गई । सौभाग्यवश काशी वहाँ नहीं था । वहाँ से लौटकर वह मीता के घर आई । मीता से उसने सारी बातें कहीं । मीता और रीता दुबारा काशी के घर गईं । फिर भी उससे भेंट नहीं हुई । इसके बाद रीता मीता को लेकर अपने घर चली गई । जिस वक्त रीता अपने घर पहुँची उस वक्त कोकिलाजी ही वहाँ थीं । शर्माजी, सरोज, मनोज, कोई नहीं था ।

"रीता ने जाते ही माँ से सारी बातें कहीं ।

“मीता बोली—‘हमलोग उनको ठीक कर देंगे !’

“रीता ने कहा—‘माँ ! अब मैं उन्हें दादा-वादा कुछ नहीं समझूँगी ! अब जो मेरे घर पर आए, तो लुकाठी से मुँह जला दूँगी !’

“कोकिलाजी ने डाँटा—‘चुप रह !’

“रीता ने बिगड़कर कहा—‘तुम चुप रहो माँ ! यह चुप रहने की बात नहीं है । जरा आज आएँ तो मजा चखाऊँगी ।’

“इसके बाद भी रोता-मीता गुस्से में न जाने क्या-क्या बकती रहीं । कोकिलाजी ने पूछा—‘तुम लोगों को मालूम कैसे हुआ ?’

“रीता बोली—‘हमलोग भाभी से मिलने गई थीं तो भैयाजी ने कहा । उन्होंने यह भी कहा कि तुमलोग काशी से पूछो और अगर वह झूठ फैलाकर तुम्हें बदनाम करना चाहता हो तो उसे सजा दो । मैं तो माँ ! उसके बाद ही उनके यहाँ गई । भेंट ही नहीं हुई, वरना वहीं चप्पल से पीटती !’

“कोकिलाजी ने डाँटा—‘छोटे मुँह बड़ी बात नहीं करते !’

“रीता उबलकर बोली—‘मगर बड़े मुँह छोटी बात किया करते हैं ! ! !’

“कोकिलाजी को गुस्सा आ गया । उन्होंने जोर से डपटकर कहा—‘जवान लड़ानी है ! गुस्ताख कहीं की !’

“रीता चुप हो गई और मीता को साथ लेकर रसोई में चली गई ।

“इस बकझक के कुछ देर बाद ही किस्मत का मारा काशी भी वहाँ पहुँच गया । दरअसल वह मुझे खोजते-खोजते वहाँ चला गया था । उस वक्त मैं अपने एक डाक्टर मित्र के यहाँ था । इसके अलावा काशी को यह भी नहीं मालूम था कि परिस्थिति के फेर में पड़कर मैंने रीता से उसकी सारी बातें कह दी हैं ।

“वह दनदनाता हुआ रसोई में पहुँच गया । रीता तरकारी बना रही थी । जाते ही काशी ने अपने स्वाभाविक ढंग से पूछा—‘कहो भाई-भाइयो ! क्या हाल-चाल है ?’ कोकिलाजी आंगन से उठकर

रसोई में आएँ-आएँ कि रोता ने करछी में चूल्हे पर की कड़ाही से गर्म तरकारी उठाई और काशी की गर्दन पर फेंक दी । जलती हुई तरकारी कांशी की गर्दन पर जो लगी तो वह उछलकर एक तरफ हो गया और गर्दन पकड़कर लगा छटपटाने । रोता और मीता, दोनों कहकहा लगाकर हँस पड़ीं । कोकिलाजी ने लपककर रीता को एक चाँटा कस दिया और कहा—‘कसाइन कहीं की ! कहीं ऐसा मग्यौल किया जाता है !’

“कोकिलाजी ने तरकारीकाण्ड को मग्यौल का रूप देकर काशी को कुछ हलका कर दिया । काशी से रोता का सालो-बहनोई का रिश्ता भी तो था ! मगर मुसीबत अकेली तो आती नहीं । रोता ने कहा—‘कृष्ण भैया से क्या कहा था आपने ? आगे फिर मेरे विषय में कहीं कुछ कहा तो लुकाठी से मुँह जलादूंगी ।’

“कोकिलाजी ने यह बात नहीं सुनी । वे जरा दूर चली गई थीं । काशी वहाँ से तुरत बाहर निकला । कोकिलाजी ने कहा—‘चाचाजी ! कहाँ जा रहे हैं ! ठहरिए न ! चाय पीकर जाइएगा !’ मगर काशी कहाँ रुकता । वह तीर की तरह बाहर निकल गया और वहाँ से सीधे मेरे डेरे पर पहुँचा । मुझसे भेंट नहीं हुई । मैं रात में बारह बजे के लगभग लोटा तो शारदा ने बताया कि काशी बाबू मुझे ढूँढ़ने के लिए चार बार आए थे !

“मैं दिनचर्या के अनुसार दूसरे दिन सुबह शर्माजी के घर पर गया । जाते ही रोता ने कल रात की पूरी की पूरी घटना कह सुनाई और कहा—‘आप उनकी बातों में मत आया कीजिए !’

• “मैंने हँसते हुए कहा—‘वरना आपकी गर्दन भी गर्म दाल से सेंक दी जायगी, क्यों ?’

“रीता ‘दुत् !’ कहकर आंगन में भाग गई । शर्माजी कोकिलाजी के साथ रसोई में बैठे हुए आग सेंक रहे थे । सरोज भी वहीं था । मनोज दूसरे घर में पढ़ रहा था ।

“रीता ने जाकर पिता-माता को खबर दी तो दोनों उठकर बाहर आए । शर्माजी ने कहा—‘कृष्णजी ! आज कोई कविता सुनाइए ।’

“मैंने पूछा—‘क्या बात है शर्माजी !’

“वे बोले—‘अभी मैं रीता की माँ से आपकी कविता के विषय में ही चर्चा कर रहा था ।.....एक बात आपसे मैं कहूँ ! मुझे कविता से सख्त नफरत थी । या, यूँ कहिए कि मेरी तुच्छ बुद्धि में वह धँस ही नहीं पाती थी; मगर जबमे आपकी कविताएँ सुनी हैं, मेरी धारणा बदल गई है । सच कहता हूँ ! आप की वाणी में जादू है, जादू !’

“कोकिलाजी क्यों चुप रहनीं । उन्होंने कहा—‘सचमुच ! आप इतनी अच्छी कविता कैसे लिख लेते हैं ?’

“मैंने कहा—‘रीता से पूछिए न !’

“मेरा इतना कहना था कि रीता तुरत नीचे रखी हुई चाय की प्याली लेकर आगन में चली गई ।

“शर्माजी और कोकिलाजी मेरी बात कुछ समझ नहीं सके । उन्हें रीता को लेकर कुछ शक पैदा हो, इसके पहले ही मैंने कहा—‘कल रीता ने भी अपनी भाभी के सामने यही सवाल किया था ।’

“शर्माजी बोले—‘तो ?’

“तो मैंने कहा कि अच्छी कविता लिखने के लिए आदमी को झूठ खूब बोलना चाहिए । मामूली से मामूली बात को लेकर तिल का ताड़ कर देना चाहिए ! बस ! समझिए कि अच्छी कविता बनाना आ गया !’

“शर्माजी और कोकिलाजी ठठाकर हँस पड़े । रीता खिड़की के पास खड़ी होकर सभी बातें सुन रही थी । वह तुरत अन्दर आकर बोली—‘तब तो काशी दादा सबसे बढ़िया कवि हो सकते हैं !’

“इस पर और ठहाका लगा । कहकहे की आवाज रसोई में पहुँची तो सरोज भी उधलता हुआ हम लोगों के पास आ गया और दाँत बाहर निकालकर लगा वेतरह किलकारी भरने । शर्माजी अगर उसे वहीं नहीं डाँट देते तो न जाने कितनी देर तक हँसने का अभिनय करता चला जाता वह शरारती !!!

“इसके बाद मैं अपने डेरे लौट आया । नहा-धोकर खाना खाने बैठा कि नौकर ने कहा—‘काशी वाबू आए हैं !’

“मैंने कहा—‘बुला लाओ !’

“काशी को देखते ही बड़े जोर की हँसी आई मगर मैंने गम्भीर होकर कहा—‘आओ भाई काशी ! क्या हालचाल है !’

“काशी का चेहरा देखने लायक था । वह दुखी और क्रुद्ध, दोनों था । उसने कहा—‘कल आपके चलते शर्माजी के यहाँ मेरी सख्त बेइज्जती हो गई !’

“क्या हुआ ?’ मैंने आश्चर्य से पूछा ।

“काशी बोला—‘कल मैं आपको खोजते हुए वहाँ गया तो रीता ने मेरे साथ बहुत बदतमीजी का बर्ताव किया ।’

“क्या किया ?’—भोला बनकर मैंने पूछा ।

“कुछ नहीं ! करती क्या ! बेहूदी-बेहूदी बातें करती रही । कहती थी कि आपने कृष्णजी से वे सभी बातें क्यों कह दी हैं ? आप यहाँ मत आया कीजिए ! आइएगा तो ठीक नहीं होगा ! कृष्ण भाई ! मैंने भी प्रतिज्ञा की है कि शर्माजी के यहाँ जीते-जी पैर नहीं रखूँगा !’

“मैंने कहा—‘अरे, इसमें क्या रखा है । तुम भी छोटी-छोटी बातों पर बेमतलब खफा हो जाते हो ! उसने यूँही कह दिया होगा !’

“काशी कड़ककर बोला—‘यूँही कह दिया होगा !! आप भी कौसी भोली बातें करते हैं कृष्ण भाई ! वह मुझे गालियाँ देती रही

और कोकिलाजी खड़ी-खड़ी मुँह ताकती रहीं । खैर, कोई बात नहीं है !’

“काशी को मैंने बड़ी तसल्ली दी मगर मेरी जबानी तसल्ली से उसकी गर्दन की जलन ठंडी नहीं हो सकी । वह गर्माया हुआ बाहर चला गया और जाते वक्त मुझसे बोला—‘आप भी वहाँ जाना छोड़ दीजिए कृष्ण भाई ! वहाँ जाना खतरे से खाली नहीं है !’

“मैंने कहा—‘बहुत अच्छा !’

ललित ने प्रसन्न होकर कहा—‘कृष्ण भाई ! तब तो काशीजी महाराज को अपनी करनी का भरपूर फल मिल गया !’

कृष्ण बोला—‘मगर मुझे नहीं मिला ललित ! काश ! मैं भी काशी की तरह ही.....!’

ललित बीच में ही कह उठा—‘आप भी कैसी-कैसी बातें करते हैं कृष्ण भाई ! चलिए ! चलिए, आज सामने की दूकान में जरा गर्म-गर्म चाय पी ली जाय । तरकारी तो हमलोगों की किस्मत में है नहीं !’

कृष्ण मुस्कराकर ललित के साथ हो लिया । चाय की दूकान में ललित ने कृष्ण के आँगूठे की पट्टी की ओर देखकर पूछा—‘यह क्या है कृष्ण भाई ?’

कृष्ण ने टालते हुए कहा—‘कुछ नहीं है । जरा कट गया है । यह लो ! चाय आ गई । दूब गर्म है ! वाह !!’



समर्पण की प्रतिक्रिया

कृष्ण आज विचित्र मनोदशा में है। उसने ललित से कहा—‘ललित ! उस दिन तुमने कहा था कि तुमने भी दो बार प्रेम किया है। क्या वे किस्से आज सुनाओगे ?’

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! आज मेरा मन भी बहुत उदास है। उदासी का कारण तो मालूम नहीं पड़ता किन्तु कहीं भी मन नहीं लगता। हर तरफ मन्डूसियत ही मालूम हो रही है। फिर किसी दिन सुनाऊंगा। सुनाऊंगा मैं जरूर कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने कहा—‘अच्छा, सुनाओगे तो देखा जायगा। अभी मेरी सुनो और लिखो !’

“तरकारी से गर्दन जल जाने के बाद काशी का शर्माजी के यहाँ आना-जाना बन्द हो गया। रीता के सामने जब कभी कोई काशी का नाम लेता तो वह जमीन पर थूक फेंककर, तीन बार पैर पटक देती। उसने घृणा से काशी का नाम ‘कंकाल मानव’ रख दिया था। काशी के प्रति इतना उद्दाम क्रोध देखकर मुझे विश्वास हो गया कि काशी ने जो-जो बातें कही थीं, उनमें ९९ प्रतिशत असत्य और काल्पनिक थीं।

“रीता की चंचलता से लाभ उठाने की स्वाभाविक वासना अनेक युवकों में थी और वे सभी बुरी तरह उसके पीछे पड़े हुए थे, मगर

मेरी उपस्थिति और हार्दिक स्नेह-भावना ने उसे बहुत दूर तक सीमा में बाँधे रखा।

“मैं प्रायः प्रत्येक दिन सुबह-गम गमर्जी के यहाँ जाने लगा। मेरे साथ कुमार भी जाया करता था। कुमार मेरा अन्तरंग मित्र था। उससे मैं अपनी सभी बातें कह दिया करता था। वह भी मेरे लिए हर हृद तक जाने को तैयार रहता। रोता को भी मैंने कह दिया था कि कुमार से मैंने सारी बातें कह दी हैं। इसलिए जब कभी कोई बात हो तो रोता कुमार को कह देती और कुमार मुझे सूचित कर दिया करता। पिता-माता की आँख बचाकर कुमार मेरे पास उनकी चिट्ठियाँ भी पहुँचा जाया करता।

“सुबह का समय तो करीब-करीब गप्प में ही खत्म हो जाता मगर शाम को प्रायः हर दूसरे रोज रोता अकेली मिल जाती। कुमार बैठक में आनेवालों की आहट लेता रहता और मैं रोता के पास बैठकर मनचाही बातें किया करता।

“एक दिन मैंने कुमार से पूछा—‘कुमार ! तुम्हें गमर्जी के यहाँ ले जाकर मैं स्वयं अन्दर जा बैठता हूँ। तुम्हें बुरा तो नहीं मालूम होता ?’

“कुमार ने कहा—‘अगर तुम आग पर भी बैठा दोगे, कृष्ण ! तो मुझे बुरा नहीं मालूम होगा।’

“एक दिन रोता से कुमार ने कहा—‘रोता ! मैं भगवान से रोज प्रार्थना करता हूँ कि अगले जन्म में मुझे कृष्ण की पत्नी बनाना। अगर पत्नी नहीं बना सकी तो प्रेयसी जरूर बनाना।’

“रोता जब कभी कुमार के विषय में मुझसे चर्चा करती तो पूछती—‘आजकल आपकी अगले जन्म की पत्नी कहाँ हैं ?’ मैं हँस पड़ता। रोता कहती—‘नारी तो नारी, आप पुरुषों पर भी जादू किए हुए हैं !’

“कुमार और मैं इसी तरह महीनों वहाँ नियमित रूप से आते-जाते रहे। रीता भी बराबर मेरे घर आती जाती रही। चूँकि पत्नी थीं, बच्चे थे, इसलिए हमलोग तकलुफ और होशियारी से मिलते और बोलते। मैंने पिताजी को लिख दिया; पत्नी घर वापस बुला ली गई। जब वे चली गईं तब दो-तीन दिनों के लिए रीता का आना बन्द हो गया। लेकिन पत्नी के जाने के एक दिन पहले एक बहुत मजेदार बात हुई।

“मुझसे पत्नी ने कहा—‘चूँकि मैं जा रही हूँ, इसलिए आप कोकिलाजी, रीता और सरोज को खाने पर बुला लीजिए।’

“रात में तीनों आदमियों को नोकर बुलाकर ले आया। खाने-पीने के बाद संगीत शुरू हो गया। मैंने कविता सुनाई। ११ बज गए। कोकिलाजी ने कहा—‘अब चलूँगी! देर हो रही है!’

“उनके चलने की तैयारी देखकर रीता ने आँखें मूंद लीं। उन्होंने कई बार उठाया मगर वह ‘ऊँह, आँह’ करके रह गई, उठकर बैठी नहीं। सरोज बोला—‘सोने न दे माँ, यहीं। कल सुबह चली आएगी।’

“कोकिलाजी पत्नी से बोली—‘अच्छा, तो मैं जाती हूँ। लगता है, बहुत जोर से नींद आ गई है। आज दिन-भर काम करती रही थी!’

“सरोज और कोकिलाजी नौकर के साथ चले गए। पत्नी को रीता का यहाँ रह जाना कुछ अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मेरी खाट के बाद अपना बड़ा-सा पलंग रखवाया और उसके बाद रीता की चौकी दीवाल के साथ बिछवा दी। सुबह देर तक, सोते रहने का बहाना करके, रीता लेटी रही। मैं तो सबसे पहले उठ गया था। पत्नी और बच्चे भी जग गए थे। बच्चे छत पर खेलने चले गए। पत्नी चौके में जा डटी। मैं धीरे से पाँव दबाए-दबाए रीता के पास गया और तलहथी से उसका नाक-मुँह बन्द कर दिया। जब उसका दम घुटने लगा तब वह चट उठ बैठी। मैंने कहा—‘बड़ी गहरी नींद है!’

“रीता ने, बिना जवाब दिए, दोनों हाथ ऊपर उठाकर बड़े जोर की जम्हाई ली। मैंने कहा—‘ये बलाएँ मुझे दे दो!’

“उसने हँसकर कहा—‘हटिए! आप बड़े वो हैं!’ •

“मैंने पूछा—‘खूब नींद आई?’

“रीता बोली—‘आपके पास सोने का यह दूसरा मौका है। नींद आज भी नहीं आई!’

“मैंने मुस्कराते हुए कहा—‘देखो रीता! मुझे बदनाम मत करो! तुम मेरे साथ हरगिज नहीं सोई। तुम तो अपनी भाभी के साथ सोई। और, यह दूसरी रात कैसे हो गई?’

“रीता ने कहा—‘जब हमलोग उस कस्बे में ‘शो’ देने गए थे! उस दिन भी मेरा बिछावन आपके पास ही लगा दिया गया था। मुझे डर के मारे सारी रात नींद नहीं आई!’

“मैंने पूछा—‘डर का कारण?’

“वह शरमाकर बोली—‘यूँ ही!’

“मैंने कहा—‘नहीं, कारण बताओ!’

“‘नहीं बताऊँगी!’ कहकर रीता उठ खड़ी हुई और बोली—‘क्या समय है?’

“‘आठ बज गए हैं!’

“‘मैं जाऊँगी!’

“‘जाकर भाभी से आज्ञा ले लो!’

“रीता आंगन में गई और जाने की अनुमति माँगी तो पत्नी ने कहा—‘मैं आज बारह बजे की गाड़ी से जा रही हूँ! फिर न जाने कब भेंट हो! जलपान करके जाओ!’

“रीता जलपान कर ही रही थी कि सरोज आ गया, उसने भी जलपान किया और रीता को साथ लेकर चला गया। पत्नी उसी दिन बारह बजे की गाड़ी से घर खाना हो गई। साले साहब उन्हें पहुँचाने चले गए!

“एक दिन, दोपहर के करीब एक बजे, रीता अकेली मेरे यहाँ आई । मैं उस वक्त सो गया था । उसने आकर मेरे कान में कागज से सुगबुगा दिया । लगा कि कोई मक्खी या मच्छर है । जब कई बार उड़ाने और भगाने पर भी मच्छर नहीं भागा तो मैं गुस्से में आकर उठ बैठा । बैठा तो देखता क्या हूँ कि सामने रीता हँसती खड़ी है । मैंने कहा—‘अजीब मच्छर है ! कम्बख्त केवल कान में ही काटता था !’

“रीता ने कहा—‘कान के पास एक जगह है न ! उसी में सटना चाहता था !’

“मैंने लपककर रीता को पकड़ लिया और उसे झटके से पलंग पर गिराकर कहा—‘हूँह ! तुम तो कवयित्री बन गई !’

“रीता ने धीरे से एक कागज निकालकर मेरे आगे रख दिया । उसमें कविता की चार पंक्तियाँ थीं । और सब तो मुझे याद नहीं ; पहली पंक्ति यूँ थी—

‘प्रियतम आते साँझ-सबेरे !’

“मैं प्रसन्नता से उछल पड़ा । मैंने कहा—‘रीता ! जरा इसे गाकर तो सुना दो !’

“पहले तो रीता शरमाती रही, मगर जब मैंने खुशामद बढ़ाते-बढ़ाते पैर तक पकड़ लिये तो उसने कहा—‘आप यह क्या करते हैं ! हटिए, मैं सुनाती हूँ !’

“रीता ने अपनी पहली कविता गाकर सुनाई । मैं बहेलिये के सामने हिरन की तरह बेसुध ! बेखबर !! रीता गीत बन्द करके मेरे बालों से खेलने लगी । मैं न जाने क्या-क्या सोचता रहा । मैंने कहा—‘रीता ! क्या यह संभव है !’

“क्या ?’ रीता चौककर बोली ।

“यही कि मैं लिखूँ और तुम गाओ ! जीवन-भर मैं लिखता रहूँ, तुम गाती रहो ! संभव है रीता ? रीता ??’

“रीता को जैसे साँप सूँघ गया हो। वह तड़फड़ा उठी। उसने अपने आप को सम्हाला और मुस्कुराने का बहाना करके बोली—

“आपके बाल बहुत प्यारे हैं !’

“कैसे हैं ?’

“धुंधराले हैं ! लहरदार हैं !! चमकीले हैं !!! मुझे दे दीजिए इन्हें !’

“ले लो !’

“रीता मेरा सिर झुकाकर अपने सिर से मेरा सिर रगड़ने लगी। मैं भाववेश में आ गया। मैंने दोनों हाथ पकड़कर रीता को अपनी ओर खींच लिया। रीता निष्प्राण-सी मेरे वक्ष पर आ गिरी। मैंने धड़कते हुए दिल और थरते हुए शरीर से कहा—‘रीता ! मैं तुम्हारे हृदय का मालिक हो गया; अब तुम्हारे शरीर का मालिक होना चाहता हूँ !’

“रीता चुप ! मैंने रीता को पकड़कर अपनी ओर खींचना चाहा तो वह बोली—‘यह मरने के बाद !’

“मैंने रीता के पैर पकड़ लिये। रीता ने कहा—‘इस शरीर में कुछ नहीं रखा है। मुझे मजबूर मत कीजिए ! मैं शरीर नहीं दे सकती ! नहीं !! नहीं !!! मुझ से यह नहीं होगा !’ ऐसा कहकर उसने मेरी गोद में अपना सिर रख दिया। मेरे दिल-दिमाग में बिजली की तरह आई हुई वासना कपूर की तरह हवा हो गई। मैंने रीता का सिर उठाकर देखा—वह रंग रही थी। मुझे अपने पर बहुत घृणा हुई। मैंने रीता के आँसू अपनी हथेली से पोंछ दिए और कहा—‘रीता ! मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है ! मुझे क्षमा करो ! मुझे क्षमा कर दो रीता !’ मैंने हाथ जोड़ दिए।

“रीता और जोर-जोर से रोने लगी। मैं भी अपने को रोक नहीं सका। थोड़ी देर बाद रीता ने कहा—‘मुझे माफ कर दीजिए ! आपकी

आज्ञा का पालन नहीं कर सकी । मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ । बोलिए ! माफ कर दिया न ?'

“मैंने कहा—‘हाँ !’

“इसके बाद रीता चली गई । मैं घंटों चुपचाप उसी पलंग पर लेटा-लेटा अपनी शीघ्रता और नादानी पर अफसोस करता रहा !

“रीता दूसरे दिन स्कूल से लौटने के वक्त मीता के साथ आई । मीता रीता को वहीं छोड़कर तुरत घर चली गई । रीता ने मीता को अपनी सभी बातें कह दी थीं । मैंने मीता को रोका तो वह बोली—‘नहीं, नहीं ! मैं दाल-भात में मूसलचन्द नहीं बनूंगी !’

“मीता के जाने के बाद मैंने कहा—‘मीता कितनी अच्छी है !’

“रीता बोली—‘भला क्यों नहीं ! मगर उस पर जो गुजरती है सो आप क्या जानें !’

“मैंने पूछा—‘क्या गुजरती है ?’

“रीता बोली—‘वह आपको बहुत मानती है; हमेशा आपकी प्रशंसा करती है ।’

“मैं बोला—‘खैर, इधर आओ !’

“‘नहीं, यहीं ठीक हूँ !’ ऐसा कहकर वह कुर्सी पर बैठ गई । मैं पलंग से उठा और उसकी चोटी पकड़कर पलंग पर घसीट लाया । रीता ने कहा—‘मैं कोई घोड़ा हूँ !’

“‘घोड़ा नहीं, घोड़ी !!’

“हम दोनों हँस पड़े । रीता ने पलंग पर बैठते हुए कहा—‘इस पर बैठने में बड़ा डर लगता है !’

“‘क्यों ?’

“‘यह आप अपने से पूछिए !’

“रीता की इन बातों से मुझे उसमें कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ा । मैंने कल की ही तरह उससे फिर वही बातें करनी शुरू कीं । रीता ने फिर कहा—‘मरने के बाद !’

“मैं बोला—‘रीता ! मैं एक बात कहना चाहता हूँ । मैं कई दिनों से इस उलझन में पड़ा हुआ हूँ । कुछ समय में नहीं आता कि प्रेम मैं तुमसे करूँ, हृदय और प्राण मैं तुम्हारे चरणों में निछावर करूँ, और शारीरिक लिप्साओं की तृप्ति के लिए कोई और उपाय सोचूँ ! कहीं और जाऊँ !! रोता ! मैं तुम्हारी आत्मा के साथ-साथ, तुम्हारे शरीर को भी अपना बनाना चाहता हूँ । इसका परिणाम भी मुझे मालूम है । मैं उस परिणाम का भार ग्रहण करने को तैयार हूँ । मगर यह नहीं हो सकता, रोता, कि तुम मुझ से दूर-दूर रहो । किसी भी तरह की भिन्नता अब मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता रोता !’

“ऐसा कहकर मैंने रोता को अपनी गोद में खींचने की कोशिश की तो वह उठकर खड़ी हो गई । मेरे लाख प्रयत्न करने पर भी जब उसने आत्म-समर्पण नहीं किया तो मैंने गुस्से में आकर कहा—‘रोता ! मेरी बात मान जाओ !’

“रीता ने फिर भी कहा—‘मरने के बाद !’

“मैं कहता हूँ, बात मान लो !’

“फिर भी रोता बोली—‘मरने के बाद !’

“इस पर मुझे इतना गुस्सा आया कि मैंने उसे धक्का देकर कहा—‘अभी यहाँ से निकल जाओ ! और खबरदार ! जो कल से यहाँ पैर रखा !’

“रीता लड़खड़ा कर दरवाजे के पास जा गिरी । मैं भेड़िए की तरह उस पर टूट पड़ा । उसके केश पकड़ लिये और कहा—‘अभी चली जाओ यहाँ से !’

“रीता रोने लगी । उसने मेरे पैर पकड़ लिये । मैंने पैर छुड़ा-कर कहा—‘मैं कहता हूँ—चली जाओ यहाँ से !’

“रीता रोती हुई बोली—‘मैं नहीं जाऊँगी । मुझे मार दीजिए ! मैं नहीं जाऊँगी !! नहीं जाऊँगी !!!’

“वह मेरे पैर पर सिर रखकर रोने लगी; मगर मेरी पशुता नहीं पिघली। थोड़ी देर के बाद उसने उठकर रोते हुए कहा— ‘मैं जाती हूँ। आज से समझ लीजिए कि आपकी रीता मर गई!’

“रीता इतना कहकर आँसू पोंछती घर चली गई। रीता के जाने के बाद, कुछ देर तक तो मैं उसी पशुता के वातावरण में रहा, मगर धीरे-धीरे सारा नशा हिरन हो गया। प्रकृतिस्थ होने पर मैं अपने आप को धिक्कारने लगा। पलंग पर पड़े-पड़े मैं सोचने लगा—

मैं कितना पतित हो गया हूँ ! अपनी पत्नी के साथ विश्वास-घात कर रहा हूँ; पिता-माता को कलंकित करने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी; शर्माजी और कोकिलाजी के साथ भी कितना बड़ा विश्वासघात है ! समाज और परिचिनों की दृष्टि में पापी, नीच, व्यभिचारी, चरित्रहीन और खतरनाक बन रहा हूँ !!! मैं क्यों ऐसा हो रहा हूँ ! मुझे यह क्या हो गया है !!

“सोचते-सोचते अपनी नीचता पर मैं इतना दुखी हुआ कि रोने लगा। शारदा की भोली-भाली सूरत ! तीनों बच्चों की किलकारियाँ, जैसे मेरे सामने खड़ी होकर पूछ रही थीं—‘तुम कहाँ जा रहे हो ? कहाँ जा रहे हो तुम ? कृष्ण ! सम्हल जाओ !!!’

‘उफ् ! ललित ! मैं उस दिन इतना रोया, इतना रोया कि तुमसे कह नहीं सकता। रोते हुए मैंने यह प्रतिज्ञा की कि अगर रीता नाराज या दुखी होकर आज या कल मेरे पास नहीं आई तो आज की मुलाकात उससे मेरी आखिरी मुलाकात होगी। मैं सोने पर पत्थर रखकर सबकुछ सह लूँगा मगर अपने को गिरने से बचाऊँगा। रीता और उसके परिवार को बदनाम नहीं होने दूँगा। रीता का जीवन बर्बाद नहीं होने दूँगा; अपनी प्रतिष्ठा भी कायम रखूँगा। मैं यह क्या करने चला था !

‘ऐसा दृढ़ निश्चय करके मैं उठ बैठा और घर में जरा भी मन नहीं लगने के कारण सिनेमा चला गया।’

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! मैं आप-जितना पढ़ा-लिखा या अनुभवी तो नहीं, मगर इतना जरूर जानता हूँ कि प्रेम में पड़े हुए व्यक्ति को, विद्वान, विचारक और महान होने पर भी दुनिया की किसी बात का ख्याल नहीं रहता । और आपने सिनेमा की बात कही तो मुझे याद आ गया । अभी मैं एक सिनेमा देखने गया था । उस फिल्म में एक बहुत बड़े घर की लड़की एक आवासे लड़के को प्यार करने लगी थी । जब लड़की के अभिभावक महोदय को यह पता चला तो उन्होंने उसे डाँटकर पूछा—‘तुम उस शोहदे को क्यों प्यार करती हो ? दुनिया में क्या और लड़के नहीं हैं ?’ तो कृष्ण भाई ! उस लड़की ने सिर झुकाकर विवशता-भरी आवाज में कहा—‘चाचाजी ! प्यार किया नहीं जाता; हो जाता है !’

कृष्ण ने कहा—‘तुम ठीक कहते हो ललित ! इसके आगे की घटनाएँ भी तुम्हें यही बताएँगी कि रीता-काण्ड में मैं खुद जैसे कुछ नहीं था । एक मशौन का जीता-जागता पुर्जा था ! एक जानदार कठपुतला-भर, जो प्यार के देवता के हाथों हजारों तरह के नाच नाच रहा था । उसमें मेरा कोई वश नहीं था ललित ! मैं जो कुछ चाहता था, सर्वथा उसके खिलाफ हो रहा था !

‘मगर हमलोग असली प्रसंग से बहुत दूर जा रहे हैं । चलो, आगे लिखो !’

‘दूसरे दिन खाना खाकर मैं कुमार के आफिस में चला गया । उसे सिगरेट पर लिखी हुई ‘परकटा परिन्दा’ नामक कहानी नहीं सुनाई थी । जब कुमार ने वह कहानी पढ़ी तो रो पड़ा । मैं भी डबडबा गया । कुमार ने कहा—‘कृष्ण ! रीता भयानक लड़की है । वह तुम्हें जिन्दा नहीं छोड़ेगी । आज मैं उसके पास जाऊँगा और कहूँगा कि तुम हमारे कृष्ण को वापस कर दो !’

“कुमार को मैंने कलवाली सारी घटना सुना दी। वह बोला—
‘कृष्ण ! जब से तुम रीता के हो गए हो, हम सभी लोग अनाथ-
जैसे हो रहे हैं ! तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए !’

“मैंने कहा—‘कुमार ! मैं स्वयं महसूस करता हूँ, मगर क्या
करूँ ! लाचार हूँ ! रीता अब मेरे प्राणों में समा गई है !
जीवित रहते मैं उसे निकाल नहीं सकता। इसके लिए मैं तुम
सबों के सामने लज्जित हूँ। तुमलोग मुझे माफ कर दो।’

“कुमार से मेरी बहुत देर तक बातचीत होती रही। चार
बजे के लगभग मैं डेरे पर लौट आया। आकर बिछावन पर लेट
भिया। बिछावन पर लेटते ही कलवाली घटना एकबार फिर दिल-
दिमाग में आ गई। अपनी गिरावट का ख्याल बार-बार आने
लगा और अपनी दयनीय अवस्था पर इतना क्षोभ हुआ कि लगा कि
इस जीवन से छुटकारा पा लेना ही एकमात्र रास्ता है। उफ् !
अपने से सौगुने ताकतवर और प्रसिद्ध साहित्यमहारथियों और दूसरे
व्यक्तियों से भिड़कर, उन्हें परास्त करनेवाला आदमी आज एक
साधारण-सी लड़की के फेर में इतना दुर्बल, कातर और कमीना हो
गया है। उफ् ! यह क्या हो गया है मुझे ? सोचते-सोचते मैं
फिर रोगे लगा। लगता था कि अभी अगर जहर मिल जाय तो
खाकर जीवन-लीला समाप्त कर दूँ। मगर अन्तरात्मा ने धिक्कारा—
‘कृष्ण ! अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है; कलेजा पत्थर का बनाओ
और कर्तव्य को समझो ! भावुकता बुरी चीज है ! इससे रीता, उसका
और तुम्हारा परिवार, खुद तुम, सभी बदनाम हो जाएँगे; समाज
तुम्हें हिंकारत की नजर से देखेगा; तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे,
तुम्हारे सभी मित्र तुम्हारे नाम पर रोएँगे; तुम्हें कुष्ठ हो जायगा
कृष्ण ! कुष्ठ; सारा अंग गल-गलकर गिर जायगा !!!’.....

“राक उसी वक्त रीता आ गई। उसके साथ सरोज भी था।
रीता उस दिन बहुत सुन्दर साड़ी और ब्लाउज पहने हुए थी।

माथे पर शंख की शकल की एक उजली बिन्दी बना रखी थी। केश दो वेणियों में आगे की ओर लटके हुए थे। आँखें पहले से भी ज्यादा मादक और मारती हुई थीं। वह आकर मेरे पास बैठ गई। मैं पलंग पर ही लेटा रहा। उसने कहा—‘चलिए ! आज मीता के यहाँ सरस्वती-पूजा है। मीता बंगाली है न ! वेलोग इस पर्व को बहुत उत्साह से मनाते हैं ! मीता ने कहा है कि मैं आपको साथ में लेती आऊँ !’

‘मैं चुप रहा। रीता मेरे केश पर उँगलियाँ फेरने लगी। बोली—‘मीता भी कहती थी कि मैं उनसे उनका केश माँग लूँगी।’

‘मैंने कहा—‘रीता ! मैं नहीं जाऊँगा।’ रीता मेरी बांह पकड़कर उठाने लगी। मैं नहीं उठा। उसने कई बार ऐसा किया मगर मैं टस-से-मस नहीं हुआ। तब उसने मेरे पाँव पकड़ लिये। मैं तब भी नहीं माना। जब उसने मेरी आँखों को गौर से देखा तो कहा—‘आपकी आँखें सूजी हुई क्यों हैं?’

‘मैं फिर डबडबा गया ! मैंने कहा—‘रीता ! परमात्मा के लिए तुम जाओ; मुझे एकान्त में छोड़ दो।’

‘रीता ने मेरे पाँव पर अपना सिर रखकर कहा—‘नहीं ! मैं नहीं जाऊँगी ; आप नहीं जाइएगा तो मैं भी नहीं जाऊँगी।’

‘मैंने कहा—‘रीता ! मैं तुमसे नागज नहीं हूँ। तुम्हें मेरी कसम ! तुम जाओ। मीता समझेगा कि मैंने ही तुम्हें रोक लिया।’

‘सरोज ने कहा—‘चलो दीदी ! देर हो रही है।’

‘रीता चलते वक्त बोली—‘तो आप नहीं ही चलिएगा !’ मैं चुप रहा और, रीता चली गई। जब रीता चली गई तो मुझे अपनी निष्ठुरता पर बहुत घृणा हुई। कर्तव्यपरायणता और दूसरे पहलुओं पर का सारा चिन्तन, धरा का धरा रह गया। मैं उस

उधेड़-बुन में पड़ा ही था कि दरवाजा खुला और रोता मीता के साथ अन्दर आ गई ।

“मीता ने कहा—‘यह क्या बात है भैया ! आपको चलना ही पड़ेगा । उठिए !’

“मैंने कहा —‘मीता ! अब मुझे तुमलोग छोड़ दो । मैं पशु बन गया हूँ मीता ! कर्तव्य से दूर जा रहा हूँ । दुनिया और परिवार का मुझे जरा भी ध्यान नहीं रह गया है !’

“मीता ने मेरा हाथ पकड़कर कहा—‘चलिए, चलिए ! उठिए ! ऋषि-मुनि बनना है तो हिमालय में चले जाइए !’

“ऐसा कहकर मीता ने पलंग में खींचकर मुझे खड़ा कर दिया । मैं एक निरीह भेमने की तरह, कपड़ा वगैरह पहनकर, दोनों के साथ चला गया ।

“मीता ने अपने घर की कोनेवाली कोठरी में मुझे बिठा दिया । रोता को भी वह वहीं ढकेल गई । रोता पहले तो चुपचाप बैठी रही मगर मुझे चुन देवकर पास आ गई । बोली—‘नाराज हैं क्या ?’

“‘नहीं तो !’

“‘तब ऐसा क्यों कर रहे हैं ?’

“मैं मुस्कुरा पड़ा । फिर रोता का हाथ अपने हाथ में ले लिया । रोता बेसुध होकर बैठी रही । फिर मैं उसे तंग करने लगा । वह कुछ नहीं बोली । मीता ने दरवाजे के पास आकर पूछा—‘क्या अन्दर आने की इजाजत है ?’

• “‘जरूर !’ मैंने कहा ।

“मीता ने खाना लाकर रख दिया । रोता उसके साथ खाने चली गई ! थोड़ी देर के बाद मीता ने सरोज को खाना खिलाकर हा—‘तुम घर जाओ । रोता को मैं पहुँचा जाऊँगी !’

पंज भरपेट खाकर उछलता-कूदता घर चला गया ।

“थोड़ी देर के बाद मीता ने पीछे से आकर गुलाल से रोता की माँग भर दी और कहा—‘आज तेरी शादी हो गई ! देख, भैया को खूब मानना ।’ रोता ने मीता को एक चाँटा जड़ दिया ।

“सरस्वती-पूजा के उपलक्ष में गाना-बजाना भी था । पूजा तो सुबह ही समाप्त हो गई थी । खाना खाकर मैंने रोता से कहा—‘चलो, अब चला जाय !’

“मीता ने कहा—‘अब कैसे हिल-मिल गए हैं ! बुलाने के वक्त तो आने का नाम ही नहीं लेते थे !’

“मैं निरुत्तर ! मैंने कहा—‘मीता ! मैं तेरा आजीवन कृतज्ञ हूँ !’

“रीता बोली—‘मैं भी !’

“इसके बाद मैं रोता को साथ लेकर अपने डेरे पर आ गया । रोता को मैंने बैठक में बिठाकर कहा—‘मैं अभी कपड़े बदलकर आता हूँ ।’

“रोता मेरे पीछे ही शयन-घर में चली आई । मैं कपड़े बदलने लगा तो वह पलंग पर बैठ गई । मैंने कहा—‘रीता ! वहाँ मत बैठो ! वहाँ तुम्हें देखकर मुझे अपनी पशुता और नीचता की याद आ जाती है !’

“रीता ने कहा—‘इधर आइए !’

“जब मैं पास आया तो उसने कहा—‘आज से यह शरीर भी आपका हो गया ! इसे स्वीकार कीजिए !’ इतना कहकर वह तुरत कटे हुए पेड़ की तरह पलंग पर गिर गई । मुझे ऐसा लगा, जैसे किसीने गर्म सलाख से मेरे हृदय को छेद दिया हो । मैं रोता का हाथ छुड़ाकर अलग हट गया । रोता ने कहा—‘मैं आपको अपना ईश्वर मानती हूँ; देवता समझती हूँ; मेरा ईश्वर, मेरा देवता अगर मेरे शरीर की बलि लेना चाहता है तो मैं तैयार हूँ ! आइए !!’

“मैं चीख उठा—‘रीता ! रीता !! बस करो, रीता ! ज्यादा मत बोलो ! मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ—‘तुम्हारे शरीर को आज से मैं सरस्वती का शरीर समझूँगा; एक पवित्र धरोहर ! उसकी पूजा करूँगा; अर्चना करूँगा; उसे वासना से सर्वदा दूर रखूँगा । ओफ् ! मैं कितना पतित हो गया था रीता ! मुझे क्षमा कर दो ! क्षमा कर दो मुझे ! ’ मैंने रीता का पैर पकड़ लिया । रीता उठकर बैठ गई । उसने मेरा सिर अपनी गोद में रख लिया । मेरे गालों पर टप-टप आँसू गिरने लगे । मैं चुपचाप रीता को देखता रहा । खुद मेरी भी वही हालत हो गई !

“रीता ने स्वस्थ होकर पूछा—‘आप नाराज तो नहीं हैं ?’

“मैंने कहा—‘नहीं रीता ! आज तुमने अपना सर्वस्व समर्पण करके, नारीत्व के आदर्श को ही नहीं, मुझे भी गिरने से बचा लिया है ! मैं जन्म-जन्म तक तुम्हारा अपना बना रहूँ, बस, यही चाहता हूँ रीता ! यही चाहता हूँ !!!’

“रीता कुछ नहीं बोली । उस वक्त उसके चेहरे पर एक अभूत-पूर्व कान्ति थी । मर्यादा-रक्षा का तेज उसके अंग-अंग को तेजस्वी बना रहा था ।”

ललित ने कहा—‘मगर मैं रीता के समर्पण से आपके संयम को ही अधिक महत्व देता हूँ, कृष्ण भाई !’

कृष्ण हँसकर बोला—‘वह संयम एक परिस्थिति का परिणाम था ललित ! तुम क्या जानते हो कि उस संयम के चलते मुझे.....! खैर, छोड़ो इन बातों को ! और, आज इतना ही रहने दो । देखो, कल आठ बजे आना । कल सात बजे एक मित्र मेरे यहाँ चाय पीने आ रहे हैं ।’



१६

मौसी आई—होली गई !

“वसन्तोत्सव से होली के कुछ रोज पहले तक मैं दोनों शाम शर्माजी के यहाँ जाता रहा । रीता भी शाम को रोज सरोज के साथ मेरे यहाँ आ जाया करती । मैं शाम को जोशी-होटल में बैठता था । रीता आकर नौकर को मेरे पास भेज देती । मैं डेरे पर आकर आधा-पौन घंटा रीता के साथ रहता । गर्बें होतीं । कभी-कभी रीता मेरी कविताओं को स्वर देती और हम दोनों साथ-साथ गाने लगते ! कभी-कभी हमलोग लड़ भी पड़ते । जब मैं बिगड़ता, तो रीता मनाती और जब रीता रूठ जाती, तो मैं उसे ऐसा गुदगुदाता कि वह हँस-हँसकर दुहरी हो जाती और गुस्से का अभिनय करके कहती—‘हटिए, मेरे पेट में दर्द हो रहा है !’

“इस तरह का मेरा जीवन, जिसमें एक विचित्र तन्मयता थी, बेखुदी और सनक थी, अबाध गति से आगे बढ़ रहा था । रीता जब मुझसे मिलकर चली जाती, तब मैं जोशी-होटल में वापस लौट आता और ८ बजे के करीब कुमार के साथ, बाहर ही बाहर, शर्माजी के घर पहुँच जाता । तबतक वे लोग भी घूम-घामकर आ गए होते । कभी-कभी ऐसा भी होता कि हमलोग वहाँ पहुँचते तो दोनों बाहर ही होते । कुमार बैठक में कुछ पढ़ने लगता । रीता के कमरे में बैठकर उसे छेड़ता रहता । वह भी कम नहीं

थी । मुझे भी वह इतना तंग करती कि मैं मन ही मन कहता—
'काश ! ऐसा आजीवन होता !'

“इस बीच जब कभी कोई बाहर से आता तो कुमार खँखारकर या सीटी बजाकर हमें सूचित कर देता । सरोज को कुमार अपने साथ बैठा लेता था । मनोज घूमने चला जाया करता । मैं और रीता निर्द्वन्द्व स्वर्गिक जीवन व्यतीत कर रहे थे । शर्माजी, कोकिलाजी, मनोज और सरोज दिन-ब-दिन अपने होते गए । मेरी यह आत्मीयता कई सोद्देश्य व्यक्तियों को बहुत खलती । मगर मैं क्या करता ! एकदिन तो मेरे दो नवजवान और बुजुर्ग मित्रों ने शर्माजी से कहा भी—‘आप जब नहीं रहते हैं, तब कृष्णजी आपके यहाँ आकर क्यों बैठे रहते हैं ! हमलोग तो किसी के यहाँ जाते हैं, और उस आदमी से भेंट नहीं होती, तो तुरत चल देते हैं ।’

“रीता ने उनलोगों की बात मुझसे कही तो मुझे हँसी आ गई । मैंने कहा—‘कालेज की निर्धन और भोली-भाली लड़कियों को घर पर, बीवी-बहन के सामने रखेली के रूप में रखकर, या वेश्याओं के साथ जिन्दगी का कीसती हिस्सा बर्बाद करके भी, यह दुनिया उपदेश देने से बाज नहीं आती रीता ! हमें ऐसे लोगों पर तरस खाना चाहिए ! वे सुधार और भलाई की आड़ में ईर्ष्या ही करते हैं !!’

ललित ने पूछा—‘तब तो आपने भी कोकिलाजी से जो शिकायत की थी, वह भी ईर्ष्या ही थी ?’

कृष्ण ने कहा—‘निश्चित रूप से ! मगर उसके पीछे यथार्थ का एक छोटा-सा सहारा भी था । मूल में तो ईर्ष्या ही थी, क्योंकि इस तरह की बातें और जगह भी होती हैं, मगर हम उन्हें रोकने के लिए परेशान नहीं होते ! खैर, तुम उपन्यास लिखो !’

“एकदिन न जाने कहाँ से घूमती-धामती मेरी मौसीजी कुसुमा में पधार गईं । मौसीजी को रिक्शे से उतरते देखकर मुझे तो

बुखार हो आया ! वे बड़ी अजीब औरत हैं—झगड़ालू एक नम्बर की; गालीगलौज भी कोई बड़ी बात नहीं; मौका मिल जाने पर मार-पीट तक कर लेती हैं ! तरकारीवाली, दहीवाली और चुड़ि-हारिनों को कई बार उनके मजबूत हाथों की सस्ती का पता चल चुका है ! युवक-युवतियों को एकान्त में खड़ी देखकर ही उनका माथा ठनक जाता है ! और, ज्यादा नहीं तो, कम से कम दोनों के पिता-माता से उनकी इज्जत बचाने की बात वे जरूर कह आती हैं ।

“ऐसी मेरी मौसीजी मेरे परदेसी डेरे पर तशरीफ ले आई । और वह भी ऐसे मौके पर, जब रोता नियमित रूप से मेरे पास आया करती थी । मैंने समझ लिया कि बस ! अब यह आग हनुमान की पूँछ में लग गई है । यह तो भगवान की कृपा थी कि आते-आते उन्हें मलेरिया ने धर दबाया, वरना वे मेरी कितनी दुर्गत करतीं, यह उनकी देवी भवानीजी को भी नहीं मालूम था !

“उनको बुखार लगा तो १०५ डिग्री तक चला गया । मैं उस दिन शर्माजी के यहाँ नहीं गया । दूसरे दिन जब कोकिलाजी ने मेरी मौसीजी के आने और उनके १०५ डिग्री बुखार की बात सुनी तो मुझसे बोलीं—‘थोड़ी देर में रोता को भेज देती हूँ, जरा सेवा वगैरह कर देगी ।’

“मैंने यह सलाह बहुत बेशकीमत समझी । डेरे पर आकर और नहा-खाकर मैं मौसीजी को दवा देने जा रहा था कि रोता आ गई । आज उसके केश में गहरे नीले रंग के दो ‘रिबन’ लगे हुए थे; बाल इस सजावट से बने थे कि मैं उन्हें देखता रह गया । मौसीजी के पास कुर्सी खींचकर वह बैठ गई । मौसीजी का मुँह दीवाल की तरफ था । उन्होंने पूछा—‘कौन है ?’

“मैंने कहा—‘रोता है; शारदा की सहेली ! मेरे एक परिचित की लड़की !

“अकेले घर में लड़की का नाम सुनते ही मौसीजी भूल गई कि उन्हें १०५ डिग्री बुखार है । उन्होंने तुरत करवट फेरकर रीता की ओर बड़े गोर से देखा और बोलीं—‘हूँ ७ !!’

“मैंने तुरत कहा—‘रीता ! जरा युडिक्लोन की पट्टी चढ़ा दो; मैं डाक्टर के यहाँ से अभी आता हूँ !’

“मैं डाक्टर के यहाँ न जाकर चुपके से बैठक में चला गया । थोड़ी देर के बाद मौसीजी को नींद आ गई । मैंने रीता को इशारे से बैठक में बुला लिया । मौसीजी को, मेरे वहाँ नहीं रहने के विश्वास से, नींद भी तगड़ी आई । मैं रीता के साथ बैठक में बहुत देर तक मुँह दबाकर हँसता रहा । रीता ने पूछा—‘कबतक रहेंगी ?’

“कुछ पता नहीं । मगर अच्छी होते ही टिकट कटा दूँगा ।’

“अकेली आई हैं ?’

“नहीं, मेरे चचेरे भैया भी हैं ।’

“कहाँ हैं ?’

“जहाँ गोपाल के भाईसाहब हमें बुलाकर ले गए थे न, वहीं गए हैं । कल लोटेंगे !’

“रीता और मैं, दोनों साँस रोक-रोककर बहुत देर तक बातें करते रहे । दो तीन घंटे वहाँ रहकर रीता चली गई । मौसीजी की नींद खुली तो उन्होंने पूछा—‘वह छोकरी कहाँ गई ?’

“घर !’

“कहाँ घर है ?’

“बगल ही में !’

“हूँ !!!’ कहकर मौसीजी ने आँखें मूँद लीं ।

“मैंने उनका—‘हूँ !!!’ सुनकर कहा—‘हे भगवान ! ये आँखें मुँदी की मुँदी ही रह जायँ !’

“मौसीजी को तीसरे दिन बुखार से फुसरात मिल गई तो मैंने सोचा कि अब मुझे भी इनसे फुसरात मिलनी चाहिए। शाम को मौसीजी मन्दिर में गई थीं। भाईसाहब बाहर टहल रहे थे। रीता को अन्दर आते देखकर वे भी अन्दर आ गए। मैंने रीता को शयन-घर में बिठा दिया। वे रीता के साथ मुझे देखकर बाहर चले गये और बेचैनी से रास्ते पर घूमने लगे।

“उसके दूसरे दिन ही मौसीजी को मैंने कुसुमा से विदा कर दिया। जब उस दिन रीता आई तो मैंने कहा—‘रीता ! अब कुछ न कुछ होकर रहेगा ! मौसीजी बेकार बैठनेवाली महिला नहीं हैं !’

“मेरी आशंका ठीक निकली। होली से ठीक तीन दिन पहले पत्नी की एक लम्बी चिट्ठी मिली। चिट्ठी पर इतने आँसू गिरे थे कि कई जगह शब्दों का पता तक नहीं चलता था। उन्होंने लिखा था—‘मुझे मौसीजी की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है, फिरभी, मैं रो-रोकर न जाने क्यों बेहाल हो रही हूँ। दो दिनों से खाना नहीं खाया। तीनों बच्चों को देख-देखकर और रोना आ रहा है। क्या आप इन तीनों मासूमों पर दया करके दो दिनों के लिए यहाँ नहीं आ सकते ? जरूर आइए, नहीं तो मैं.....!’

“मैं पत्र पढ़कर घबड़ा गया। शाम को जब रीता आई तो उसे पत्र दिखाया। रीता ने पत्र पढ़कर कहा—‘आप कल ही चले जाइए !’

“मैंने कहा—‘रीता ! परसों होली है ! मैं चाहता था कि उस दिन मैं.....।’

“रीता ने बात काटकर कहा—‘नहीं ! आपको मैं आदेश देती हूँ कि आपको वहाँ कल ही जाना होगा। मेरी होली जैसे कटती थी, वैसे कटेगी ! आप घर जाइए !’

“मैंने नहीं जाने की बात कई बार दुहराई मगर रोता ने कसम दिलाकर मुझे घर भेज दिया ।

“मैं घर रात में बारह बजे की गाड़ी से पहुँचा । खाना खाकर जब मैं शयनघर में गया तो शारदा मेरे पैरों पर मुँह रखकर रंते लगी । चुप ही नहीं हों । एक-डेढ़ घंटे तक मेरे मनाने और सौगन्ध दिलाने पर भी वह रोनी हों रही । मैंने कहा—‘शारदा ! मैं कवि हूँ ! मुझे प्रेरणा चाहिए । राता मेरी प्रेरणा बनकर आई थी और अब वह आ-मा बन गई है । बस ! इससे ज्यादा और कुछ भी नहीं । मैं अपने वच्चों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि रोता द्वारा तुम्हारा कोई अधिकार नहीं छीना जायगा । तुम्हें क्या मालूम कि मुझे यहाँ भेजने का श्रेय भी राता को ही है ! वह देवी है । मैं उसकी पूजा करता हूँ शारदा ! तुम्हें अपने या मेरे विषय में किसी तरह की आशंका की बात नहीं सोचनी चाहिए ।’

“इस तरह मैंने बहुत-सी बातें शारदा से कहीं, तब जाकर वह चुप हुई । होली दूसरे दिन ही थी । मोसीजी ने मुझे देखा तो मुँह फाड़कर देखती रह गई । उन्होंने कुसुमा से घर लौटकर कहा था कि अगर वह होली के दिन यहाँ आ गया तो मैं अपनी नाक कटा लूँगी । मुझे हाथ में पिचकारी लिये आते देखकर मोसीजी भागीं । मैंने ललकार कर कहा—‘मौसी ! डरो मत ! पिचकारी हो है; कोई चाकू नहीं ! नाक नहीं काटूँगा मौसी ! जरा रंग डाल लेने दो !’

“मगर मोसीजी सिर पर पाँव रखकर जो भागीं तो शाम को भोज के अवसर पर भी उनके दर्शन नहीं हुए ! यहाँ तक कि भाईसाहब भी तशरीफ नहीं लाए !”

ललित ने कहा—‘मुझे तो ऐसा लगता है कृष्ण भाई ! कि आपके भाईसाहब ने भो नमक-मिर्च लगाकर खूब भड़काया होगा ।’

कृष्ण ने कहा—‘लगता क्या है ललित ! उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया था कि अब वह बहुत शीघ्र उस लड़की से शादी करने जा रहा

है। वे तो पति-पत्नी की तरह रहने लगे हैं ! और कृष्ण की बहू तो मूर्ख है ! इसे चाहिए कि वहीं चली जाय; नहीं तो वह बेहाथ हो जायगा !’

ललित बोला—‘ऐसे लोगों पर क्रोध नहीं करना चाहिए कृष्ण भाई ! वे दया के पात्र हैं ! बेचारे ! ! !’

कृष्ण हँस पड़ा। उसने कहा—‘खैर, चलो आगे लिखो।’

‘होली के दूसरे रोज जब मैं कुसुमा चला तो शारदा ने पूछा—वहाँ और कितने दिन रहने का विचार है ?’

‘मैंने कहा—‘मैं अभी वहीं रहूँगा शारदा ! और तुम्हें भी वहाँ शीघ्र बुलाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि कुसुमा में ही बस जाऊँ !’

‘शारदा ने कहा—‘जीविका कैसे चलेगी ?’

‘मैंने कहा—‘मुझे वहाँ एक पत्र में नोकरी मिल रही है। पैसे तो कम हैं, मगर जगह इतनी रमणीय और मोहक है कि कहीं बाहर जाने की अब इच्छा नहीं होती !’

‘शारदा मुस्कुरा कर बोली—‘जगह के अलावा भी तो मोहक चीजें हैं वहाँ !’

‘मैं लजाकर भी मुस्कुरा पड़ा !

‘कुसुमा में मैं शाम को चार बजे पहुँचा। पाँच-छह बजे जोशी-होटल में सभी कलाकारों से भेंट हुई। कुमार ने कहा—‘तुमसे मेरी सख्त शिकायत है।’

‘मैंने पूछा—‘क्या ?’

‘उसने कहा—‘बाहर चलो तो बताऊँगा।’

‘मित्रों से आज्ञा लेकर हम दोनों बाहर मैदान की ओर चले। वहाँ एक बेंच पर बैठकर कुमार बोला—‘तुम हृदयों के निष्ठुर हो ! जानते हो, होली के दिन रोता नई कई तरह के पकवान बनाए थे। मांस और मछली बनाई थी, मगर होंठ तक नहीं लगाया। पूर्णिमा की रात थी। मुझे छत पर बुलाकर कहा—‘कैसी अजीब चाँदनी है

बाचा जी !.....'कृष्ण ! क्या कहूँ, मुझे लगा कि मैं तुरत रो पड़ूंगा । वह भी इतनी उदास और दुखी थी कि उसका चेहरा एकदम विकृत हो गया था । तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था कृष्ण ! उस रोज रात-भर मुझे भी नींद नहीं आई ।'

“जब मैंने कुमार को सारी परिस्थितियाँ समझाईं और रीता के आदेश की चर्चा की तो उसने कहा—‘तब तो तुम्हारा जाना बहुत जरूरी था । मैं कहता हूँ कि अब तुम शारदा भाभी को यहीं बुला लो ।’

“देखो !’ कहकर मैं उठ गया, और हम दोनों डेरे लौट आए ।”



ललित के दो रोमांस

कृष्ण ने अपने पास से आम के सूखे पत्तों को हटाते हुए कहा—
‘ललित ! पतझर में मन बहुत उदास हो जाया करता है । पेड़-गोधे भी कंकाल हो जाते हैं । धरती, आसमान, हर जगह पतझर की ही विभीषिका नजर आती है । प्रकृति कितनी सुन्सान और उचाट हो जाती है !!’

ललित बोला—‘कृष्ण भाई ! ऐसेमें ही आदमी बैरागी हो जाया करता है !’

कृष्ण ने कहा—‘हम-तुम तो बैरागी होने से रहे ललित ! हाँ ! आज मेरी इच्छा हो रही है कि तुम संक्षेप में अपनी दोनों प्रेम-कहानियाँ सुनाते । संभव है, उन्हें सुनकर मैं तुम्हें एक और ऐसा ही उपन्यास लिखा दूँ । आज मन जरा भी नहीं ऋगता ललित !’

ललित ने कहा—‘उन कहानियों को उपन्यास क्या, मैं तो कहानियों के शीर्षक के रूप में भी नहीं देखना चाहता । कृष्ण भाई ! मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि खुद तो अपने घाव की कुरेद-कुरेदकर दर्द का मजा लूँ और दुनियावालों को अपनेपर हँसने और नफरत करने का मौका देदूँ । आपकी आज्ञा है तो व्यक्तिगत रूप से उन्हें मैं आपको सुना देता

हूँ । मगर, कृष्ण भाई ! इन्हें बिलकुल उप्त रखिएगा । आपको मेरी सोगन्ध है !'

कृष्ण ने मुँकुराते हुए कहा—'बहुत अच्छा, तुम सुनाओ तो ।'
ललित ने कहा—

[पहली कहानी आज से दस बरस पहले की है । मैं उस वक्त एक राजनीतिक दल का कार्यकर्त्ता था । उसमें कई लड़कियाँ थीं । मेरी शादी नहीं हुई थी । बो० ए० पास करते-करते मैंने चाहा कि मैं देश का क्रान्तिकारी नेता बनकर संसार-भर की दृष्टि अपनी ओर मुखातिब कर लूँ । इस महत्त्वाकांक्षा को क्रियात्मक रूप देने के लिए पार्टी का सबसे खतरनाक काम अपने जिम्मे लिया । मेरी निर्भिकता और स्फूर्ति देखकर एक सहकर्मिणी मुझे प्यार करने लगी । मुझे उसके प्यार का पता उस दिन चला, जब मैं एक जगह बम लेकर जा रहा था । मेरे पास दो पिस्तौलें भी थीं । जैसे ही मैं घर से बाहर निकला कि वह सामने आ गई और बोली—'ललित ! तुम से आज पहली और आखिरी प्रार्थना करना चाहती हूँ । मुझे एक मिनट समय दो ।' मैं बाहर खड़ी बग़ी में बैठ गया और उससे कहा—'बैठ जाओ ! रास्ते में ही बातें होंगी ।'

जब हमलोग बस्ती से कुछ दूर आगे निकल गए तो उसने अचानक दोनों भुजाओं में बाँधकर मेरे माथे को चूम लिया । मैं परेशान होकर उसे देखने लगा । वह बोली—'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ ! ललित ! मैं तुम्हारे लिए जान भी दे सकती हूँ । तुम नहीं जानते कि मैं पार्टी छोड़ चुकी थी, मगर तुम्हारे कारण.....!'

मैंने कहा—'सरिता ! मैं भी तुम्हें प्यार कर सकता हूँ ! मगर इस वक्त मौका दूसरा है । मुझे वापस आ जाने दो, फिर और बातें होंगी । तुम अभी लौट जाओ । बहुत दूर चले जाने पर, पैदल चलना मुश्किल हो जायगा ।'

सरिता ने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—‘नहीं, नहीं, ललित ! मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी । तुम जिन्दगी-मौत का खेल मत खेलो ललित ! इससे कुछ नहीं होगा ! आओ, पार्टी से इस्तीफा देकर जीवन को एक नई दिशा में ले चलें ।’

मैंने चीखकर कहा—‘सरिता !’

सरिता ने मेरे दोनों हाथ धर लिये और सुबुकने लगी । मैंने पहले अड्डे पर प्रतीक्षा करते हुए दो आदमियों को बम और पिस्तौल दे दिए और उनसे कहा—‘दादा से कहना कि मैं आज से पार्टी में नहीं रहा । मगर पार्टी के साथ विश्वासघात नहीं करूँगा । मेरा पीछा करने की जरूरत नहीं । मैं सरिता से विवाह करके दूसरी ओर जा रहा हूँ । इसके लिए मुझे हार्दिक क्लेश है, मगर मजबूर हूँ ।’

पार्टी के दोनों आदमी मेरा मुँह देखते रह गए, और मैं सरिता के साथ उसी बग़ीची पर शहर वापस लौट आया । कुछ दिनों के बाद आर्यसमाजी विधि से हमलोगों ने शादी कर ली । चार-पाँच सप्ताह जैसे स्वर्ग में गुजर गए । दूसरे महीने में एक जरूरी काम से कलकत्ता चला गया । सरिता को कह गया कि पाँच-छह दिन लगेंगे; मगर कलकत्ता जाने पर वह काम दो दिनों में ही हो गया । नई शादी थी ! मैं पहली ट्रेन से घर लौटा । मेरा डेरा स्टेशन पर ही था । डेरे पर एक विधवा माँ थीं, दोनों आँखों से अन्धी ! एक छोटी बहन भी थी । आते ही बहन ने मुझे सीढ़ी पर रोक लिया । मैंने पूछा—‘रोक क्यों रही है ?’

वह बोली—‘भाभी ने कहा है कि किसी को अन्दर मत आने देना ।’

मैं उसे ढकेल कर आगे बढ़ा । सरिता से मिलने की उत्कट अभिलाषा से एक क्षण भी ठहरने का मन नहीं करता था । लेकिन जैसे ही अन्दर गया तो चीँककर पीछे चला आया !

सरिता पार्टी के नेता कुमुद दादा की गोद में बैठकर उन्हें चूम रही थी !

मैं तुरत बाहर आया और वहाँ से सीधे स्टेशन । कलकत्ता जाने के लिए जो पहली गाड़ी मिली, उसीसे मैं भाग गया । और एक बरस के बाद घर लौटा । और वह भी तब, जब मुझे खबर मिली कि कुमुद दादा और सरिता वम केस में पकड़ाकर तीन बरसों के लिए जेल चले गए हैं !

कृष्ण बड़े आश्चर्य से ललित की ओर देखकर बोला—‘ललित ! तुम भी काफी सताये हुए आदमी हो ! तुमने उस दिन प्रेम की दुनिया में ओतों का अस्तित्व न रह जाने की जो बात कही थी, वह ऐसे अनुभव के बाद, एकदम सही और सार्थक है । खैर, तुम अपनी दूसरी कहानी सुनाओ !’

ललित ने कई बार लम्बो साँसें लीं और कहा—‘कृष्ण भाई ! एक सिगरेट मुझे भी दीजिए !’

कृष्ण ने बिना कुछ कहे सिगरेट ललित को दे दी और उसे सुलगाकर कहा—‘अच्छा शुरू हो जाओ !’

ललित बोला—

[दूसरी कहानी, शादी के चार-पाँच महीने पहले की है । उस वक्त मैं कविताएँ बहुत बनाता था, और वे प्रायः पत्रों में भी छप जाया करती थीं । मुझे क ट्यूशन मिली । ट्यूशन पढ़नेवाली लड़की एक बहुत बड़े अफसर की लड़की थी । उसे भी कविता का शौक था । ट्यूशन में मेरा मन ऐसा लगा कि सारा दिन बस उमी लड़की के ध्याम में डूबा रहने लगा । चार-पाँच दिन बाद, हमलोग एक दूसरे के हाथ-पैर भी जाने-अनजाने छूने लगे । मैं उसपर भी कविताएँ बनाकर ले जाने लगा । वह दूसरे दिन ही प्रत्युत्तर लिख कर ले आती । प्रश्नोत्तरीवाली कविता की वह प्रेमिल परम्परा करीब एक महीना तक चली । इस बीच मेरा उसका सम्बन्ध और निकट और गहरा

होता गया । कभी-कभी वह मेरे साथ सिनेमा भी जाने-आने लगी । एक दिन मैंने साहसकर उसका हाथ अपने होठों से लगा लिया । वह कुछ नहीं बोली । उस दिन रात-भर मुझे नींद नहीं आई । मैंने उस रात पाँच-छह कविताएँ लिख डालीं । कविता की कापी पर ही उसकी एक पेन्सिल स्केच भी तैयार की ।

दूसरे दिन मैंने उसे अपनी सारी कलाकृतियाँ दिखाईं । वह देख-कर फड़क उठी । उसने कहा—‘आप अगर मेरो जाति के होते तो...!’ वह आगे नहीं कह सकी । मैं समझ गया । मैंने कहा—‘मंजु ! इससे क्या हुआ ! मैं तुम्हारे पिताजी से मिलूँगा । उनके सामने सारी बातें रख दूँगा । मुझे आशा है, तुम्हारे पिता मान जाएँगे !’

मंजु बोली—‘ना ना’ ऐसा हरगिज मत कीजिएगा । वे बड़े भयानक आदमी हैं ! आपका अपमान हो जाएगा ।’

मैंने मंजु की चेतावनी पर जरा भी ध्यान नहीं दिया । कवि आदमी ! सोचा कि इसमें क्या है ! आखिर उन्हें शादी तो करनी ही है । मैं बी० ए० पास हूँ । सुन्दर हूँ । मंजु मुझसे प्यार करती है । निर्धन हुआ तो क्या हुआ ! कुलीन नहीं हूँ तो कौन-सा अपराध है मेरा ! मंजु के पिता ‘टूर’ में गए थे । वे लौटकर आ गए तो मैं दूसरे दिन सुबह हजामत बनाकर, एक सुन्दर-सा सूट पहनकर और ‘गोर्गल्स’ लगाकर उनसे मिलने गया । वे बाहर अकेले ही बैठे थे । मैं जाकर चुपचाप उनके सामने खड़ा हो गया । उन्होंने अखबार से निगाहें ऊपर कीं और कहा—‘बैठिए !’

मैं बोला—‘जी नहीं ! मैं एक अर्ज करने आया हूँ; मेरे जीवन-मरण का सवाल आ गया है !’

उन्होंने सोचा कि शायद मैं किसी खतरे में पड़ गया हूँ । उन्होंने कहा—‘आप कहिए, मेरे रहते आपका कोई बुरा नहीं कर सकता ।’

मैंने कहा—‘जी नहीं ! यह सिर्फ मेरे ही जीवन-मरण का प्रश्न नहीं, मंजु के भी जीवन-मरण का प्रश्न है ।’

वे आँखें फाड़कर मेरी ओर ताकने लगे । मैंने कहा—‘मैं मंजु से प्यार करता हूँ । वह भी करती है । हम चाहते हैं कि आप हमें शादी करने की इजाजत दे दें ।’

मेरा यह कहना था कि उन्होंने लपककर मेरी टाई पकड़ ली और ऐसा घूसा मारा कि मैं सामने की फुलवारी में आँधे-मुँह उलट गया । मैं कपड़ा झाड़कर खड़ा ही हुआ था कि वे धम्म से फुलवारी में कूद गए और मेरी टाई पकड़कर बरामदे में ले आए । उन्होंने पागल हाथी की तरह चिघाड़कर पुकारा—‘मंजु ! ओ मंजु !!’ मंजु तुरत बाहर आई । मथे धूल से सने और बिम्बरे बालों में, अपने पिताजी के हाथों पकड़ाया हुआ देखकर उसे सारा माजरा मालूम हो गया ।’

अफसर साहब ने गरजकर पूछा—‘तू इस गुंडे से प्रेम करती है ?’

मंजु ने बेहिचक कहा—‘जी नहीं !’

मंजु का इतना कहना था कि उन्होंने मेरे मुँह पर एक जोर का तमाचा मारा और कहा—‘अभी निकल जा यहाँ से, वरना तेरी मार दूँगा ! हरामजादा कहीं का !!!’

मैं चुपचाप चला आया ।]

ललित ने अपनी दूसरी कहानी समाप्त की तो उसका चेहरा लाल हो गया था । कृष्ण ने देखा तो उसे लगा, जैसे ललित अभी-अभी वह तमाचा खाकर सीधे यहीं आ गया हो । ललित ने घास पर पड़े हुए सिगरेट के डब्बे से दूसरी सिगरेट निकाली और उसे सुलगाकर कहा—‘कृष्ण भाई ! औरतों का प्रेम ऐसा ही होता है !’

कृष्ण ने कहा—‘यह बात नहीं है ललित ! तोता-मैना की कहानी की तरह हर व्यक्ति का अलग-अलग, अपना-अपना अनुभव है । मैंने तो अपने जीवन में यही देखा है कि औरतें पुरुषों से ज्यादा ईमानदार, एकनिष्ठ और चरित्रवाली होती हैं । इस विषय में मैं एक ही बात अन्तिम रूप से मानता हूँ कि जन्मजात गुण, संस्कार, तथा

बातावरण के प्रभाव और परिस्थितियों की मजबूरियाँ से भी प्रेम में कई बार उलटी और अप्रत्याशित घटनाएँ घट जाया करती हैं। मैं तो कहता हूँ ललित ! कि वही अफसर साहब अगर मंजु को अचानक बुलाकर, तुम्हारी सूरत के सामने, वह प्रश्न नहीं पूछ बैठते तो वह कभी इन्कार नहीं करती। अगर वे उसे आश्वासन देकर पूछते तो बहुत संभव था कि वह तुम्हारी ही तरह उनसे सच-सच कह देती !’

ललित ने कहा—‘खैर, यह दूसरी बात है। मगर कृष्ण भाई ! अगर मैं मंजु की जगह होता तो इतना बड़ा विश्वासघात कभी नहीं करता !’

कृष्ण चुप रहा और सिगरेट का एक कश लेकर टालते हुए बोला—‘आज बाहरी बातों में ही बहुत समय नष्ट हो गया ललित ! चलो, दो-चार पंक्तियाँ लिख लो। वरना क्रम टूट जायगा।’

ललित ने उदास होकर लिखना शुरू किया—

“घर से आने के बाद, कुमार की जुबानी, रीता की होलीवाली बात सुनकर, मैं रात में ही उससे मिलने गया। शर्माजी और कोकिलाजी उस वक्त घर पर नहीं थे। मेरे जाते ही रीता आई और बोली—‘कब आए ?’

“आज ही ! दो घंटे पहले !’

“कुमार बैठक में चला गया और मैं रीता के साथ उसके कमरे में। रीता ने मेरी अँगुलियों को अपनी अँगुलियों में डाल लिया और कहा—‘अभी मीता भी आनेवाली है !’

“इस वक्त ?’

“हाँ, माँ-बाबूजी के साथ, एक जगह पूजा में गई है।’ फिर हम लोग बहुत देर तक बातें करते रहे। जब मैंने रीता को शारदावाली सारी घटना सुनाई तो उसने कहा—‘अब कहिए, आपका जाना कितना जरूरी था !’

“बहुत जरूरी !”—मैंने कहा—‘मगर तुम्हारी होली जो खराब हो गई !’

“रीता ने कहा—‘मुझे गोली मारिए ! मैं भी कोई लड़की हूँ !’

“इतनी ही बातें हुई थीं कि मीता, शर्माजी, कोकिलाजी और सरोज आ गए । सबों ने मुझे देखकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की । सबों से होली के दिन की खूब बातें हुई । जब मैं घर चला तो मीता भी साथ हो गई । रास्ते में मैंने कहा—‘मीता ! मेरे शरीर में बहुत खून हो गया है !’

“मीता ने कहा—‘किसी को दे दीजिए !’

“मैंने पूछा—‘हूँ ?’

“मीता ने कहा—‘हूँ !!!’

इतना लिखाकर कृष्ण ने कहा—‘बहुत हँस रहे हो ललित ! मगर आज इतना ही रहने दो ! बहुत देर हो गई है । कल ठीक समय पर आ जाना ।’



मुझे सहानुभूति नहीं चाहिए !

आज ललित से कृष्ण की भेंट अजायबघर के मुख्य द्वार पर ही हो गई । ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! मैं शुरू से ही देखता आ रहा हूँ कि आप अपने दाहिने हाथ का अँगूठा हमेशा बाँधे रहते हैं । क्या इसमें कोई घाव हो गया है ?’

कृष्ण ने कहा—‘नाखून में घाव हो गया था । अब उसे कटवा दिया है । अभी जल्म भरने तक इसे इसी तरह बाँधे रहना पड़ेगा । पन्द्रह-बीस रोज और लग जायेंगे ।’

ललित कुछ मुस्कुराया और बोला—‘कृष्ण भाई ! कल ‘आपने मीता की ‘हूँउ’ ?’ और ‘हूँ !’ वाली बात लिखाकर मुझे फिर घपले में डाल दिया है । मुझे तो डर लगता है कि आपकी यह विचित्र जीवनी, आगे जाकर मीता को ही कहीं अपनी नायिका न बना ले ! मैं पहले क बार बुरी तरह छक चुका हूँ !’

कृष्ण हँसते हुए बोला—‘तो ठीक है ! दूध के जले हो, छाछ भी फूँक-फूँक पीओ ! मगर एक बात याद रखो कि अभी मैं उपन्यास के अन्त के विषय में कुछ नहीं बताऊँगा ! क्योंकि मुझे भी नहीं मालूम कि यह कहाँ जाके खत्म होगा ।’

ललित ने आश्चर्य से पूछा—‘क्या मतलब ?’

कृष्ण ने मुस्कुराकर कहा—‘बराबर मतलबी बने रहना ठीक नहीं, लेखक महोदय ! आप तो साहित्यसेवी ही हैं न ! चलिए ! आगे लिखिए !’

ललित बेचारा बनके रह गया ! कृष्ण बोला—

“रीता रोज सुबह या शाम, एक बार जरूर मेरे पास आती । आते वक्त वह अपने घर के सामने की फुलवारी से जूही के फूल लिये आती । फूल के साथ दो-तीन पत्ते भी होते ! मैं फूलों को लेकर आँखों से लगाता और उन्हें चूमकर रीता की बेणी में लगा देता । जब वह घर जाने लगती तब उन्हें उतारकर मेरी मेज पर रख देती । इस तरह मेरी आलमारी रीता के रोज-रोज के लिए फूल-पत्तों से भर गई । छीना-झपटी में टूटी हुई चूड़ियों का भी एक अम्बार लग गया । मैं उन्हें एक रेशमी कपड़े में बाँधकर रखता गया । जब रीता पास नहीं होती तब मैं उन फूल-पत्तों को देखता, सूँघता और सीने से लगाकर घंटों उसकी याद किया करता ।”

‘ललित ! आज वे बातें अजीब और बेवकूफी से भरी मालूम होती हैं । सस्ते उपन्यासों को पढ़कर नकल करने की बू भी उसमें मिल सकती है, मगर ऐसा ही होता था ललित ! अभी जैसा मैंने कहा, ठीक वैसा ही होता था । खैर, आगे लिखो ।’

“एक दिन मैं उसे नृत्य-विद्यालय पहुँचाने चला गया । साथ में सरोज भी था । रीता ने रास्ते में चलते-चलते अचानक कहा—‘मुझे किसीकी भी सहानुभूति नहीं चाहिए !’

“मैं उसे गौर से देखकर यह समझने की कोशिश करने लगा कि आखिर इस वाक्य का क्या अर्थ है ! मैं अभी कुछ पूछने ही जा रहा था कि उसने फिर कहा—‘मुझे दुनिया में किसी की भी सहानुभूति नहीं चाहिए ! मैं बुरी लड़की हूँ ! बहुत बुरी !!’

“मुझसे नहीं रहा गया । मैंने पूछा—‘क्या कह रही हो तुम ?’

“रीता ने फिर वही बात दुहराई । मैंने कहा—‘क्या मेरी सहानुभूति भी नहीं ?’

“रीता प्रसन्न होकर बोली—‘आपकी दूसरी बात है !’

“कैसे ?’

“मैं जानती हूँ !’

“मुझ पर भरोसा है रीता ?’

“सिर्फ आपपर ही !’

“अगर मैं तोड़ दूँ !’

“नहीं ! आप नहीं.....!’

“तब तक पीछे से दौड़ता हुआ सरोज पास आ गया और हम चुप हो गए ।

“एक दिन मीता ने उससे कहा—‘सिनेमा चलो ! मेरे नाना बनारस से आए हैं । बड़े मजेदार आदमी हैं; कुछ शरारती भी हैं !’

“रीता बोली—‘‘उन्हें’ ले चलो तो चलूँगी ।’ टिकटें तो तीन ही मँगाई गई थीं । अब नानाजी को एक टिकट मेरे लिए भी कटानी पड़ गई । मगर उन्हें मेरी उपस्थिति बहुत खटकी । रास्ते हो में उन्होंने कहा—‘आप रीताजी के अंगरक्षक हैं क्या ? बराबर साथ ही देखता हूँ ।’

“मैंने कहा—‘जी हाँ ! हूँ भी और नहीं भी ! मैं इसका उत्तर देता, मगर आप बुजुर्ग हैं इसलिए.....!’

“नानाजी हीं हीं हीं हीं करके रह गए । सिनेमा में वे मीता के साथ यूँ सटकर बैठे कि रीता ने मुझे उन्हें दिखाकर इशारा किया । मैंने रीता का पैर दबा दिया । गीत जब-जब आता, मैं रीता के कंधे को दबा-दबाकर ताल देता । मीता के नानाजी भी मग्न थे । जब उधर से रिक्शे पर हमलोग लीटे तो रीता ने कहा—‘कैसे नाना हैं !’

“मैंने मुस्कराकर कहा—‘कलजुगी !’

“रोता हँस पड़ी ।

एक दिन गोपाल के यहाँ गोष्ठी थी । उस दिन मैं, कोकिलाजी, शर्माजी, रोंता, मीता और सरोज भी उसमें सम्मिलित हुए । जब हमलोग मीता के घर से चले तो रास्ते में रोंता ने दो बड़े-बड़े बेर मँजे दिए । मैंने उन्हें खाया नहीं; दोनों हाथों में ले लिए । मीता से रोंता ने कहा—‘पूछो तो बेर कहाँ गए ?’

“मीता ने पूछा तो मैंने कहा—‘दोनों दो हाथों में हैं !’

“रोता ने मीता को जोर की चिकोटी काटी । मीता चीख पड़ी ।

“कोकिलाजी ने धूमकर पूछा—‘क्या बात है ?’

“मीता ने कहा—‘पैर तले मेढ़क आ गया था !’

“कोकिलाजी हँस पड़ीं । मैं तेजी से आगे बढ़ गया ।

“गोष्ठी में मेरी कविता खूब जमी । रोंता मेरे साथ बैठी थी । मैंने उसकी प्रशंसा की और उससे भी एक कविता पढ़वाई । गोष्ठी आशा से ज्यादा सफल रही । सबोंने हम दोनों की तारीफें कीं !

“एक दिन रोंता की नाक में दर्द हो गया । मैं उसे साथ में लेकर डाक्टर साहब को दिखा आऊँ, ऐसी प्रार्थना की कोकिलाजी ने । फिर मैं घर चला आया तो रोंता के साथ मनोज ने आकर कहा—‘बाबूजी ने कहा है कि तुम भी साथ में चले जाओ !’

“मैंने कहा—‘ठीक है ! चलो ! मगर दो रिक्शे लग जायेंगे खामखा !’

“मनोज लौट गया; रोंता खुशी से नाच उठी । जब हमलोग डाक्टर के यहाँ गए तब उनसे भेंट नहीं हुई । अतएव पास की एक मीनार पर चढ़ने चले गए । मीनार पर रोंता ने महलवाला वही ‘आएगा ! आएगा !! आएगा !!!’ वाला गीत गाकर सुनाया । जब हमलोग आधा घंटा बाद वहाँ से चले तब सामने से आती हुई

कुछ ईसाई लड़कियाँ मिलीं। उनमें से एक ने कहा—‘अच्छी जोड़ी है !’

“दूसरी बोलो—‘लड़की पतली है !’

“रीता ने रिक्शो से ही कहा—‘बन्दरी कहीं की ! ! !’

“एक दिन मैने मीता से कहा—‘रीता पगली है ! कभी मेरी बात नहीं मानती। स्वस्थ रहती है तो खाना सूँघकर छोड़ देती है ! बीमार पड़ती है तो दवा दूर से ही हटा देती है। मैं उसे कसम दे-देकर खाना और दवा खिलाता हूँ। मगर उसे अपने स्वास्थ्य पर इतनी ढिलाई नहीं करनी चाहिए। अगर वह ऐसा ही करती रही तो मुझे डर है, एक दिन उसे टी० बी० न हो जाय ! मीता ! तुम उसे समझाओ ! मेरी तो वह सुनती ही नहीं !’

“मीता ने दूसरे दिन स्कूल में उसे समझाया। टी० बी० वाली बात भी कह दी। शाम को जब मैं गया तो देखा उसे चेचक निकल आया है। दाने छोटे थे। मैं जब शर्माजी के घर जा रहा था तभी रास्ते में उनसे और कोकिलाजी से भेंट हो गई थी। दोनों ने कहा था—‘रीता को चेचक हो गया है ! आप चलिए ! हमलोग अभी आते हैं !’

“मैं जाकर रीता की ही चौकी पर बै गया। उसने कहा—‘टी० बी० तो नहीं, चेचक जरूर हो गया है। टी० बी० भी हो जायगी ! आपका वरदान सच होकर रहेगा ! आप अलग बैठिए !’

“मैं तड़पकर रह गया। कुछ भी नहीं कहा जा सका। अपनी जुबान में आग लगा देने की इच्छा हुई। मैंने छोटे-छोटे दानों से भरा रीता का हाथ पकड़ा और उसकी तलहथी से अपना सारा मुँह मल लिया। रीता जोर से हाथ खींचकर उठ बैठी। उसने चीखकर कहा—‘यह क्या किया आपने ?’

“मैं कुछ न बोला। मैंने फिर अपना चेहरा उसके पैर से रगड़ दिया। रीता घबड़ाकर खड़ी हो गई !

“मैंने कहा—‘रीता ! मुझे दे दो इसे । मैं तुमपर कोई भी रोग बर्दाश्त नहीं कर सकता । टी० बी० तुम्हें नहीं, मुझे होगी । कुष्ठ भी होगा ! ’

“रीता ने तुरत मेरे मुँह पर हाथ रख दिया और स्र्रांसी-सी होकर बोली—‘आप मेरा मरा हुआ मुँह देखें कि इस तरह की बात बोलें !’

“मैं चुप हो गया । रीता धीरे-धीरे बिछावन पर लेट गई । मैं चौकी पर बंठा-बंठा उसके सिर पर हाथ फेरता रहा । रीता की आँखों से आँसू गिरने लगे । उसने धीरे से होंठ हिलाए और आँखें बन्द करके कहा—‘मुझे किसी की भी सहानुभूति नहीं चाहिए ! किसी की भी नहीं !! मुझे टो० बी० हो जाय ! मैं भगवान से यही माँगती हूँ !’

“तबतक शर्माजी और कोकिलाजी आ गए । रीता ने आँसू पोछकर, मुँह दुशाले से ढँक लिया । मैं कुछ दूर, कुर्सी पर जा बैठा !

“थोड़ी देर वहाँ बै कर मैं घर लौट आया तो इच्छा हुई कि मुँह-हाथ ‘लाइफ व्वाय’ साबुन से धो लूँ; कहीं छूत न लग जाय । मगर अस्तरात्मा ने कहा—‘नहीं, तुझे भी चेचक होना चाहिए ! मत धो मुँह-हाथ !

“मैं वैसे ही सो रहा । दूसरे दिन शर्माजी के यहाँ गया तो रीता आँगन में बैठकर मुँह धो रही थी । दाने कम हो गए थे । बुखार भी उतर गया था । उसे हँसती हुई देखकर आत्मा तृप्त हो गई ।

“कोकिलाजी ने उसे प्रसन्न देखकर कहा—‘देखिए न, कैसी हो गई है बेचारी !’

“रीता ने मेरी ओर तिरछे ताककर कहा—‘चुप रहो माँ ! मुझे किसी की भी सहानुभूति नहीं चाहिए !’

“मैं तिलमिलाकर बोल पड़ा—‘मुझे चाहिए !’

“कोकिलाजी बोलों—‘क्यों ?’

“क्योंकि कल-परसों तक मुझे भी चेचक हो रहा है ।’

“रोता वहाँ से तुरत उठकर अपने कमरे में चली गई !”

ललित ने पूछा—‘आपने उसकी तलहथो और पैर से अपना चेहरा रगड़कर बहुत बुरा किया कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! कभी-कभी आदमी चाहता है कि वह अच्छाई छोड़कर सिर्फ बुराई ही बुराई करे ! उस वक्त वह किसी का भी उपदेश सुनने लायक ही नहीं रहता ! उसपर एक जनून-सा सवार हो जाता है !—भूत की तरह !! वह होश में नहीं रहता ललित ! पागल हो जाता है !’

ललित ने पूछा—‘अच्छा, तब आपको चेचक निकला कि नहीं ?’

कृष्ण ने कहा—‘ऐसा कहाँ मेरा भाग्य ! चेचक तो चेचक, छोटी-सी फुत्सी भी नहीं निकली ललित !’

ललित ने कृष्ण की ओर आश्चर्य से देखते हुए कहा—‘आप वज्रपुरुष हैं कृष्ण भाई !’

कृष्ण मुस्कुराकर बोला—‘हाँ ! और मृद्वनि कुसुमादपि !!!’



पतन और प्रेम की पराकाष्ठा

अजायबघर की फुलवारी काफी बड़ी है । लोग टोलियों में इधर-उधर बैठे रहते हैं । सुबह में वहाँ कोई भी नहीं होता । अजायबघर १० बजे खुलता है । उसके पहले दो-तीन बच्चे, सो भी कभी-कभी वहाँ खेलने आ जाते हैं । लेकिन यह ललित और कृष्ण की जोड़ी है कि बिना नागा, रोज आती है । जब लोग दिखाई देने लगते हैं तो दोनों उठकर चल देते हैं ।

आज रविवार है । फुलवारी में पास के क्वार्टरों के कई बच्चे हाकी-स्टिक लेकर घुस आए हैं । पत्थर जैसी कड़ी गेंद इधर से उधर हो रही है तो ललित और कृष्ण, दोनों को डर लग रहा है । वे दोनों वहाँ से हटकर कुछ दूर बैठने चले जाते हैं । कृष्ण कहता है—‘ललित ! देखा तुमने ?’

ललित कृष्ण का मुँह देखने लगता है; पूछता है—‘क्या ?’

‘यही कि हमलोग यहाँ लड़कों और गेंद के डर के मारे भाग आए हैं ! ललित ! आदमी अजायबघर देखने आता है, मगर नहीं जानता कि वह खुद कितना बड़ा अजायबघर है । इन लड़कों से भागकर मैं यहाँ आ बैठा हूँ तो मुझे एक पुरानी बात याद हो आई है ।’

ललित ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—‘कौन-सी बात ?’

कृष्ण ने कहा—‘उपन्यास शुरू कर दो । लिखते चलोगे, उसीमें सुन भी लोगे ।’

ललित लिखने को तैयार हो गया तब कृष्ण ने कहना शुरू किया—

“रीता बीमारी से छुटकारा पा गई । मैं उससे बराबर मिलता रहा । एक दिन जब रीता के घर से रात को १० बजे चलने लगा तो कुमार से कहा—‘कुमार ! मैं एक दूसरा मैं हो गया हूँ । यहाँ से चलते ही दम घुटने लगता है । घर में पैर रखने का मन नहीं करता । चलो, जरा पोलो मैदान के चारों ओर चक्कर लगाया जाय । मन, जाने क्यों, रह-रहकर धबड़ा रहा है ।’

“कुमार ने कहा—‘मैं थका हुआ हूँ कृष्ण !’

“मैंने पास से गुजरते हुए रिक्शेवाले को रोक लिया; उस पर बैठकर कहा—‘चलो, आओ !’

“हम दोनों रिक्शे पर बैठकर पोलो मैदान के चारों तरफ घूमने लगे । मैदान काफी बड़ा है । एक बार प्रदक्षिणा करके रिक्शेवाले ने पूछा—‘किधर ले चलूँ हुजूर ?’

“उसने समझा कि हमलोगों को कहीं जाना है । जब मैंने कहा कि हमें मैदान के चारों ओर चार बार घुमा दो तो वह पीछे घूम-कर देखने लगा । उसने हमलोगों को पागल नहीं तो, कम से कम, पियक्कड़ जरूर समझा होगा, ऐसा उसके चेहरे से लगा ।

“हमलोग मैदान का चक्कर लगाते रहे । चाँदनी रात थी । मैदान के चारों ओर पेड़ हैं । एक छितनार पेड़ पतझर में बेतरह उजड़ गया था । एकाएक उस पर नजर पड़ी तो मैंने रिक्शा वहीं रुकवा लिया । उतरकर पेड़ के पास गया । कुमार भी मेरे पीछे-पीछे हो लिया । पास में जाकर मैं उसकी पतली, नंगी टहनियों को ओर देखने लगा । मैंने कहा—‘कुमार ! देख रहे हो !’

“कुमार पेड़ को गौर से देखने लगा । मैंने कहा—‘कुमार ! लगता है कि यह पेड़ एक बूढ़ा दुखिया भिखमंगा है ! कंकाल की तरह खड़ा ! दुनिया से दुतकारा हुआ !! जैसे अपनी जर्जर सूखी अँगुलियों को फँलाकर चाँद से कह रहा है—‘चाँद ! सुना है, तुम अमृत से भरे हो ! जरा मुझे तो देखो ! मेरी इस जराजीर्ण काया को तो देखो ! मेरी न अनगिनत सूखी अँगुलियों को देखो ! क्या मुझपर अमृत की एक बूँद नहीं गिरा सकते तुम ?’

“और चाँद हँसकर कह रहा है—‘तुम्हारे ये दुख के दिन हैं भिक्षुक ! मैंने धरो । पतझर जगमगा तो तुम्हारा हो जाएगा !’

“कुमार भर गले से लग गया । उसने कहा—‘कृष्ण ! उफ़ तुमने तो एक माया का बातावरण उपस्थित कर दिया । सच ! कृष्ण ! कितने अजीब ढंग से इसकी टहनियाँ ऊपर की ओर उठी हुई हैं !’

“उसी वक्त रिक्शेवाले ने कहा—‘सरकार ! देर हो रही है !’

“कुमार ने गुस्से से उसकी ओर देखा मगर मैं उसकी पीठ पर हाथ रखे उसे रिक्शे के पास तक ले आया । मैंने कहा—‘कुमार ! यह हमारी तरह यहाँ दुनिया से भागकर नहीं आया है । इस वक्त उसे घर जाना है । बीबी-बच्चे इन्तजार में होंगे । दिनभर की पसीने की कमाई अब अपना प्यार-भरा पुरस्कार लेने को आकुल हो रही है कुमार !’

“कुमार चुप होकर रिक्शे पर बैठ गया । हमलोग वहाँ से घर लौट आए ।”

कृष्ण ने ललित से कहा—‘देखा न, ललित ! उस दिन भी मैं और कुमार दुनिया से भागकर घूमने चले गए थे । आज भी हमलोग भागकर ही यहाँ आ बैठे हैं । जब दिल और दिमाग में लड़ाई छिड़ती है तो आदमी मँदाने-जंग के शोर से भागकर एकान्त और अकेले में उससे लड़ना चाहता है ! यह कैसी अजीब लड़ाई है ललित ! कितनी विडम्बना-भरी !!’

ललित ने ख़ुश होकर कहा—‘ओ ! अब समझा आपकी उस बात का मतलब ! ठोक ही है कृष्ण भाई ! अगर हमलोग इस वक्त फुलवारी में कुदाल चला रहे होते तो यहाँ भागकर हरगिज नहीं आते ।’

ललित की इस बात पर कृष्ण हँस पड़ा । उसने कहा—‘चलो, आगे लिखो !’

‘मैं दूसरे दिन शाम में गया और शर्माजी, कोकिलाजी और रोता से इधर-उधर की बहुतेरी बातें करता रहा । जब मैं वहाँ से चलने का उपक्रम करने लगा तो रोता, दरवाजे पर बिछी खाट पर आकर लेट गई । जैसे ही मैं बाहर निकला कि उसने हाथ बढ़ाकर एक चिट्ठी दिखाई । मगर उस वक्त मेरी पीठ पर शर्माजी और कोकिलाजी आ गए थे । मैंने रोता के हाथ की तरफ देखा तक नहीं । कोकिलाजी ने बाहर से लौटकर रोता से पूछा—‘उन्हें क्या दे रही थी तू ?’

‘रोता तुरत बोली—‘चिट्ठी !’

‘कैसी चिट्ठी ?’

‘रोता ने चिट्ठी माँ को दे दी । उसमें लिखा था—‘आप भी कमाल के आदमी हैं ! कहते हैं और आते नहीं । सुबह क्यों नहीं आए ? अच्छा, देखा जायगा । हाँ, एक किताब पढ़ने के लिए भेज दीजिएगा ।’ चिट्ठी पढ़कर कोकिलाजी ने पूछा—‘किसे यह सब लिखा है ?’

‘रोता बोली—‘मीता के नानाजी को । उन्होंने कहा था कि मैं तुम्हारी माँ से भेंट करने कल सुबह आऊँगा । मीता भी आएंगी ।’

‘कोकिलाजी ने, पता नहीं, विश्वास किया या नहीं, मगर चुपचाप अन्दर चली गई ।

‘दूसरे दिन स्कूल जाते वक्त रोता ने मीता के साथ आकर ये सारी बातें बताई और मीता से कहा—‘तुम नानाजी से कह देना

कि माँ पृछें तो वह कह देंगे कि हाँ मैंने ये बातें रोता से कही थीं ।

“मीता थोड़ी देर बैठकर अपने घर चली गई । रोता मेरे पास आ बैठी । उसने कहा—‘कल जब माँ ने चिट्ठी देते हुए देख लिया तो मेरी हालत खराब हो गई ! उफ् ! मैं कितनी उल्लू हूँ !’

“मैंने कहा—‘जरा देखभालकर काम किया करो ! अभी बचपन तुम्हारा गया नहीं है !’

“रीता ने बात टालते हुए पुछा—‘आप मेरी चिट्ठियों का क्या करते हैं ?’

“ट्रंक में बंद करके रखता हूँ !’

“नहीं, उन्हें फाड़कर फेंक डीजिए ! उनमें क्या रखा है !’

“उसे तुम नहीं समझ सकती !’

“रीता ने कहा—‘कल एतवार है । मीता सुबह आठ बजे आएगी । आप भी आइएगा ! बगीचों की ओर घूमने चलेंगे ।’

“मैंने कहा—‘जरूर आऊँगा !’

“रोता थोड़ी देर बैठकर और एक गीत सुनाकर चली गई । दूसरे दिन ठीक आठ बजे मैं उसके यहाँ पहुँचा । सभी लोग घर पर थे । रोता जलपान में गर्म-गर्म पकोड़ियाँ ले आई । पकोड़ियों का मैं बेहद शौकीन हूँ, यह रोता पहले ही जान गई थी । ‘कोना’ नामक पहाड़ी पौधे के पत्तों की फूली हुई गर्म पकोड़ियाँ खाकर तबीयत पकौड़ी की तरह गरमा गई । तभी मीता आ गई । उसने भी जी-भर खाया । चाय पीने के बाद शर्माजी और कोकिलाजी ने कहा—‘हमें एक जगह जाना है । आप बैठिए । हमलोग एक घंटे में आते हैं ।’

“उनके साथ सरोज भी चला गया । घर पर मनोज, रीता, मीता और मैं रह गए ।

“शर्माजी के घरमें रहनेवाला वह विद्यार्थी उन दिनों सामने की कोठरी में चला गया था । रीता बाहर सोती थी । रीता और उसकी कोठी के बीच एक बोरे का पर्दा लगा था । उस दिन मैंने पर्दे को रीता की खाट के पास से कुछ हटा हुआ पाया । लगा कि उसे हटाकर आने-जाने का रास्ता बना लिया गया है । पर्दा खाट के सिरहाने से ही हटाया गया था; पैताने ठीक था । पर्दे को उस स्थिति में देखकर मैं बीसों तरह की भयानक बातें साच गया । रीता के प्रति मन में घृणा का भाव उत्पन्न हुआ । विद्यार्थी पर पूरा शक तो था ही । उसके बाद ही मैं आंगन में गया । राता-मीता बैठकर जलपान कर रही थीं । मैंने लोटकर रीता का बिछावन उलट दिया । सब से नीचे, रीता ने उस विद्यार्थी को दो हुई ‘मनोहर कहानियाँ’ नामक मासिक पत्रिका को छिपा रखा था । उस पत्रिका पर दो तस्वीरें थी; एक, युवक की ओर दूसरी, युवती की । युवक पर उस विद्यार्थी ने अपना नाम लिख दिया था । युवती पर प्रश्न का चिह्न बनाकर छोड़ दिया था । मैं उस पत्रिका को लेकर बैठक में आया तो उसे देखकर मनोज भन्नाया । मनोज शायद उस विद्यार्थी की ओर कई हरकतें देख चुका था । रीता से उसकी जरा भी नहीं बनती थी । वह रीता को उस रूप में हरगिज नहीं देखना चाहता था, जिस रूप में उसकी माँ !

“उसने पत्रिका उठाकर उस विद्यार्थी का नाम पढ़ा और ओर कहा—
‘न जाने कहाँ-कहाँ से माँग लातो है गन्दो-गन्दी अश्लील पत्रिकाएँ !
नालायक कहीं की !’

“शायद राता के कानों में मनोज की ये बातें पड़ीं । वह मीता को आंगन में ही छोड़कर बैठक में आ गई । मेरे सामने ‘मनोहर कहानियाँ’ देखकर वह भीचक रह गई । सामने एक कापी पड़ी थी, उसी विद्यार्थी की । उसपर कहीं-कहीं रीता ने उसका नाम लिख दिया था ।

“मैं मनोवैज्ञानिक की तरह, पत्रिका और उस कापी पर रीता द्वारा लिखे गए विद्यार्थी के नाम को, भलीभाँति और दूर तक सोचता रहा । रीता ने देखा कि मैं नीचे ताककर कुछ पढ़ रहा हूँ तो उसने वह पन्ना फाड़कर बाहर फेंक दिया, जिसपर उसका नाम उसने लिख रखा था । अब मुझे उसपर शक करने की पूरी गुंजाइश हो गई । मगर मैंने कुछ देर बाद अपना रुख बदला । हारमोनियम निकालकर मैं सूरदास का वह भजन गाने लगा ।

‘ऊओ, मन माने की बात !

दाख छुहारा छाँड़ि अमृतफल, विषकीड़ा विष खात !’

“रीता ने चूँकि गीत पर ध्यान नहीं दिया इसलिए समझा कि मुझे शक-वक नहीं हुआ है । वह मीता के साथ बैठक की बाहरवाली खाटपर जा लेटी । उसके लेटते ही वह विद्यार्थी अपने दरवाजे के सामने आ खड़ा हुआ । रोता, मीता की जाँधों पर पैर रखकर गीत गाने लगी । रोता ने अपना पैर थोड़ा-सा नंगा भी कर रखा था । वह विद्यार्थी सामने खड़ा-खड़ा हँस रहा था । मीता भी उसे देखकर हँसी । मैं बैठक की खिड़की से छिपकर सारे तमाशे देख रहा था । जब ज्यादा नहीं देखा गया तब मैं बाहर निकल आया । विद्यार्थी अन्दर चला गया ! रोता वैसे ही लेटी रही । उसने पूछा—‘बाहर नहीं चलिएगा ?’

“‘नहीं’ कहकर मैं तुरत बैठक में लौटा और उस खिड़की के पास बैठ गया । मनोज छत पर चला गया था । वह विद्यार्थी फिर अपने दरवाजे पर आ गया । वह रोता को देखकर मुस्कुराया । रोता ने मीता से कहा—‘चलो, जरा खेत की ओर !’

“दोनों, बिना मुझसे कुछ कहे, खेत की ओर जाने लगीं । मैंने देखा कि विद्यार्थी सामने के दरवाजे से दूसरी तरफ की खिड़की पर जा खड़ा हुआ है । मैं उठकर उसे देखने लगा । उसने मुझे देखा तो आकर अपना दरवाजा बन्द कर लिया । मगर उसका शरीर खिड़की

के शीशे से साफ दिखाई दे रहा था । वह बार-बार उछलकर बाहर देखता और मचलता—जैसे पैर में स्त्रिङ्गदार चक्के लगे हुए हों ! मुझे इस वक्त तक नहीं मालूम था कि रोता-मीता बाहर खड़ी हैं । मैं बैठक का दरवाजा खोलकर तुरत बाहर निकला । जैसे ही नीचे गया कि रोता की बेशर्मी देखकर थरा गया । वह सामने की दो दीवारों के बीच खड़ी होकर खिड़की की ओर एकटक ताक रही थी और हँस रही थी । मीता दीवाल से कुछ आगे थी । वह विद्यार्थी के सामने नहीं थी ।

“मुझे अचानक अपने सामने देखकर रोता के होश उड़ गए । उसने जोर से पुकारकर कहा—‘मीता ! मैं नहीं जाऊँगी खेत में ।’ ऐसा कहकर वह वापस लौटी । मीता भी पोछे-पोछे आ गई ।

“मैं उस वक्त इतने क्रोध में था कि मन में आया कि पास पड़ी हुई लोहे की कड़ी से उसे मार-मारकर बेहोश कर दूँ !—बदमाश ! बदचलन !! बेशर्मा लड़की !!!

“मगर मैं कुछ नहीं बोला । खून का घूँट पीकर बैठक में चला आया और मनोज को पुकारकर कहा—‘मनोज ! मैं जा रहा हूँ ! पिताजी आएँ तो मेरे पास भेज देना ।’

“रोता ने उसी वक्त अपने ब्लाउज से सेप्टीपिन निकालकर अपनी अँगुली में घुसेड़ लिया और मनोज से बोला—‘भैया ! भैया ! देखिए, खून बह निकला है; जरा पट्टी बाँध दीजिए !’

“मनोज उस चरित्र-विशेष का मर्म क्या समझे ! दौड़कर उसने एक धोती फाड़कर दी और रोता की अँगुली लपेटने लगा । मीता ने भी सहायता की । मगर मैं उसी वक्त दनदनाता हुआ बाहर निकला और तोर की तरह अपने डेरे पर चला आया ।

“डेरे पर नौकर खाना पका रहा था । मैंने कहा—‘आज खाना नहीं खाऊँगा !’

“मैं कपड़े पहनकर तुरत कहीं निकल जाना चाहता था । सारे बदन से चिनगारियाँ निकल रही थीं । पैर थर-थर काँप रहे थे । मैंने कुरते का बटन लगाते हुए कहा—‘देखो ! अगर रोता-मीता यहाँ आएँ तो जूतों से पीटकर बाहर कर देना । दोनों बदमाश लड़कियाँ हैं ! खबरदार कि दरवाजा खोला । अन्दर से ही कह देना कि ‘बाबू ने कहा है—आपलोग यहाँ मत आया कोजिए !’

“उसी वक्त रोता और मीता आ गईं । दरवाजा बन्द था । रोता ने पुकारा—‘सुखू ! दरवाजा खोलो !’

“सुखू बोला—‘नहीं खुलेगा !’

“रोता ने कहा—‘मैं कहती हूँ, खोलो !’

“रोता को रोब से बोलते हुए सुनकर मैं आगबबूला हो गया । खुद बाहर निकलकर आया और दरवाजा खोलकर कहा—‘क्या है ! जाओ यहाँ से ! चली जाओ अभी ! बदमाश ! बेशर्म कहीं को ! ! !’

“मैंने ये शब्द इतने जोर और क्रोध से कहे कि दोनों घबड़ाकर पीछे हट गईं और वहाँ से सीधे घर भागीं । वहाँ जाकर दोनों खाट पर गिरकर रोने लगीं । इसके थोड़ी देर बाद शर्माजी और कोकिलाजी आ गए । कोकिलाजी ने दोनों को रोते हुए देखा तो चकराई । पूछने पर रोता ने उन्हें बताया—‘हमलोग अभी भैयाजी के यहाँ गए थे’ । उन्होंने डाँटकर कहा—‘तुमलोग अभी यहाँ से चलो जाओ ; यहाँ आओगी तो टाँगें तोड़ दूँगा !’

“कोकिलाजी ने कहा—‘अरे, हँसी-वँसी की होगी ! तुमसब भी निपट अनाड़ी हो ! कृष्णजी ऐसे आदमी नहीं हैं । चुप रहो !’..... मगर वे रोती रहीं । चुप नहीं हुईं ।

• “दूसरे दिन मैंने सुखू को भेजकर मनोज को बुलवाया । मनोज के आने के पहले ही मैंने कई घंटों तक सोचकर यह निर्णय कर लिया था कि रोता को अब हरगिज क्षमा नहीं करूँगा । पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है वह । मेरा हृदय और मस्तिष्क प्रतिशोध की भावना

से उबल रहा था। मैंने रोता की सभी चिट्ठियाँ निकालीं और उनमें एक ऐसी चिट्ठी ढूँढ़ने लगा जिसे भेजकर शर्माजी और कोकिलाजी से रीता को भयानक से भयानक दण्ड दिला सकूँ। आखिर एक चिट्ठी मिली। उसमें रीता ने लिखा था—

‘मैंने आपकी आज्ञा का पालन नहीं किया, इसके लिए मैं बहुत दुखी हूँ। आप क्षमा करेंगे। आप नहीं जानते कि मैं आपको कितनी श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ। आप मेरी गलती को माफ करेंगे।

—आपकी हो हूँ—मैं !’

“उस पत्र में ऊपर, नीचे या कहीं भी किसी का नाम नहीं था। मैंने उस चिट्ठी को हाथ से खूब मरोड़कर दबा दिया और गोली-जैसी बनाकर पाकिट में रख लिया।

“मनोज आया तो मैंने कहा—‘मनोज ! तुमने सुबह ‘मनोहर कहानियाँ’ में तसवीरों पर लिखा हुआ तमाशा तो देखा ही था। अब अपनी बहन का यह दूसरा तमाशा भी देख लो। जब मैं बाहर निकल रहा था तो रोता ने उस विद्यार्थी के कमरे की ओर यह चिट्ठी फेंकी जो चौकी से टकराकर मेरे पाँव के पास आ गिरी। मैंने उसे उठा लिया। उसके थोड़ी देर पहले उसने पर्दे से हाथ बढ़ाकर रीता का हाथ भी पकड़ा था। मैंने यह सब अपनी आँखों देखा है। उस विद्यार्थी के साथ उसका लटपट मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ। मगर अब हद हो गई है। जब रीता ने देखा कि मेरी चिट्ठी पकड़ ली गई तो अँगुली को पिन से छेदकर खून बहा दिया। कितनी भयानक और दुस्साहसी है। रिहर्सल के दिनों में भी बराबर अँगुलियों को सँकने के बहाने वहाँ से चल देती थी और घर आकर उस विद्यार्थी से गप लड़ाया करती थी। और अब, बात यहाँ तक पहुँच गई है !’

“मनोज बहुत क्षुब्ध हुआ। उसने कहा—‘मैंने भी कई बार बाबूजी से इसके बारे में कहना चाहा है, मगर माँ रोक देती हैं। वह कोई भी बात बाबूजी से नहीं कहने देती।’

“मैंने कहा—‘मगर ये बातें तुम जाकर अपने पिता-माता को अभी कह दो, और सुन लो, ऐसे घर में मैं अपनी छाया भी नहीं जाने देना चाहता। अगर उस विद्यार्थी की वजह से कुछ भयानक काण्ड हो गया तो मैं भी बदनाम होऊँगा। और, रोता के जैसे आसार हैं, वह काण्ड किसी दिन होकर रहेगा !’

“मनोज दुखी होकर मेरे यहाँ से सीधे घर गया और पिता-माता से सारी बातें कह सुनाईं। रोता ने भी छिपकर सभी बातें सुनीं। शर्माजी और कोकिलाजी यह सब कुछ सुनकर सन्न रह गए। शर्माजी श्रद्धा के मारे कांपने लगे। उन्होंने कोकिलाजी को कहा—‘मैं अभी जाकर वह खत ले आता हूँ ! फिर देखो कि क्या करता हूँ !’

“कोकिलाजी ने कहा—‘आप मत जाइए, मनोज जाकर ले आता है !’

“मनोज ने आकर कहा—‘बाबूजी वह पत्र माँग रहे हैं।’

“मैंने पत्र दे दिया।”

“इस पत्र को पढ़कर शर्माजी ने रोता का हस्ताक्षर उस की कई कापियों से मिलाया और रोता को बुलाकर पूछा। मगर रोता चुप ! उन्होंने रोता को पकड़कर पीटना शुरू कर दिया। हाथ, लात, छड़ी, छाता, जूता, जो मिला, उसीसे पीटते चले गए। रोता अधमरी होकर कराहने लगी। उन्होंने मनोज को गुंकारकर कहा—‘अँगोठी में आग सुलगा लाओ !’

‘रोता की माँ उसे बचाने गई तो शर्माजी ने उन्हें ऐसा धकेला कि वह दरवाजे के पास जा गिरीं। शर्माजी ने गरजकर कहा—‘यह सब तेरे ही कारण हुआ है। तू ही इतनी छूट दिए रहती है। मैं इस हरामजादी को आज अँगोठी पर सेंककर खा जाऊँगा।’

“मनोज डर के मारे अँगोठी में कोयले डालकर छत पर सुलगाने चला गया। इधर शर्माजी ने रोता के हाथ-पैर चौकी के पाए से बाँध दिए। जब जलती हुई अँगोठी आ गई तो शर्माजी ने उसे

रीता के मुँह के सामने रख दिया। रीता तुरत के मुलें हुए पत्थर के कोयलों में सिँकने लगी। शर्माजी ने कहा—‘सच-सच बता दे, वरना जलाकर खाक कर दूँगा। इसके बाद मुझे फाँसी भी हो जाय तो इसकी परवा नहीं !’

कोकिलाजी ने रोते हुए कहा—‘बता दे बेटी ! सच्ची बात बता दे। तुझे कुछ नहीं होगा। बोल ! बताएंगी ?’

“रीता ने तड़पते-रोते हुए कहा—‘बताऊँगी !’

“कोकिलाजी ने तुरत अँगोठी हटा ली। मनोज ने चाकू से रस्सी काट डाली। शर्माजी हाथ में बेंत लेकर कुर्मी पर बैठ गए। सरोज कहीं बाहर खेलने चला गया था।

“कोकिलाजी ने पूछा—‘कैसे लिखा था पत्र ?’

“रीता चुप हो रही।

“शर्माजी दहाड़कर बोले—‘बोलती है कि खींच लूँ खाल ?’

“कोकिलाजी बोलीं—‘कह दे बेटी ! सच-सच कह दे। तुझे हम एक शब्द भी नहीं कहेंगे !’

“रीता जोर से रोने लगी। मनोज से रीता का वह रोना नहीं देखा गया। वह बाहर चला आया। कोकिलाजी ने रीता को पुचकारते हुए पूछा—‘कृष्णजी को लिखा था न ?’

“रीता बोली—‘नहीं !’

“कोकिलार्जी ने कहा—‘उन्हें नहीं लिखा था, तब कैसे लिखा था ?’

“उसीको !’

“शर्माजी चिट्ठी खाट पर से उठा लाए। उसे पढ़कर पूछा—‘मैंने आपकी आज्ञा का पालन नहीं किया,’ इसका क्या अर्थ है ?’

“रीता घबरा गई। छोटी-सी निर्बल निरोह लड़की !—उस भीषण मार और कटोर यातना में भी उसके दिमाग ने उसका साथ दिया।

बोली—‘मेरे साथ आभा पढ़ती है न ! उसे हो यहाँ बुला लाने को वह कहता था ! मैंने वह बात नहीं मानी ।’

‘ओ ! यह बात है, ! अच्छा फिर उसने तेरा हाथ क्यों पकड़ा ?’ शर्माजी ने पूछा ।

‘रीता बोली—‘हाथ नहीं पकड़ा था । घर से जाते वक्त घर की चाभी दे रहा । मुझे, वही कृष्णजी ने देख लिया !’

‘शर्माजी सन्तुष्ट होकर आंगन में चले गए, क्योंकि वह विद्यार्थी बाहर जाने वक्त शर्माजी को अपनी चाभी दे जाया करता था ! कोकिलाजी रीता को गले से लगाकर राने लगीं—‘व्या हालत हो गई है मेरी बेटो की ! ओह ! हे भगवान ! किस दिन का बैर चुका रहे हो तुम ?’

‘रीता भी माँ के गले से चिपककर राने लगी । करीब दो-तीन घंटों के बाद कोकिलाजी मेरे पास आईं । और रीता की निर्दोषिता सिद्ध करने लगीं । मैंने उन्हें भी खरा-खोटा सुनाया । मैंने कहा—‘कोकिलाजी ! वह भी आखिर आपकी ही बेटो है ! जो कुछ मैं आज तक आप लोगों के विषय में सुनता चला आ रहा था, उसे स्वयं देख लिया है । अब आप लोगों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा ।’ कोकिलाजी जब किसी तरह मुझे राजी नहीं कर सकी तब घर जाकर उन्होंने शर्माजी को भेजा ।

‘शर्माजी ने आकर कहा—‘कृष्णजी ! मैंने रीता को राक्षस की तरह मारा है । लेकिन वह बेकसूर है । उसका इतना कसूर जरूर है कि उसने उस विद्यार्थी से यहाँ तक बात बढ़ा रखी थी । मगर वह निर्दोष है । कोई आभा नाम की लड़की है । उसी को वह बदमाश रीता की मारफत बुलाना चाहता था ।’

‘इसी तरह शर्माजी ने पूरी की पूरी घटना मुझे कह सुनाई । रीता को दी गई नारकीय यातनाओं को उनके मुँह से सुनकर मैं दहल गया ।

“रोता ने इतनी भयानक स्थिति में भी झू बोलकर मुझे बचा लिया। वह क्या सच्ची बात कहकर मेरा मुँह काला नहीं कर सकती थी? ‘उफ! रोता! रोता!! तुम कितनी महान हो रोता! रोता! तुम सब दुर्जलताओं के बावजूद भी सती सीता हो! सीता-जैसी पवित्र हो तुम, मेरो रोता! उफ! उफ! मैं कितना नराधम! कितना पापी!! कितना घृणित हूँ!!!’

“मैंने शर्माजी से कहा—‘आपकी बातों से मुझे भी अपनी गलती और शक का ज्ञान हो रहा है। जरा रोता को भेज दोजिए! मैं एक बात उससे पूछना चाहता हूँ।’

“शर्माजी घर जा ही रहे थे कि मीता पहुँच गई। मैंने मीता से सारी घटना कह दी। अपना कमर भी स्वीकार कर लिया। मीता से जब मैंने उस विद्यार्थी के विषय में पूछा तो उसने कहा—‘हाँ! मैंने खुद तो कभी कुछ नहीं देखा, मगर रोता बराबर उसकी चर्चा करती है। जब-कभी वह आँगन में आता है तब उसे वह ‘आभा! आभा!!’ कहकर चिड़ाती है। वह दरवाजे के छेद से मीता को देखता है। एक दिन रोता ने वह छेद आटे से बन्द कर दिया तो उसने पूछा—‘आपने इसे बन्द क्यों कर दिया?’ रीता बोली—‘यह आप अपने आपसे पूछिए!’ कभी-कभी रीता गाती है तो वह अपनी कोठरी से ताल देता है।’

“मीता से मैंने जब राजकुमारवाली बात पूछी तो मीता ने कहा—‘हाँ! वह कई बार वहाँ गई है। एक बार मुझे भी पकड़कर ले गई थी। वह एक नंबर का गुंडा निकला। मुझसे उसने कहा—‘आप अपना फोटो दोजिए।’ मैंने कहा—‘आपको फोटो क्यों दूँ?’ तो वह लजाकर चुप हो रहा। काशी दादा, रोता को लेकर बराबर उसके यहाँ जाया करते थे। एक दिन मैंने रोता को कहा कि वहाँ मैं नहीं जाऊँगी; बड़ा अजीब आदमी है वह; तो रोता बोली—‘धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा; चलो मेरे साथ!’

“मीता के मुँह से यह सारी बातें सुनकर मैंने फिर महसूस किया कि मैंने जो कुछ किया है, एकदम सही किया है । कितनी भयानक लड़की है वह ! ओह !!!

“मीता मेरे शयनघर में पलंग पर बैठी थी । उसी वक्त रीता मनोज के साथ अन्दर आई । मैंने मनोज से कहा—‘तुम बैठक में बैठो; मैं जरा रीता से बातें कर लूँ ।’

“तबतक कुमार भी आ गया । उसने बैठक में मनोज से इधर-उधर की बातें शुरू कर दीं । मैं शयनघर में चला गया ।

“रीता बाल बिखराए विकराल रूप में खड़ी थी । आँखें ते-रोते काफी फूल गई थीं; लाल भी हो आई थी । मेरी नजर उसकी नाक पर गई । नाक में उसने लवंग पहन रखी थी । यह लवंग रीता ने मेरे प्रेम की स्मृति में उतारा था और कहा था कि इसे अब मरने के दिन ही पहनूँगी । लवंग को देखकर मैं काँप गया । मैंने कहा—‘बैठो ।’ वह जमीन पर भस्म से बैठ गई और घायल बाघिन की तरह मुझे घूरते हुए बोली—‘कहिए, क्या पूछने के लिए बुलाया है ? पृच्छिए जल्दी !’

“मैंने कहा—‘पहले तुम ऊपर बैठ जाओ !’

“उसने मीता की ओर इशारा करके कहा—‘जिसे मैं ना है, वह बैठ गई है ! मैं आपको खूब समझती हूँ ! मुझमें क्या रखा है ?’

“मैंने रीता का हाथ पकड़कर ऊपर बिठाने की चेष्टा की; तो भी वह वहीं बैठी रही । मीता ने उसका हाथ पकड़ा तो वह गरज उठी—‘हटो तुम !’

“मैंने कहा—‘रीता ! तुम्हारा उस रोज कुमार के यहाँ जाना, मीता से कहना कि ‘धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा’, किवाड़ के छेद से उस विद्यार्थी से बातें करना और उसे गीत सुनाना, क्या अभी तक तुम्हें अपने पवित्र प्रेम पर कायम रखे हुए है ?’

“रीता ने कहा—‘हाँ ! हाँ ! रखे हुए है ! मगर आप तो बताइए कि क्या वह पत्र मैंने ‘उसे’ लिखा था !’

“नहीं !’

“आपने उसे मेरा हाथ पकड़ते हुए देखा था ?’

“नहीं !’

“तो क्यों लोगों से कहा.....? क्यों मेरो यह हालत करवाई ? क्यों मुझे कलंकित किया ? क्यों.....?’

“बदला लेने के लिए !’ मैंने कहा !

“रीता फूट-फूटकर रोने लगी । उसका रोना सुनकर मनोज शयनघर में आ गया । रीता ने कहा—‘भैया ! आप चलिए ! मैं आती हूँ ।’

“मनोज गया नहीं । वह फिर बैठक में जाकर बैठ गया । रीता का रोना देखकर मुझे मर्मन्तिक पीड़ा हुई । उसने सिसकते हुए कहा—‘आपके मन में जो आए, कीजिए ! मगर मैं बदला नहीं लूंगी ! बदला मैं नहीं लूंगी !! मैंने दोनों कसूर अपने सिर पर ले लिये हैं ! आपका लांछन सही है !!! सही है, आपने जो कुछ किया है !’

“मैं तुरत जमीन पर बैठ गया । रीता के पाँव पकड़ लिये मैंने । रोने लगा, एक बच्चे की तरह । मैंने कहा—मैं तेरे पैर पकड़ता हूँ रीता ! तू मुझे माफ़ कर दे । तू महान है ! मैं क्षुद्र हूँ ! नरक का कीड़ा हूँ रीता ! तेरे सामने अब मेरा कोई अस्तित्व नहीं रह गया ! मैं बहुत लज्जित हूँ ! ग्लानि से मेरा कलेजा फटा जा रहा है । कह दे, कह दे कि तुझे माफ़ किया । कह दे !’ मैंने धरती पर अपना सिर जोर से पटककर कहा ।

“रीता ने तुरत मेरा सिर अपनी गोद में उठा लिया । फिर मेरे आँसुओं पर उसके आँसू गिरने लगे । हृदय मेरा बबंडर में पड़ी नाव की तरह डोल रहा था । रीता ने मेरे आँसू अपने आँचल से पोंछ दिए । मीता भी पलंग पर मुँह गड़ाकर रो रही थी ।

“थोड़ी देर के बाद रीता दृढ़तापूर्वक उठ बैठी और कहा—‘मैं जाती हूँ ! बाबूजी चिन्तित हो रहे होंगे ।’ उसने जाते वक्त प्रणाम किया ।

“जब वह जाने लगी तो मीता ने रोते हुए उसका हाथ पकड़ लिया । रोता उसके गले लग गई । उसने कहा—‘मीता ! तू जो भी कर, मेरी है और मेरी ही रहेगी ।’

“मीता और रोने लगी । तबतक मनोज आ गया । मैंने आँसुओं से भरा अपना चेहरा दीवाल की तरफ कर लिया और रोता मनोज के साथ चली गई ।

“रीता और मनोज के जाने के बाद मीता भी चुपचाप अपने घर चली गई । मैंने उसे नहीं रोका । सबों के जाने के बाद कुमार शयन-घर में आया । मुझे होता देख वह भी डबडबा गया ।

“मैंने लपककर कुमार को पकड़ लिया । वह पलंग पर मुझे सहारा देकर बै गया । मैं उसकी जाँघ पर बहुत देर तक सिर रखकर रोता रहा ।

“कुमार ने बहुत तसल्ली दी, बहुत समझाया, मगर मैं रोता रहा, रोता ही रहा !!”

इतना लिखाकर कृष्ण चुप हो गया । ललित ने सिर उठाकर देखा तो कृष्ण सचमुच रो रहा है । लिखाते-लिखाते उसकी आवाज बदलने लगी थी । तभी ललित को कुछ शक हुआ था । उसने रूमाल से कृष्ण के आँसू पोंछ दिए और कहा—‘कृष्ण भाई ! चलिए, रिक्शे पर चढ़कर जरा गंगा-किनारे घूम आया जाय !’

कृष्ण कुछ नहीं बोला । ललित कापी थैले में रखकर रिक्शेवाले को बुलाने चला गया !



दार्जिलिंग की यात्रा

आज कृष्ण बड़ा हँसमुख बना आया । ललित ने कहा—
'क्या बात है कृष्ण भाई ! आज बाछें खिल रही हैं आपकी ?'

कृष्ण ने कोई उत्तर नहीं दिया । वह चुपचाप नीचे बैठ गया ।
पाकिट से सिगरेट निकालकर उसे सुलगाया और धुयाँ पास के
एक फूल से लिपटी हुई एक लता पर फेंकते हुए कहा—'इस लता
को देख रहे हो ललित ? '

'हाँ ! देख तो रहा हूँ !'

कृष्ण सिगरेट का ताजा कश लेकर गम्भीर हो गया और बोला—
'ललित ! लता, बिना किसी वृक्ष के, खड़ी नहीं हो सकती । वृक्ष
न सही, पौधा ही सही । आम, हरसिंगार, नीम या बबूल—लता
को एक सहारा चाहिए ! और नहीं तो, एक सूखी-टूटी लकड़ी ही
ललित ! कुछ चाहिए जरूर; वरना उसकी बाढ़ रुक जायगी ।
उधर, सामने देखो, कँटीली झाड़ियों पर आकाश-लता छाई हुई है ।
झाड़ियाँ तीखे काँटों से भारी हैं । आकाशलता को जड़ का भी
भरोसा नहीं है; मगर देखो उसकी प्रसन्नता !—आनन्द के मारे
चेहरा सोने की तरह चमक रहा है ! आखिर सहारा तो है न
उसे ! काँटों की फिर क्या परवा ! ! !'

ललित ने धीरे से कहा—‘टूट टाट, धर टपकत, खटियो टूट !
पिय की बाँह, उसिसवाँ, सुख को लूट !’

कृष्ण ने ललित की इस बात पर जैसे ध्यान ही नहीं दिया । वह कहने लगा—‘और शायद पेड़ भी लताओं को बिना सहारा दिए एकाकिता और अपूर्णता महसूस करते हैं ललित ! देखो, उस हर-सिंगार पर जो लता है, वह उसपर हर तरफ से छाकर भी बेल की झुकी हुई डाल पर जैसे उछल चढ़ना चाह रही हो । बेल भी अपनी डाल को विनम्र बनाकर मानों किसी भावी आगा के सुनहले स्वप्न देख रहा है । बेल के पास छोटा-सा कनेर का पेड़ है । जरा उसे देखो । उसकी हरकतें तो ऐसी हैं, जैसे वह जड़ छाड़कर अभी लता से जा लिपटेगा ।’

ललित कृष्ण के दिखाए दृश्यों को बहुत गौर से देखता रहा और जब इतना कहकर कृष्ण चुप हो गया तब उसने कहा—‘लता और वृक्ष, दोनों में लिप्साएँ हैं कृष्ण भाई !’

‘हाँ ! दोनों में ! और लिप्साएँ भी कैसी उद्धत और अद्भुत ! दाहिनी ओर देखो ! वह किस फूल की लता है, मैं नाम नहीं जानता ।’

ललित ने कहा—‘रात की रानी का एक प्रकार है !’

कृष्ण बोला—‘देखो, पहले तो वह अशोक पर चढ़ी है, वहाँ से शीशम पर चली आई है । और फिर शीशम से नीचे झुककर झड़-बेरी में आ उलझी है । खूब है !’ कहकर कृष्ण हँसने लगा । कुछ देर तक हँसने और मुस्कुराने के बाद उसने कहा—‘कभी नदी या नहर के किनारे गए हो ललित ?’

‘कई बार गया हूँ !’

‘तुमने वहाँ खीरे-खरबूजों की लताएँ देखी होंगी ?’

‘हाँ हाँ ! देखीं क्या, चुरा-चुराकर खरबूजे भी खाए हैं !’

‘है ! तो तुमने देखा होगा कि उन खरबूजों की लताएँ जलती-उबलती रेत पर भी बड़ी अन्यमनस्क-सी लेटी रहती हैं । उन्हें पेड़ या पौधों के सहारे को जरूरत नहीं पड़ती । उनके फलों को देखो, उनकी बाढ़ को देखो । और उन्हीं लताओं की तरह, तुमने पेड़ भी बहुतेरे देखे होंगे, जिन्हें लताओं से कोई व्यामोह नहीं, उनकी जरा भी अपेक्षा नहीं !’

ललित कृष्ण की विचारधारा में खड़ा हो गया । उसने पूछा—
‘आज लताओं और पेड़-पौधों की बात आपको क्योंकर याद आ रही है कृष्ण भाई ?’

कृष्ण ने कहा—‘तुम, तुम्हारी मंजु, मैं, मेरी रीता, मोता, सरिता, काशी और कोकिलाजी—सभी इन्हीं लताओं और पेड़ों के प्रतीक हैं ललित ! हम सभी इन्हीं लताओं और पेड़ों के चलते-फिरते मानवीय-संस्करण हैं ! और कोई अन्तर नहीं ! थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं है उनमें और हममें ।’

ललित कृष्ण की बातें सुनकर चकरा गया । उसने कहा—
‘कृष्ण भाई ! आपका दिमाग अलादोन का चिराग है । उफ ! कैसी-कैसी बातें आप कह जाया करते हैं !’

कृष्ण ने तुरत ललित को रोका—‘खैर, चलो ! अब उपन्यास लिखना शुरू करो ।’

“रीता के साथ जवन्य अपराध और पापपूर्ण कार्य करके मैं अपना सबकुछ नष्ट कर चुका था । दूसरे दिन हो मुर्झ दार्जिलिंग एक कवि-सम्मेलन में जाना था । मेरे साथ गोपाल भी जानेवाला था । अगर उसी दिन हमलोग कुसुमा से खाना नहीं होते तो कवि-सम्मेलन के दिन वहाँ नहीं पहुँच पाते । मगर मैंने उसकी जरा भी परवा नहीं की । गोपाल कई बार आकर पूछ गया; मैं उसे कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं बता सका ।

“मैंने गोपाल से सारा घटनाएँ कह सुनाई और उससे प्रार्थना की—‘गोपाल ! जबतक मैं रोता से अपने घृणित अभियोग की माफी नहीं माँग लेता, दार्जिलिंग नहीं जा सकता । मैं बहुत बड़ा नीच, विश्वासघाती और खूँखार बन गया था गोपाल !’

“गोपाल ने कहा—‘ठीक है, तुम्हें माफी माँगनी ही चाहिए । तुमने उस कोमल किशोरी के साथ कितना बड़ा अन्याय किया है ! आज ही शाम को जाओ । वहाँ से कुर्पत पा लो तो रात की दो बजे की गाड़ी से चल पड़ा जाय ।’

“‘ठीक है !’ मैंने कहा ।

“गोपाल चला गया । शाम को मैं जरा जल्दी ही शर्माजी के घर पहुँचा । कोकिलाजी भी थीं । रीता मुझे देखकर आंगन में ही खड़ी रही । मैंने शर्माजी और कोकिलाजी से कहा—‘जरा रीता को बुलवाइए ! मैं उससे क्षमा माँगने आया हूँ । मुझे आज सुबह ही दार्जिलिंग जाना था, मगर मैं नहीं गया । यदि वह माफ नहीं करेगी तो मैं नहीं जाऊँगा ।’

“शर्माजी खुश होकर बोले—‘कैसी बातें करते हैं आप ? रीता से आप क्षमा माँगिएगा ? आप भी हृद आदमी !’

“कोकिलाजी ने कहा—‘नहीं नहीं ! आप ऐसा न कहिए !’

“मैंने पुकारा—‘रीता ! रोता !!’

“रीता मेरे सामने आकर खड़ी हो गई । आँखें अभी तक सूजी थीं । चेहरा, सा ही विषण्ण ! बाल वैसे ही बिखरे हुए !! उफ् ! देखकर छाती फट गई ! मैंने कहा—‘रीता ! मैं दार्जिलिंग तभी जाऊँगा, जब तू माफ कर देगी ; बोल ! कर दिया न माफ !’

“रीता की आँखों में आँसू छलछला गए । उसने मुस्कुराते हुए कहा—‘हाँ !’

“शर्माजी ने कहा—‘बड़ी नानी बनके आई है ! हाँ !!’

“कोकिलाजी भी डबडबाकर मुस्कुराने लगीं । सरोज मेरे सीने से आकर लिपट गया । मैंने उसका माथा चूम लिया । मैंने कहा—‘रोता ! मैं आज तेरे हाथ का खाना खाकर दार्जिलिंग की यात्रा करूँगा ।’

“रीता अतुलनीय उल्लास से चौंके में चली गई । खाना खिलाकर रीता बहुत खुश थी । चलते वक्त मैंने उससे पूछा—‘तेरे लिए दार्जिलिंग से क्या लाऊँगा ?’

“सरोज ने कहा—‘मेरे लिए दार्जिलिंग से चाय लाइएगा ।’

“रोता ने धीरे से कहा—‘जल्दी लौट आइएगा ।’

“मैं गोपाल के साथ उसी रात दार्जिलिंग के लिए रवाना हो गया । रास्ते में मैंने गोपाल से कहा—‘गोपाल ! अब बताओ कि मैं क्या करूँ ! रीता ने अपनी महानता से मुझे अपना ज़रखरीद गुलाम बना लिया है । मैं तो उससे.....!’

“गोपाल ने कहा—‘कृष्ण ! तुम कुसुमा में कला के प्राण हो । तुम्हारा आदर्श, तुम्हारा चरित्र, तुम्हारा निर्भीकता और पनी प्रतिभा अपने छा जानेवाले व्यक्तित्व के साथ हम सभी मित्रों के लिए बहुत बड़ी छत्रछाया है । अगर तुमपर किसी दिन अँगुली उठ गई तो हमलोग कहीं के नहीं रहेंगे !’

“मैंने कहा—‘गोपाल ! यह डरपोकपने की बातें हैं । अगर मैं रीता के चलते बदनाम हो जाऊँगा तो क्या होगा । जो लोग बदनाम नहीं हो पाए हैं, मैं उनका ना चरित्र बहुत अच्छी तरह जानता हूँ । मैं कोई बात छिपाना नहीं चाहता । मैं जैसा हूँ, उसे वैसे ही रूप में दुनिया को दिखाना चाहता हूँ । दुनिया चाहेगी तो रहेगा, नहीं चाहेगी, चल दूँगा ! इस जीवन से मृत्यु कोई ज्यादा दुखद नहीं है गोपाल !’

“गोपाल डबडबा गया । मैंने कहा—‘गोपाल ! मुझे दुनिया और समाज का भय दिखाकर दुर्बल मत बनाओ । एक हलका-सा

हाथ तुमलोग मेरी पीठ पर रखे रहो, मैं यह चढ़ाई निभा लूंगा । मगर ऐसी बातें बोलकर मुझे अपनी रीता से अलग होने की राय मत दो गोपाल !’

“गोपाल ने मेरी तलहथी दोनों हाथों से दबाकर कहा—‘नहीं कहूँगा कृष्ण ! अब नहीं कहूँगा ! मुझे तुम्हारी भावुकता से ज्यादा तुम्हारी बुद्धि पर विश्वास है ! मैं अब कुछ नहीं कहूँगा !’

“गोपाल से और भी अनेक प्रकार की बातें हुई । मैंने जब बहुत ज्यादा ममता और मोह की बातें कहीं तो गोपाल ने पूछा—‘क्या तुम उससे विवाह करना चाहते हो ?’

“मेरे चाहने पर कुछ नहीं है गोपाल ! अब तो जैसा रीता चाहेगी, वैसा ही होगा । मगर यह याद रखो ! अगर रीता बदनाम या कलंकित होकर मेरा सहारा चाहेंगे तो उसे मिलेगा । उसे मैं यह महसूस नहीं होने दूँगा कि मेरी किसी भी गलती, कम-जोरी या मजबूरी से वह मेरी विवाहिता नहीं हो सकी । हाँ, अगर वही नहीं चाहेगी, तो मैं उसे भी वर्दाश्त करूँगा । मेरा यही निश्चय है !’

“गोपाल ने प्रसन्न होकर कहा—‘मैं तुम्हारे साथ हूँ कृष्ण ! तुम्हें किसी भी हालत में विश्वासघाती नहीं बनना चाहिए ! प्रेम और विश्वासघात ? उफ् ! यह नहीं हो सकता कृष्ण !’ और गोपाल मेरे साथ ही उस धारा में बह गया ।

“दार्जिलिंग में मेरा मित्र गुरुदत्त रहता था । उसीने कवि-सम्मेलन का आयोजन किया था । गुरुदत्त आदमी बड़ा मजेदार है । हर बात में ‘पोजीशन’ का हाल पूछकर लोगों का ‘पोजीशन’ बिगाड़ देता है ! मोटा-सा आदमी, मगर जिन्दादिली का जीता-जागता फरिश्ता ! जहाँ रहेगा, लोग हँसते रहेंगे ! लाख में क है बस !!!

“उससे रास्ते में ही भेंट हो गई; दो स्टेशन पहले ही हमारा स्वागत करने आ गया था। वहाँ कवि-सम्मेलन समाप्त करके कने की जरा भी इच्छा नहीं हुई। गुरुदत्त ने बहुत ठोका, मगर यहाँ तो आग लगी थी, जिसको बुझानेवाला पानी कुसुमा में था, दार्जिलिंग में नहीं। आग बर्फ से तो बुझनी नहीं, इसलिए दूसरे ही दिन मैं और गोपाल दार्जिलिंग से हवाई जहाज से उड़े और कलकत्ता आ गए। वहाँ से कुसुमा, रेल और बस से आ पहुँचे। हमें तनी जन्दी वापस लौटा देख दोस्त-मित्र तो चकित हुए ही, रोजा भी, आश्चर्य से हिरनी की तरह एकटक निहारती ही रह गई !”

ललित ने कहा—‘वहाँ मन नहीं लगा होगा आपका ?’

कृष्ण बोला—‘मन ? मन क्या लगता ललित ! इधर से दार्जिलिंग जाते हुए, रात में किमी ने डब्बे की रोशनी बुझा दी तो मैं ऊपर की बर्थ से कूदकर नीचे आ गया; लग कि अन्धकार में दम घुटकर रह जायगा; रोशनी जलाकर ही होश में आया। मैं अन्धकार में नहीं रह सकता ललित ! मुझमें यह सबसे बड़ी कमजोरी आ गई है। एक प्रकार का रोग ही समझो इसे ! दार्जिलिंग में भी मैं गुरुदत्त के कमरे की रोशनी रातभर जलाकर सोता रहा। गोपाल को इससे कष्ट भी हुआ। मगर वह मेरी इस बीमारी को जानता था।’

ललित ने पूछा—‘क्या अब भी आपको वैसा ही होता है कृष्ण भाई ?’

‘हाँ, ठीक वैसा ही !’

ललित लम्बी साँस लेकर बोला—‘कैसी-कैसी बीमारियाँ आपने पाल रखी हैं कृष्ण भाई ! उफ् !!!’



बातें बढ़ती गईं !

जिस प्रकाशक के लिए ललित यह उपन्यास लिख रहा है, उसके यहाँ वह कल गया था; उसे दो-तीन अव्याय पढ़कर सुनाए भी थे । प्रकाशक ने कहा—‘किताब बहुत अच्छी नहीं ! और इसमें बार-बार जो ‘प्रकाशक’ शब्द आ गया है, इससे पाठकों के दिमाग में प्रकाशकों के खिलाफ खामखाह बुरी धारणा उत्पन्न होगी । आप तो, ललित बाबू ! जानते हो हैं कि मैं कोई पूँजी-पति नहीं; एक साधारण-सा प्रकाशक हूँ ! लिखना आता नहीं, बरना आप-जैसी जिन्दगी ही मेरी प्रकृति के ज्यादा अनुकूल है !’

प्रकाशक महोदय जब ऐसा कह रहे थे, तब उनके सामने सिर्फ पाँच-छह हजार के नोट बिखरे पड़े थे । ललित ने उन नोटों का ओर इशारा करके कहा—‘मगर उस हालत में इस तरह के कागजों से आपको भेंट नहीं हो पाएंगे वर्माजी !’

• वर्माजी मुस्कुराकर रह गए । कृष्ण को प्रकाशक को यह बात जब ललित ने सुनाई तब कृष्ण ने कहा—‘यह युग ही ऐसा है ललित ! इस युग में काफ़ी सुखों और सम्पन्न होने को उत्कट अभिलाषा का अर्थ है शोषण और बेईमानी को और मुखातिब होना । हम, तुम या ऐसे कई लोग वैसी वृद्धि बढ़ाश्ति हो नहीं कर

सकते, भूखों वेशक मर जायँ ! उक !!! खैर, चलो, उपन्यास शुरू कर दो !'

ललित की इच्छा थी कि इस विषय पर वह कुछ ज्यादा बातें करे, मगर कृष्ण को सज्जन उधर नहीं देख वह चुपचाप लिखने लगा ।

“दार्जिलिङ्ग से आने के दो दिन बाद, जोशी होटल में मेरा नीकर सुखू रीता को एक चिट्ठी लेकर आया । उसमें लिखा था—‘माँ-बाबूजी बाहर गए हैं; कृपया अभी आइए । आपको एक बहुत बड़ी खुशखबरी सुनाऊँगा ।’ मैं मित्रों से बहानेबाजी करके साधे रीता के पास पहुँचा । रीता उस वक्त रसोई में थी । मैंने पीछे से उसकी आँखें मूँद लीं । उसने कहा—‘सुनिए-सुनिए ! आज वह खबर सुनाऊँगा कि आपकी आँखें खुली को खुली रह जाएँ !’

“मैंने रीता की आँखें खोल दीं । उसने कहा—‘कल दोपहर को मोता आई थी । बहुत देर तक बातें करती रही । मुझे कहा—‘मैं उन्हें चाहती हूँ । उन्हें अपना सर्वस्व देने को तैयार हूँ !’

“मैंने कहा—‘देखो रीता ! परीक्षा किसी ओर को लेना ! अगर मोता ने ऐसा कहा भी है तो मुझे यह सब मत कहो । मैं मोता को बस इसलिए प्यार करता हूँ कि वह रीता को दूसरी देह है ! अगर रीता उससे अलग है तो मोता का अस्तित्व मेरे लिए तना भी नहीं !’

“रीता खुश होकर मेरी ओर देखने लगी । उसके बाद वह बँठक में आ गई । वहाँ आकर मद्रासी चटाई पर वह लेट गई । मैं पास में बैठ गया । रीता ने कहा—‘आज बदन बहुत टूट रहा है !’

“उसी वक्त नन्दी बाबू बेलावाले ने बाहर से पुकारा । पन्द्रह-बीस बार पुकारकर वे चुप हो रहे । रीता नहीं बोली । उलटे

बिजली बुझाकर घर में घोर अँधेरा कर दिया । नन्दी बाबू के जाने के कुछ देर बाद मैं जोशी होटल में लोट आया ।

“दूसरे दिन सुबह गया तो रोता ने कहा—‘उस हरामजादे को आपके दार्जिलिंग जाने के दूसरे दिन हो खूब बेइज्जत करके यहाँ से हटा दिया गया । बाबूजी और माँ तो कुछ नहीं बोले, मगर मैंने उसे वह-वह गालियाँ सुनाई कि हरामजादा जिन्दी-भर याद रखेगा ! रीता का चेहरा यह कहते-कहते तमतमा गया था ।

“कोकिलाजी और शर्माजी छनपर बैठे थे । मैं ऊपर चला तो रीता ने कहा—‘यहीं बैठिए !’

“मैं बैठक में ही बैठ गया । रीता बोली—‘माँ-बाबूजी अभी बाहर जाएँगे । आप यहीं रहिएगा !’

“मैंने पूछा—‘क्यों ?’

“उसने मुँह चिढ़ाकर कहा—‘कोयँ !!!’ तब तक सरोज आ गया । उसने पिता-माता को मेरे आने की सूचना दे दो । वे लोग नीचे आए और कपड़ा-वपड़ा बदलकर चले गए !

“‘दार्जिलिंग से लौटने के बाद मैंने वहाँ के एक साप्ताहिक पत्र ‘आकाश’ को सम्पादको सम्हाल ली थी । ‘आकाश’ के डाइरेक्टर उस इलाके के मशहूर रसिक-सरदार थे । मक्खनबाजी और प्रचार के प्रभाव से उन्होंने अपना एक स्थान भी सुरक्षित कर लिया था । सभ्य समाज में उनकी बड़ी कद्र थी । पैसे भी काफी थे । उन्होंने अपने ग्रन्थ के लिए मुझे कुछ लड़कियों को तसवीरें दे रखी थीं कि मैं उन्हें उन साहब को तसवीरों के साथ ऐसा सटा-सटाकर रखूँ, और उनके नोचे ऐसी-ऐसी चुटोली-चुटोली कृतियाँ लिख दूँ कि जिस युवती को वह पुस्तक मिले, वह बस सिर्फ़ उन्हीं की तरफ़ देखती रह जाय ! देखती ही रह जाय !!

“और उनके ऐसा कहने पर जब मैं उनकी सूरत देखने लगा तो यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई कि भारत-भूमि आज भी जामवन्त-जैसे योद्धाओं से विहीन नहीं है !

“खैर, तो मैं उनकी ही तसवीरें अपने सामने फँलाकर बै गया और सोचने लगा कि किस-किस को कहाँ-कहाँ और कैसे-कैसे सटाऊँ ताकि जामवन्तजी पर अप्सराएँ टूट पड़ें ! उन्हें सदेह स्वर्ग ले जायँ !

“शर्माजी और कोकिलाजी सरोज को लेकर चले गए थे । घर पर मैं, रोता और मनोज रह गए । थोड़ी देर तक बेजान तसवीरों के साथ खेलकर, मैं रोता के पास आ गया । रोता सामने की चौकी पर बैठी पढ़ रही थी । मनोज पड़ोस के एक सहपाठी से भेंट करने चला गया था । मैं चौकी पर आकर बैठा ही था कि रोता मेरे सामने आकर मेरी ओर पीठ करके खड़ी हो गई । मैंने उसकी वेणी पकड़कर उसे अपनी ओर खींच लिया । अभी वेणी मेरे हाथ में ही थी कि मनोज पहुँच गया । रोता कूदकर अलग हो गई । मैं थकिर रह गया । यह क्या हुआ ! उफ् !!

“शर्माजी के घर में रोता के साथ, उस रूप में, मुझे पहली बार देखा गया । झोंप मिटाने के लिए मैंने मनोज को पुकारा । वह हैरान होकर आंगन में खड़ा था । उसे पुकारकर मैंने पूछा— ‘मैंने जो निबन्ध लिखने को कहा था, लिखा तुमने ?’

“वह कुछ नहीं बोला । तब मैंने उसकी कहानियाँ देखने को माँगी । उसने दे दीं । उसका चेहरा घृणा और क्षोभ से भरा हुआ था । मैंने उसे थोड़ा-सा पढ़ाया भी, मगर उससे क्या बनने को था ! वह उठकर छत पर चला गया । वहाँ बेचैनी से घूमता रहा । वह मन में सोच रहा होगा कि कृष्णजी तो इतने बड़े कवि, नाटककार, सम्पादक और सम्भ्रान्त व्यक्ति ! मगर कितने

गिरे हुए ! कितने पतित !! और कैसे बदमाश ! उफ् !
कैसी भयंकर दुनिया है यह !!!

“मैं भी घबड़ाकर वहाँ से चल दिया । रीता ने कहा—‘अगर भैया माँ-बाबूजी से कुछ कहें तो मैं भी सब-कुछ कह दूँगी !’

“क्या ?’ मैंने आश्चर्य से पूछा ।

“कुछ नहीं ! यह मे खुद जानते हैं !’ रीता ने भेद नहीं बताया ।

“रीता ने जिस दृढ़ता से वह बात कही, उससे मुझे बहुत सन्तोष हुआ, मगर मैंने सोचा कि आजतक रीता की चंचलताओं के खिलाफ मनोज ने शायद अपनी इसी कमजोरी के कारण कोई शिकायत नहीं की है । सबकुछ चुपचाप देखता-सुनता रहा है । तो अब भी संभव है कि वह माँ-बाप से कुछ न कहे । मगर मेरी धारणा गलत निकली । उसी दिन रीता ने स्कूल से लौटते वक्त आकर बताया—‘आपके जाने के बाद माँ और बाबूजी आए । मनोज भैया ने माँ से सारी बातें कह दीं । बाबूजी से नहीं कहीं । माँ ने हम-सबों को कह रखा है कि कोई भी बात बाबूजी से मत कहा करो; वह हद से ज्यादा गुस्सैल हैं ! माँ ने मुझसे पूछा, ‘देख बेटी ! मैंने जो कुछ मनोज से सुना है, सुनकर मुझे बेहद दुख हुआ है । क्या यह सही बात है ?’ मैंने उत्तर दिया, ‘मैं चोके में थी । मेरे बालों में सेफ़ोपिन उलझ गई ! हाथ में सना हुआ आटा लगा था । मैंने भैयाजी को कहा कि जरा पिन निकाल दोजिए । मनोज भैया ने उन्हें पिन निकालते देखा, सो क्या कुछ समझ लिया कि तुम से शिकायत कर दो !’ माँ ने कहा, ‘वह कहता था कि तुम उनकी गोद में कर.....!’ मैंने तड़पकर कहा, ‘माँ ! चुप रहो ! मैं यह सब सुन भी नहीं सकती । मनोज भैया झूठे हैं !!!’ मेरी क्रोधभरी बात सुनकर माँ विश्वास कर गई । यों, और कोई बात उनके दिमाग में रही हो तो मैं कह नहीं सकती !’

“रीता थोड़ी देर बैठकर चली गई । जब मैं शाम में गया तो कोकिलाजी मेरी ओर रोता की ओर बार-बार देखकर मनोजवाली बात ताड़ने की कोशिश करती रहीं । मगर उस घड़ी न मैंने रीता को देखा, और न रोता ने मुझे ! मनोज की शिकायत और कोकिलाजी का निरीक्षण, दोनों फेल हो गए !”

ललित बोला—‘कृष्ण भाई ! उस विश्वार्थी के साथ रीता का अपमानजनक व्यवहार, फिर, आपको लेकर मनोज से लड़ बैठना, न बातों से रोता को पहचानने में अब कोई कोर-कसर नहीं रह जाती !’

कृष्ण ने कहा—‘ठीक कह रहे हो तुम ! मेरे दिल-दिमाग में भी उस दिन तक रोता के खिलाफ जितनी दुर्भावनाएँ थीं, सब नष्ट हो गई । मैं उसे अपनी इष्टदेवी की तरह पूजनाय समझने लगा । उसकी प्रसन्नता से उन्हीं दिनों मैंने कई पुस्तकें भी लिख डालीं । मेरा हृदय मानसरोवर की तरह स्वच्छ और निर्मल हो गया था । अब उसके बाद की घटनाएँ लिखो !’

“एक दिन शर्माजी के घर पर हम सभी लोग बैठे थे । कुमार भी था । कोकिलाजी ने अपनी गरोबों और लाचारों की चर्चा छोड़ दी । इसे लेकर बहुत देर तक राय-वार्ता होती रही । अन्त में मैंने कहा—‘इन सब बातों में कुछ नहीं रखा । आप पहाड़ी गीत संग्रह लिजिए ; पहाड़ी कथाएँ लिख डालिए ; मैं उन्हें प्रकाशकों को देकर काफी से ले आऊँगा । आजकल ऐसे साहित्य को बिक्री भी खूब है !”

ललित ने टोककर कहा—‘कृष्ण भाई ! तो यह लिखाने की आदत आपकी, गालिबन्, बहुत पुरानी है !’

कृष्ण ने हँसकर कहा—‘आदत नहीं ललित ! मर्ज कहो ! मर्ज ! साहित्य और संगीत ! लिखना और लिखाना ! सुनना और सुनाना ! बस यही मेरा मर्ज है, यही मेरी जिन्दगी है ! और यह जिन्दगी का मर्ज मरीज के साथ ही जाएगा ललित ! पहले नहीं ! ! ! हाँ ! तो मैं क्या लिखा रहा था ? हाँ-हाँ, याद आ गया ! लिखो !’

“कोकिलाजी को बात जँच गई । रोजा को वे अपनी पहाड़ी बोली में कहानियाँ सुना देतीं । वह टूटी-फूटी हिन्दी में उसे लिख लेती । बाद, मैं आठ-दस कहानियाँ एकसाथ लेकर बैठता और उन्हें अपनी भाषा में बोलता चला जाता । इस तरह हर सप्ताह एक किताब तैयार होने लगी । दो महीनों में ही छह-सात पुस्तकें तैयार हो गईं । मेरी भाषा सुनते-लिखते, रोजा खुद भी बहुत लिखने लगी थी । कभी-कभी तो मुझे भी भ्रम हो जाता कि अमुक कहानी उसकी लिखी है कि मेरी ! इतनी प्रतिभाशाली थी वह ! इतनी कला-प्राण ! !

“जिन दिनों किताबों का यह तिलसिला चल रहा था, गर्मी के दिन थे ! मैं ‘आकाश’ कार्यालय से १२ बजे दिन में ही फुर्सत पा जाता और खा-पीकर एक-डेढ़ बजे तक शर्माजी के घर पहुँच जाता । कुर्ता-गँजी निकालकर चटाई पर बैठ जाता ; लिखाई शुरू हो जाती । मैं, रोजा, कोकिलाजी, मनोज और शर्माजी, सभी अपना-अपना काम सम्हाल लेते !

“अब मनोज भी कहानियाँ लिखने लगा था । मेरे खिलाफ उसके दिल में जो भावना पैदा हो गई थी, वह तो शायद अपनी जगह पर ही थी; मगर मेरा कार्य देखकर वह धीरे-धीरे मुझपर श्रद्धा करने लगा था । उसको पढ़ाई और पारिवारिक खर्च के लिए, इन पुस्तकों से काफी सहायता मिलेगी, इसका अनुमान वह लगा रहा था । इस अनुमान की प्रतिक्रिया से स्पर्द्धालु होकर वह रोजा के मुकाबले लिखने की कोशिश भी करने लगा । मगर रोजा रोजा थी ! उसकी भाषा होती सरल, लंचल, झर-झर करती पहाड़ी निर्झरिणी की तरह ! जैसे वह अपने को ही भाषा में उतारकर रख देती थी !

“मनोज की भाषा बनावटी थी ; शब्दकोष उलटने और रटने का प्रभाव उसके शब्दों और वाक्यों से साफ जाहिर था । फिर भी वह लिख रहा था ; अच्छा लिखने की कोशिश कर रहा था !

“मैं लगातार कई दिनों तक शर्माजी के यहाँ गया तो उन्हें बहुत शर्म मालूम हुई। उन्होंने कहा—‘आप लिखाते भो हैं और रोज धूप में चलकर यहाँ आते भो हैं ! यह मेरे लिए बहुत शर्म की बात है। कल से मैं और रोता वहाँ आ जाया करेंगे।’

“रोता ने बाबूजी के स प्रस्ताव का दिल से समर्थन किया—‘हाँ बाबूजी ! यहाँ सराज हल्ला भो बहुत करता है !’

“दूसरे दिन शर्माजी और रोता मेरे हो डेरे पर आने लगे। शर्माजी थोड़ा-सा लिखकर लेट जाते, करोब घंटा-भर सो भी लेते। इस बीच रोता मेरे पलंग पर जा लेटतो। मैं भो उसके पास बैठ दुनिया-भर की बातें करता—छेड़ता ! तंग करता !! चपतें भो लगा देता !!!

“यह सिलसिला कोई दो महीने तक चला। पुस्तकों का लिखना समाप्त हो गया। अब सिर्फ एक पुस्तक रह गई। उसे कोकिलाजी से एक दूसरे काशक ने लिखकर देने की प्रार्थना की थी। उन्होंने रोता से कहा—‘भैयाजी से जाकर समझ ले कि इसे कैसे लिखा जायगा। और हाँ, उनसे कह देना कि ‘जिन्दगी’ पर मैं उनका भो न

५३

“रोता मेरे पास आई। मैंने उसे कहा—‘समझाना मुश्किल है ! तू रोज यहाँ आ जाया कर ! मैं लिखा ही जाँगा !’

/ “रोता बोली—‘तो आप क्या समझते हैं कि मैं खुद लिखूँगी !’

“—हाँ हाँ ! तू हो लिखेगी। और कोई लिखेगा तो लिखी जा चुकी किताब !’

“रोता ने मेरे तलवे में अपनी कनिष्ठा का नाखून गड़ा दिया। मैंने उसे एक चपत लगा दी।

“मैंने कहा—‘रोता ! ‘जिन्दगी’ पर मेरा नाम नहीं जायगा। मेरा नाम काफी है। मेरे नाम से तेरो माताजी का नाम फीका पड़े

जाएगा । उनसे कह देना कि मैं अपना नाम किसी भी हालत में नहीं जाने दूँगा !'

“रोता ने मेरी ओर आन्तरिक श्रद्धा से देखकर कहा—‘आप इतने अच्छे क्यों हैं मेरे.....!’

“घोंघा बसन्त ?’ मैंने वाक्य पूरा कर दिया ।

“रीता खिलखिलाकर हँस पड़ी । स्कूल जाने का समय हो गया था । वह चली गई और जाते वक्त बोली—‘मोता परसों कलकत्ते चली गई ! एकाध महीने के बाद आए री ! हाँ ! देखिए ! रात में जरूर आइएगा !’

“मैं रात में जब शर्माजी के घर गया तो देखा, रीता चादर ओढ़-कर लेटी हुई है । सिरहाने कोकिलाजी और पैताने शर्माजी बँधे हुए हैं । मालूम हुआ कि रात में, कीब ग्यारह बजे से, बुखार हो आया है । उस वक्त १०१ डिग्री था ।

“मैं रीता के पास दो घंटे तक बैठा रहा । कोकिलाजी ने कहा—‘स्कूल जाते वक्त हो बदन कुछ गर्म था । नहा लिया ! मेरी बात भी तो नहीं मानती कम्बरूत !’

“रीता मुस्कुराने लगी, तब शर्माजी बोले—‘ओर दाँत कैसे निपोड़ रही है !’

“रीता जोर से हँस पड़ी । बुखार की उसको सो से सभी का हृदय पुलकित हो उठा । मैंने कहा—‘पेनिसिलिन दे दिया जायगा ; ठीक हो जा गो ! घबड़ाने की बात नहीं है !’

“रीता ने मेरी ओर देखकर मुँह चिढ़ा दिया । थोड़ी देर वहाँ बैठकर, रीता को शीघ्र स्वस्थ हो जाने का आशीर्वाद देकर मैं घर लौट आया ।”

कृष्ण ने ललित से कहा—‘ओर ललित ! दूसरे दिन ही, सुबह, सरोज मेरे पास ठोड़ा हुआ आया और बोला कि रीता दम तोड़ रही है ! बेतरह रो रही है ! आपको अभी बुलाया है ! मैं भागकर वहाँ पहुँचा ।’

इतना कहकर कृष्ण पाकिट से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगा :

ललित ने पूछा—‘हाँ-हाँ ! तब क्या हुआ कृष्ण भाई ?’

कृष्ण ने कहा—‘यह कल ललित भाई !’

ललित बेचैन होकर बोला—‘मगर मुझे रात-भर नींद नहीं आएगी कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने कहा—‘उस दिन मुझे भी रात-भर नींद नहीं आई थी ललित ! थोड़ी दूर तक तो साथ दो मेरे मित्र !’

इतना कहकर कृष्ण उठा और चला गया ! ललित को उस रात, सचमुच, एक पल के लिए भी नींद नहीं आई !



चोरी और सीनाजोरी !

आज ललित की लाल और सूजी आँखें देखकर कृष्ण ने पूछा—
‘क्या रात में सचमुच तुम नहीं सो सके ललित !’

‘हाँ!’ कहकर ललित अपनी कोपी उलटने लगा ।

कृष्ण ने कहा—‘नाराज हो गए क्या ?’

‘नहीं तो !’

‘तो मुँह क्यों फुला रखा है?’

ललित बोला—‘कृष्ण भाई ! आप मुझे कलाकार समझ बैठे हैं, यही आपकी गलती है ! अरे, मैं तो एक कलमधिस्तू किरानी हूँ ! फाइलें नहीं भरता, नोट्स लिखता हूँ । कुंजियाँ तैयार करता हूँ । आप कभी-कभी कलात्मक भूलभुलैयाँ में डालकर मुझे इतना परेशान कर देते हैं कि मैं उस मुसीबत का बयान नहीं कर सकता !’

कृष्ण ने कहा—‘ज्यादा भूमिका मत बाँधो ललित ! कलवाली घटना सुनना चाहते हो न ? तो सुनो ! चलो, लिखना शुरू करो !’

ललित प्रसन्न होकर लिखने बैठ गया ।

“सुबह ही, सरोज दौड़ा यह कहने आया कि रोता दम तोड़ रही है, मुझे फौरन बुलाया है । मैं भागकर उसके पास पहुँचा । उस

वक्त उसे १०४ बुखार था। बुखार की बेहोशी में वह न जाने क्या-क्या बोल रही थी। उसे इस हालत में देखकर कलेजा मुँह को आ गया। पास बैठे हो कोकिलाजी ने कहा—‘बेटी ! देख ! भैयाजी आए हैं ! इधर देख !’

“रोता को जैसे होश आ गया। उसने आँखें खोलकर पूछा—‘कौन ?’

“मैंने उसका जलता हुआ हाथ अपने काँपते हाथों में ले लिया और कहा—‘मैं हूँ रोता ! मैं ! कृष्ण ! जरा इधर देखो !!’

“रोता ने सिर थोड़ा घुमाकर मुझे देखा और देखती रह गई। आँखें बन्द करने के पहले उसने कहा—‘यहीं बैठिए !’

“शर्माजी हाथ-मुँह धो रहे थे। मुझे पास बैठा देख, कोकिलाजी चौके में चली गई। बोलों—‘जरा पानी गर्म कर दूँ इसके लिए।’

“उनके जाने के बाद मैंने रोता के माथे पर अपनी डोतल-हथी रख दी। उसे जैसे चेतना का स्पर्श हुआ। उसने आँखें खोल दीं और कहा—‘यहीं रहिए ! माँ कहाँ हैं ?’

“अन्दर गई हैं !’

“उसने मुश्किल से करवट फेरी और मेरी ओर घूम गई। मैंने उसके केश सुलझा दिए। होठों पर पड़ी पपड़ी, पास पड़े तौलिये से पोंछ दी। उसका सिर सहलाते हुए मैं बोला—‘घबराओ मत रोता ! सब ठीक हो जाएगा !’

“रोता ने मेरा हाथ उठाकर अपना पूरा चेहरा ढँक लिया। चेहरा तबै की तरह जल रहा था। मैं रोता के पास दो-तीन घंटे बैठा रहा। यूडिक्लोन की पट्टियाँ चलती रहीं। करीब ११ बजे जाकर, बुखार १०२ पर आया। रोता पूरी तरह होश में आ गई। कोकिलाजी तो अपने कार्य पर चली गई। मैं, शर्माजी और मनोज, रोता को देख-भाल में रह गए। सोज भी स्कूल चला गया। बारह बजने को हुए तो मैंने शर्माजी से कहा—‘मैं अभी खाना खाकर आता हूँ।’

“रीता ने कहा—‘यहीं मँगवा लीजिए!’

“मैंने कहा—‘अभी खाकर आ जाता हूँ रीता ! बस, दस मिनिट में !’

“मैं नहा-खाकर रीता के पास पहुँचा, तब शर्माजी ने कहा—‘अब जरा मैं भी नहा-ओ लूँ; रात जागते-जागते कट गई है।’

“वे आंगन में चले गए। मैं रीता के सिरहाने बैठ गया। मेरी पीठ दरवाजे की तरफ थी। रीता से मैंने पूछा—‘अब तबीयत कैसी है?’

“अच्छी हूँ !’

‘ना ! बुी हो !’ मैंने मुस्कुराकर कहा।

“रीता बोली—‘बहुत बुरे हैं आप !!!’

“मैंने इस बातपर अपनी नाक उसके मस्तक पर रख दी। ठीक उसी वक्त शर्माजी घर में चले आए। चूँकि वे मेरी पीठ की ओर से आए और मेरा सिर रीता के मुँह की ओर काफ़ी झुका हुआ पाया, इस-लिए उन्हें पूरा शक हो गया। तबतक आहट पाकर मैंने झुके हुए सिर से ही पूछा—‘क्या कहा ? नहीं, नहीं, कोई बात नहीं है ! सब ठीक हो जायगा रीता !’

“धर्माजी का चेहरा श्रोत्र के मारे लाल हो गया था, मगर अभी वे किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके थे। आलमारी से तेल लेकर वे नहाने चले गए। कुएँ पर से वे रह-रहकर खिड़की से मेरी ओर झाँक लेते और अपने सन्देह की गवाही में कुछ बँसी हरकतें देखना चाहते। मगर उनका सन्देह शुद्ध रूप में रह गया; उसे एक भी गवाही नहीं मिली ! ‘केस’ कमजोर हो गया !

“जब वे नहा-खाकर आए और मेरे सामने बैठ गए तब उनकी आँखें सुख थीं, चेहरा फक ! मैंने पूछा—‘आज आपको सुबह से ही कुछ उदास देख रहा हूँ; क्या बात है?’

“वे बोले—‘नहीं, ऐसे ही है। कोई खास बात नहीं।’

“इसके बाद वे बाहर चले गए; आध घंटे तक दूसरी कोठरी में कुछ किताब-कागज उलटते रहे। इस बीच मैंने रोता से कहा—‘रोता! पिताजी ने देख लिया है !’

“रोता ने निर्भीक होकर कहा—‘तो क्या है ? क्या कर रहे थे आप, जिसके लिए मैं डरूँ या आप चिन्ता करें !’

“मैंने कहा—‘नहीं रोता ! उन्हें कुछ दूसरा शक हो गया है। देखा न तुमने उनका चेहरा !’

“रीता बोली—‘आप भी कैसी बातें करते हैं ! देखा जायगा ।’

“जब शर्माजी आ गए तो मैंने फिर पूछा—‘क्या बात है शर्माजी ! आप बताते नहीं; आज आपको बहुत विचलित देख रहा हूँ ।’

“शर्माजी ने अपने को सम्हाला। बोले—‘घर से बँटवारे की चिट्ठी आई है। उसी कलह को लेकर दिमाग खराब हो रहा है। मुझे वहाँ तुरत बुलाया गया है ! फिर रीता बीमार पड़ गई है ।’

“उसके बाद घरेलू झगड़ों और उसके कारणों-परिणामों पर मैं भगवान बुद्ध की तरह प्रवचन करने लगा। लेकिन, उसका एक भी शब्द शायद ही शर्माजी के कानों में समा सका !

“थोड़ी देर और रोता के पास बँठकर मैं घर लौट आया। शाम में जब फिर उसे देखने गया, उस वक्त शर्माजी और कोकिलाजी चौके में थे; पास में सरोज बँठा था। रीता ने सरोज को बाहर भेज दिया। मैं रीता के सामने बँठ गया। रीता उस वक्त बुखार से एक-दम फारिग थी।

“उसने कहा—‘आपके जाते ही बड़ा काण्ड हुआ न ! पिताजी ने आकर पूछा—‘कृष्णजी झुककर क्या कर रहे थे ?’ मैंने कहा—‘मेरा केश ठीक कर रहे थे; तकिए में उलझ गया था। मेरी बात पर उन्होंने कहा—‘खैर, ठीक है !’ मगर स्वस्थ हो जाने पर तू उनके

सामने न गाना सुनाया कर, न आया कर और न उनसे बातें किया कर !' मुझे लगता है कि उन्हें पूरा शक हो गया है ।'

"मैंने कहा—'अभी मैं जाता हूँ रोता ! चोरो पकड़ी गई है तो अब जरा सीनाजोरी का भी मजा देख ले !'

"रोता ने घबड़ाकर पूछा—'क्या कीजिएगा आप ?'

—"घबड़ाने की बात नहीं है रोता ! बहुत अच्छी बात करूँगा ।'

"इतना कहकर मैं बाहर चला गया । शर्माजी और कोकिलाजी को मेरे आने की खबर नहीं हुई । डेरे पर आकर मैंने शर्माजी के नाम एक बड़ा-सा खत लिखा । उस खत में मैंने लिखा—'शर्माजी, मैं आपका आत्मीय हूँ; परिवार का एक सदस्य भी शायद ! और, उस स्थिति में अगर मैं किसी भी तरह शंका, सन्देह, या अविश्वास का पात्र बनूँ और हमलोगों का रिश्ता बिगड़ जाय, तो इससे अच्छा होगा कि मैं आपके यहाँ आना-जाना बन्द कर दूँ । यह पत्र मेरा अन्तिम पत्र है । आज से मैं आपके यहाँ नहीं आया करूँगा । हाँ, इसे आप किसी भी दूसरे रूप में न लें । मेरे लायक जो भी सेवा होगा, मैं करूँगा; मगर दूर-दूर से !'

"शर्माजी ने यह पत्र पढ़ा तो बहुत चकराए । उनकी सारी शंकाएँ नष्ट हो गई । उसी रात वे कोकिलाजी के साथ आए और मुझे मनाकर घर ले गए । उन्होंने मुझसे अनसुनी बातें छिपा लीं और कहा—'आपको भ्रम हुआ है कृष्णजी ! आखिर मैं भी आदमी पहचानता हूँ । मैं उन पिताओं में नहीं हूँ कि बँसा दृश्य देखूँ और चुप रह जाऊँ !'

"खैर, जब मैं उनलोगों के साथ रोता के पास गया तो वह मुझे देखकर आत्म-विभोर हो गई ! मेरा पत्र उसने पढ़ लिया था और मुझे मनाने की योजना भी माँ से वह सुन चुकी थी । उस अभिनय में सफलता देख उसे तो जैसे मुँहमांगी मुराद मिल गई !"

ललित ने सन्तोष की सांस लेकर कहा—‘सचमुच कृष्ण भाई ! आप जैसे चोर और सीनाजोर प्रेमी बहुत कम मिलेंगे ।’

कृष्ण ने मुस्कुराकर कहा—‘और तुम्हें अपने अफसर साहब का तमाचा याद आ गया क्या ?’

ललित ने लजाकर सिर नीचा कर लिया !

कृष्ण ने कहा—‘हाँ, आगे लिखो !’

“रोता जब बिलकुल स्वस्थ हो गई तो एक दिन मेरे पास कोपी और एक-दो पुस्तकें लेकर आई। उसने कहा—‘मैं तो आती ही नहीं थी, मगर माँ-बाबूजी ने डाँटकर भेजा है। मैंने उनसे कहा कि एक तरफ तो आपलोग उनके सामने नहीं जाने का हुक्म देते हैं, दूसरी ओर, उनके घर अकेली चले जाने को कहते हैं। मैं नहीं जाऊँगी !’ इस पर माँ ने बिगड़कर कहा—‘जा, जा; यह सब सोचना हमारा काम है।’ तब मैं आई हूँ आपके यहाँ !’

‘मैंने रीता की इस बहादुरी पर उसकी पीठ तीन-चार मुक्कों से गर्म कर दी। रीता ने हँसकर पूछा—‘सजा है या धन्यवाद ?’

‘मैंने कहा—‘सजा में धन्यवाद !’

“रीता मुस्कुराकर पास बैठ गई। मैंने उसे चार-पाँच घंटों में ही पूरी पुस्तक लिखवा दी। बीच में एक बार सरोज बुलाने आया तो मैंने कह दिया कि एक-दो घंटे और लगेंगे। करीब ६॥ बजे शाम में किताब समाप्त हो गई। किताब की आखिरी पंक्तियाँ मैं चटाई से हटकर कुर्सी पर बैठ-बैठा लिखा रहा था कि कोकिलाजी आ गई। पहले मैं किसी दूसरे ग से लिखा रहा था। चटाई से दूर मुझे कुर्सी पर बैठ देख उन्होंने सन्तोष की सांस ली और चुपचाप दस मिनट तक बैठी रहीं।

“पुस्तक जब समाप्त हो गई तो उन्होंने कहा—‘कृष्णजी ! आप हमलोगों के लिए ईश्वर के भेजे हुए दूत हैं। इतनी प्रसिद्धि, तने

पैसे, ओह ! हमलोग तो इसकी कल्पना भी नहीं करते थे ! आप देवता हैं, कृष्णजी, देवता !'

"मैंने कहा—'देवता नहीं, राक्षस हूँ, राक्षस ! अभी आपको पता ही नहीं चला है !!'

"कोकिलाजी ने मुस्कुराकर कहा—'मुझे सब पता है !'

"इसके बाद वे रीता को साथ लेकर चली गईं। उस दिन शाम को मैं उनके यहाँ नहीं गया। कुमार ने तो चार-पाँच रोज पहले से हो जाना बन्द कर दिया था। उसे एक बार चाय टूटी प्याली में और दूसरी बार एक काली पत्ती के साथ दे दी गई थी, इसलिए वह नाराज़ हो गया था ! और भी कोई कारण हो तो मैं नहीं जानता। मैंने कुमार से वहाँ चलने के लिए कई बार कहा, पर वह टाल गया। शायद वह अब डरने भी लगा था—कहीं बात आगे बढ़ गई तो ? आखिर उसकी भी तो बदनामी होगी ! मैंने भी सोचा कि किसी मित्र को खामखा काँटों में क्यों घसीटूँ। मैंने उसी दिन से तटस्थ भाव धारण कर लिया। कुमार वहाँ से अलग-अलग रहने लगा।

"दूसरे दिन सुबह, मैं गया तो यूँही, शक दूर करने के स्थान से कहा—'रीता ! आज जरा मीरा का वह गीत तो सुना दो—'पग घुघरूँ ब्रूँध मीरा नाचे रे !'

"रीता ने बात नहीं मानी। शर्माजी और कोकिलाजी भी चुप रहे ! मेरे आग्रह करने पर कोकिलाजी ने कहा—'अच्छा ! गा दे आज !'

"उसने कहा—'नहीं ! मैंने गाना छोड़ दिया है !'

• "मैंने बनावटी गुस्से में कहा—'तो मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से छह महीने तक तेरा गाना नहीं सुनूँगा !'

"रीता आँगन में चली गई और कोकिलाजी भी परेशान होकर उसे मनाने चली गई और मैं वहाँ से उठकर तुरत चल पड़ा और रात में वहाँ नहीं गया।

“दूसरे दिन सुबह, सरोज और रोता कहीं जा रहे थे। मैंने सरोज को बुलाया तो उसने कहा—‘नहीं आऊँगा ! कल बाबूजी ने मना किया था !’

“क्या कहा था ?’

“कहा था कि कृष्णजी के यहाँ तुमलोग मत जाया करो। जाओगे तो सजा पाओगे !’

“मैंने रोता को सुनाकर कहा—‘हाँ ! अब काहेको कोई यहाँ आएगा ? किताबें सभी खत्म हो गई न !’

“रोता को मेरी यह बात बहुत बुरी लगी। मैंने इसको चिन्ता नहीं की। मैंने सोचा, जब मैं ही बुरा बन गया हूँ तो मेरी बातें लोगों को बुरी क्यों नहीं लगे ? हो जाने दो सारी दुनिया को नाराज और नेकचलन !!!

“रोता और सरोज चले गए। उस दिन से लगातार चार दिनों तक मैं शर्माजी के यहाँ नहीं गया। चौथे दिन रात में शर्माजी और कोकिलाजी स्वयं पधारे। मेरे साथ कुमार बैठा था। जब वह उठकर चला गया तो शर्माजी ने कहा—‘आपने आना क्यों बन्द कर दिया है ?’

“यूँही !’

“नहीं, यूँही तो हो नहीं सकता !’

“कोकिलाजी बोलीं—‘क्या बात है ?’

“मुझसे छिपाया नहीं गया। मैं खरा और कड़ुआ आदमी हूँ। मैंने कहा—‘शर्माजी ! आपकी-मेरी मित्रता स्वार्थ की मित्रता है। आपका स्वार्थ पूरा हो गया; मैं अब दूध की मक्खी-सा बाहर हूँ ! और कोई बात नहीं है।’

“शर्माजी मेरे इस आरोप से हतप्रभ हो गए। उन्होंने कहा—‘आप यह क्या कह रहे हैं ! मैं स्वार्थी नहीं हूँ। आपको जरूर कोई गलतफहमी हुई है।’

“मैंने कहा—‘शर्माजी ! गलतफहमी आदमी को खुद होती है। मैंने तीन-चार दिन पहले सरोज को बुलाया था; उससे मालूम हुआ कि आपलोगों का हुक्म है कि बच्चे मेरे यहाँ हरगिज नहीं आया करें, न गाना गाया करें, न बातें किया करें। शर्माजी ! मैं आपके बच्चों के मुँह से यह सब सुनने की आशा नहीं करता था। मुझे सख्त अफसोस है। मैं एक बार पहले भी कह चुका हूँ, और अब भी कह रहा हूँ, कि आप मुझे छोड़ दें। खामखा एक आदमी के चलते परिवार में अशान्ति का बीज मत बोएँ। आखिर मैं होता कौन हूँ !’

“मगर शर्माजी और कोकिलाजी न माने। उन्होंने ऐसी-ऐसी शपथें खाईं कि मैं चुप हो गया। मेरी साँी अकड़ और भीष्म-प्रतिज्ञा चकनाचूर हो गई।

“दूसरे दिन मैं, दिये वचन के अनुसार, जब शर्माजी के घर गया तो देखा कि बैठक में एक नया ताला लगा हुआ है। बैठक के पास-वाली कोठरी में वहाँ का सारा सामान आ गया था। मैंने पूछा—‘इसमें कोई नया किरायेदार आ गया है क्या ?’

“शर्माजी बोले—‘हाँ, देवजी के मोसेरे भाई हैं। डाक्टरी पढ़ते हैं ५ परसों ही आ हैं, ! आदमी बड़े अच्छे हैं !!!’

“रीता ने आकर प्रणाम किया। सरोज मेरी गोद में उछलकर चढ़ गया। मनोज ने भी झुककर नमस्ते की।

“जब शर्माजी और कोकिलाजी अन्दर चले गए और मनोज-सरोज आँगन में पढ़ने लगे तब रीता ने पास आकर धीरे से कहा—‘क्या कमाल का नाटक किया है आप ?’

“मैं बोला—‘तू जो न कराए रीता !’

“रीता ने शरमाकर कहा—‘दुत् !’ और भागकर चीके में चली गई !!”

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! आज का अध्याय ‘दुत्’ तक ही रहने दो !’

ललित बोला—‘आप जहाँ रखें ! मेरा कोई बस है कृष्ण भाई ?’

कृष्ण हाका मारकर बोला—‘ओ ! कल रातभर का जागरण तुम्हें अभी तक खल रहा है ! वाह जी, मियाँ ललित ! हो तुम भी एक चीज ! ! !’



रीता का यही आदेश है !

उपन्यास आगे बढ़ाने के पहले ललित ने बहुत संजीदगी से पूछा—
‘कृष्ण भाई ! आप जो यह उपन्यास लिखा रहे हैं, क्या आपकी रोता
इसे पढ़कर प्रसन्न होगी ? क्या आपका यह काम उसके लिए अच्छा
होगा ?’

कृष्ण कुछ देर तक चुप रहा। उसने ललित को गौर से देखकर
कहा—‘अच्छा-बुरा मैं नहीं जानता, ललित ! हाँ ! रोता ने एक
आदेश दिया था; मैं उसी का पालन कर रहा हूँ !’

ललित ने उत्सुकता से पूछा—‘क्या आदेश था वह ?’

कृष्ण ने कहा—‘जिन दिनों मैंने वहाँ जाना बन्द कर दिया था,
उन्हीं दिनों मुझे रोता की कई चिट्ठियाँ मिली थीं। एक में उसने
लिखा था—[‘मैंने एक ख्वाब देखा है ! कृष्णजी के काव्य
में सुना था ‘पढ़ा था कि एक पात्र ने नायिका से जब पूछा,
‘तुम कौन, कहाँ की, क्या हो,’ तो नायिका बोली थी, ‘मैं फलाँ
हूँ फलाँ की !’ उसी प्रकार मेरे सपने में भी है। जब मीता
ने पूछा, ‘तुम कौन, कहाँ की, क्या हो,’ तब मैंने कहा, ‘मैं दिल की
मलका श्रीमान् कृष्णजी की !’ क्या मैंने गलत कहा था ? यदि गलत
कहा था तो श्रीमान् मुझे माफ़ करेंगे। उस गलती के बदले जो दण्ड

होगा, मैं सूर्ष स्वीकार करूँगी ! जोहाँ.....यही बात है !—] और कई बातें लिखी थीं उसमें !'

दूसरी चिट्ठी से तो ललित ! मैं तिलमिलाकर रह गया था । उसमें उसने लिखा था—[आप भी सोचते होंगे कि मैं कैसी लड़की हूँ, जो माता-पिता के खिलाफ चल रही हूँ । न जाने मैं क्यों ऐसा सोचती हूँ । रात को जब मैं ९—१० बजे घर आ रही थी तो आप अपने कमरे में कुर्सी पर बैठे थे । इच्छा हुई कि आऊँ, पर ख्याल आया, जाने, आप क्या समझें ! बाबूजी और भो बहुत-सी बातें बोलते थे । कहाँ तक कहूँ ! एक कंड़ी का तरह विवश हूँ । कहानी मेरी मर गई ! अब नहीं लिख सकूँगा शायद !

'कितने दिनों से सोच रही थी कि कहीं ऐसा न हो कि हमलोगों को मिलने नहीं दिया जाय । और आज वह सोचना सत्य हो गया । आप नहीं आ रहे हैं । ठीक ही हुआ । परन्तु बहुत ही कटु अनुभव हो रहा है । मेरी विवशता है । लोगों का बन्धन है, जो तोड़ नहीं सकती ।

प्रतिज्ञा के अनुसार एक बार आऊँगी; अवश्य आऊँगी, चाहे जो भी होगा इसके लिए ! मैं आप से अनुरोध करती हूँ कि यदि बाबूजी या माँ, कोई भी मेरे परिवार का आदमी हो, उससे आप अपमानजनक व्यवहार नहीं करेंगे ।

दो दिनों से बहुत ही अशान्तिमय जीवन व्यतीत कर रही हूँ । कुष्णजी की ही चर्चा है ।

आपने जो मुझे दान दिया है, उसे जीवन भर ढोऊँगी ! आभारो भी बहुत हूँ आपकी ! इतना बड़ा दान !!!

कभी तो विश्वास ही नहीं होता कि यह दान झूठा है या सच्चा । फिर भी, यह एक थाती है मेरी !—अपनी और अनुपम थाती !!

आप साहित्य की ओर ध्यान देंगे, मैं बहुत कुछ पाऊँगी ! सब कुछ पा जाऊँगी !!!]

कृष्ण ने लम्बी साँस लेकर कहा—‘मैं रोता के इसी आदेश पर चल रहा हूँ ललित ! और इसी आदेश पर चलते हुए मर भी जाना चाहता हूँ । मेरी और कोई इच्छा नहीं है इस जीवन में ! कोई दूसरी महत्वाकांक्षा नहीं है !’

कृष्ण ने इतना कहकर सिगरेट का एक जोर का कश लिया और धुँआँ निगलते हुए बोला—‘मगर न जाने इस आदेश को ढोने के लिए और कब तक जीना पड़ेगा मुझे ! ललित ! मैं अब इसे ज्यादा ढा नहीं सकता ; थक गया हूँ इस भार से !’

कृष्ण को इस बात से ललित का दम घुटने लगा । उसने पानी पीने के बहाने, थोड़ी देर के लिए कृष्ण से अपने आपको अलग कर लिया । जब ललित आकर पास बैठ गया तो कृष्ण ने कहा—‘जरा उसकी तीसरी चिट्ठी की बात सुनो । उसमें उसने लिखा था—[मैं शपथ से कह सकती हूँ कि आपने जो बुरी भावनाएँ मेरे प्रति पाल रखी हैं, वे एकदम गलत हैं । रोता इतनी गई-बीती नहीं है । अगर आप मुझे वैसे भ्रष्ट समझते हैं तो मेरा दुर्भाग्य है । आप मुझे बुरी समझकर भी याद कर लें तो अपना सौभाग्य मानूँगा ।]

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! मैं सच कहता हूँ, रोता चंचल-भरणी; बुरी नहीं थी । मेरी आत्मा उसे बुरी कहना कबूल नहीं कर सकती !’

कृष्ण ने कहा—‘वह जैसी भी थी, मेरी थी ललित ! मेरी है !! और मेरी ही रहेगी !!!’

ललित ने पूछा—‘आजकल आपकी रोता कहाँ है ?’

कृष्ण बोला—‘मेरी आत्मा में, मेरे हृदय में, मेरे शरीर के रॉम-रॉम में !!! वह कहाँ नहीं है ललित ! हर जगह है । रोता, राता से अब ईश्वर हो गई है ! साकार से निराकार हो गई है ! वह..... वह.....! उह ! मैं भी कैसा पागल आदमी हूँ ! कितना समय बर्बाद कर दिया बेकार की बातों में ! चलो, उपन्यास लिखो ।’—

“दार्जिलिंग से लौटकर तथा शर्माजी से रुठकर और फिर मान कर मैंने एक दिन उनसे कहा—‘आज शराब पीने की तबीयत हो रही है मेरी ! आपका क्या विचार है ?’

“मैंने यह बात रोता को परखने के लिए पूछी थी । रीता मेरा यह प्रस्ताव सुनते ही अपनी कोरी में चली गई । चेहरे पर गुस्से की साफ छाप थी !”

ललित ने पूछा—‘आप शराब भी पीते थे ?’

‘हाँ ! कभी-कभी ! छठे-छमाही कभी चार-दोस्तों ने मजबूर कर दिया तो पी लेता था । होली के दिन मेरा मुँह मूँक गया था और रीता आश्चर्य से मेरी ओर देखती रह गई थी । उसने उसी दिन से, मुझे अपनी सौगन्ध देकर, शराब छुड़ा दी थी । उसके बाद, जिस दिन मैंने रीता की चिठ्ठी उसके पिता के यहाँ भिजवा दी थी, उस दिन भी मैंने पी ली थी । उस दिन तो मैं इतना पी गया था कि रिक्शे से उतरते वक़्त जमीन पर पाँव और हाथ एक साथ आ लें थे । उफ् ! कितना खौफनाक था वह दिन ! झधर मेरे मुँह में शराब ! उधर रीता की नाक में लवंग ! दोनों की कसमें क्रोध में टूट गई थीं ! खैर, छोड़ो इन बातों को । आगे लिखो !’

“शराबवाला प्रस्ताव रखकर मैं शर्माजी से और सब त्वातें करने लगा । रोता अपने कमरे में बैठो कुछ लिख रही थी—बहुत जल्दी-जल्दी । जब मैं वहाँ से घर आ गया तब सरोज से उसने मेरे पास क पत्र भेजा । मैं उसे एक साँस में पढ़ गया । उसमें उसने लिखा था—
[‘.....!’

.....!’

सुबह जब आप आए थे तो मेरे पिताजी से कह रहे थे कि जाता हूँ शराब पीने । कह नहीं सकती, मुझे कितना दुख हुआ ! इसलिए कि आपने मेरे सामने की हुई प्रतिज्ञा को तोड़ दिया : कैसे कहूँ कि आप तोड़ चुके हैं ! आपको याद होगा कि आपने मेरे सामने होली के

बाद से न पीने की शपथ खाई थी । पर वह शपथ तो बीच में ही टूट गयी । दार्जिलिंग जाने के पहले ही ! खैर, मेरो किस्मत ही ऐसी है ! अभागिन हूँ ! किसी को भी सुख नहीं दे सकूंगी !

आप कहेंगे, तुम्हें क्या गरज पड़ो है या अधिकार है ! मैं पीऊ या कुछ करूँ ! पर, उस नाते नहीं तो एक मनुष्य के नाते ही कहूँगी । आप मानें या न मानें, वह तो आपको खुशी है । मैं आपसे प्रार्थना करूँगी कि आप शराब न पीएँ ! कभी भी नहीं ! बड़ी आभारों रहूँगी । सच कहती हूँ ! मैं बहुत दुखी हूँ, यह बात सुनकर ।

आपको मुझपर कुछ भी दया है तो शराब छोड़ दोजिए । यदि पाते हों या पीने जा रहे हों तब ? यदि मुझे किसी तरह मालूम हो जायगा कि आपने शराब पी है तो मैं दो दिन खाना नहीं खाऊँगी । कसम से कह रही हूँ ! झूठ मत समझिएगा ।

वैसे तो आपकी मर्जी है ! एक कवि की मर्जी ! मगर मैं न सुन सकती हूँ, न देख सकती हूँ कि आप शराब पीएँ ! आपको मेरो शपथ ! मत पीजिएगा !

अगर आप यह समझें कि मैं व्यर्थ बक रही हूँ तो पीजिए ! खूब पीजिए ! पर समझ लीजिए कि मैं हूँ ही नहीं ! मर गई आपके लिए ! तब नहीं तंग करने आऊँगी । कोई वास्ता नहीं रहेगा । और फिर आपको मुझ जैसी लाखों रोता मिलेंगी । आपका क्या बिगड़ेगा ? मुझमें कौन-सा रत्न भुलाया हुआ है !

आशा है, आप मेरे अनुरोध को नहीं ठुकराएँगे । बहुत बड़ी आशा लेकर लिख रही हूँ । मैंने आज तक कोई चीज नहीं माँगी है आपसे । आज माँग रही हूँ—यही कि मत पीजिएगा । आशा में रहूँगा । निराश मत कीजिएगा ।

आप कितना भी बुरा काम कीजिए, मैं सह लूँगी । केवल अपने प्रि.....के लिए ! पर मैं यह नहीं सह सकती कि आप शराब पीएँ ! न जाने क्यों !!!]”

कृष्ण ने इतना लिखाकर कहा—‘और उभी चिट्ठी के एक कोने में—उसने एक अजीब बात लिख दी थी । मैं पुस्तकों में ज्यादा उलझा रहता था । उसे रातदिन मेरी पुस्तकों में उलझा रहना खराब लगता । सरस्वती जैसे उसकी सौत बन जाना चाह रही हो !’

‘क्या लिखा था ?’ ललित ने पूछा ।

कृष्ण बोला—‘लिखा था—[कोई चाहती है कि उसका कवि इतनी पुस्तकों न लिखे कि वह दूसरी पुस्तक को पढ़ हो न सके । और मैं केवल अपने प्रिय की पुस्तकों में हो डूबी रहूँ । क्या यह दोनों संभव है ?

—सदैव आपको हो—रोता !]

‘ललित ! उस पत्र को पढ़ने के बाद मैं जल से बाहर फेंकी हुई मछली की तरह छटपटाने लगा । शराब तो पीने को इच्छा भी नहीं थी । मैंने उभी वक्त प्रतिज्ञा की कि जब तक रोता मुझे छोड़कर नहीं चली जाती, मैं शराब नहीं पीऊँगा । मैं तभी पीऊँगा, जब मुझे कोई राकनेवाला नहीं रह जायगा, कोई शपथ खिलानेवाला नहीं होगा, कोई इस प्रकार की दर्द-भरी चिट्ठी नहीं लिखेगा ! फिर मैं जो भरकर पीऊँगा, इतना पीऊँगा कि तपेदिक हो जायगा ! हृदय को गति एक जायगी !! रास्ते में चलते-चलते किसी दुधंटना से मीत हो जायगी !!!’

ललित कृष्ण की बातों से फिर घबड़ा गया । उसने बात बदलकर कहा—‘कृष्ण भाई ! अब आपके अँगूठे का क्या हाल है ?’

‘अब ठीक है ; आठ-दस दिनों में पट्टी खुल जायगी !’

इसके बाद दोनों चुप हो गए । कुछ क्षणों के बाद कृष्ण ने कहा—‘चलो, आगे लिखो !’—

‘मैं शाम में जब रोता के यहाँ गया तो उसने जाने ही पूछा—आपको मेरी चिट्ठी मिल गई थी !’

‘मैंने कहा—‘हाँ ! मिल गई थी । मैं तो न पीने जा रहा था और न पीऊँगा । मैंने प्रतिज्ञा की है कि सिगरेट की तरह ही शराब को

भी तभी छूँगा, जब तुम मुझे छोड़ जाओगी; ऐसी जगह चली जाओगी जहाँ से आना तुम्हारे लिए शोभाजनक नहीं होगा; पिता-माता, पति और समाज की नजरों में पवित्र प्रेम भी जब चरित्रहीनता कहा जायगा ! उसी दिन से मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर पीना शुरू कर दूँगा ! सो सिगरेट और एक बोतल शराब ! सुबह से शाम तक, शाम से सुबह तक साफ !—तब यही मेरी जिन्दगी होगी ! ऐसी ही जिन्दगी हो ! रोता ! ऐसी ही !! कितने आनन्ददायक होंगे वे दिन !!!'

“रोता ने लपककर मेरे मुँह पर हाथ रख दिया। उसकी आँखें भरपूर डबडबा आई थीं। वह फूटकर रो पड़ती, मगर उसी वक्त आँगन से कोकिलाजी और शर्माजी आ गए। फिर दीन-दुनिया की बातें शुरू हुईं और मैं कुछ देर बैठकर डेरे पर लौट आया।

“तोसरे दिन सुबह जब मैं रोता के यहाँ गया तो देखा कि वह नए किराएदार से बाहर हो घुलमिलकर बातें कर रही है। मुझे देखते ही वह अन्दर चली गई। कोकिलाजी और शर्माजी डिस्पेंसरो में थे। रोता से मैंने पूछा—‘किससे बातें कर रही थीं तुम?’

“गज्जू बाबू से !’ रोता सहमी हुई बोली।

“कौन है यह?’

“देवजी के मोसेरे भाई हैं। नए किराएदार हैं।

“थोड़ी देर ठहरकर रोता ने पूछा—‘उनसे बातचीत करने की इजाजत है?’

“मैंने कहा—‘बातचीत क्या, मिलने-बैठने तक को इजाजत है ! जिस किसी से तुम चाहो मिलो, बोलो ! मगर याद रखो रोता ! विश्वासघात नहीं हो मेरे प्रेम के साथ !’

“रोता चुप हो गई। उसके बाद, कई दिनों तक, मैंने गज्जू बाबू से बातें करते उसे नहीं देखा।

“एक दिन गज्जूजी के मुँह से कोकिलाजी और शर्माजी के लिए ‘माँ-बाबूजी’ का सम्बोधन सुनकर मैं चौंका । यह माँ-बाबूजी वाले तीसरे किराएदार निकले ! मैं चुपचाप बड़े ध्यान से उनका रवैया देखने लगा ।

“एक दिन वे अपने एक मित्र की दुकान पर बैठे थे । मित्र भी नौजवान थे ; दिलफेंकें थे ; कोकिलाजी और रीता से परिचित भी । उन्हींकी राय से, और देवजी के सहारे, उनका शर्माजी के यहाँ आना हुआ था । गज्जूबाबू डाक्टरों-पढ़ाई में कई बरसों तक फेल होकर भी अध्यवसाय और परिश्रम से मुँह नहीं मोड़ रहे थे ! एक दिन उनसे मेरे एक मित्र ने शर्माजी के परिवार के विषय में बहुत आपत्तिजनक बातें सुनीं तो मुझे बताईं । मैंने कहा—‘वे तो खुद वहाँ रहते हैं !’ मेरे दोस्त ने कहा—‘मैं उन्हें उनके शहर से ही जानता हूँ ! शौकीन आदमी हैं । हर तरह का शौक है !’

“मित्र की बात से मैं और चौकन्ना हो गया । कभी-कभी मैं अनिश्चित समय में भी रोता के यहाँ पहुँच जाता, या नौकर को भेज कर दिखवाता । उधर गज्जूजी को भी मेरी असमय उपस्थिति बहुत खलने लगी । रीता भी एकाध बार, जाने-अनजाने, उनके कमरे में जा चुकी थी । वे भी बराबर, अवसर निकालकर उससे बातें कर लिया करते ; बाहर जाते वक्त, घर की चाभी दे जाते ! उसे दरवाजा खोलने के लिए पुकार लेते ! यानी, कई प्रकार से वे उसके पास आने के लिए अकुलाने लगे !’

रीता का स्वभाव तो अनस्थिर था ही ! वह भी कभी-कभी विचलित हो जाती । एक दिन मैं रीता के पास बैठा हुआ था । घर में और कोई नहीं था, सिवा सरोज के । गज्जूजी अपनी कोठरी में थे । मैंने रीता की वेणी पकड़ ली तो उसने उस कोठरी की तरफ इशारा करके कहा—‘अभी वे हैं ।’ थोड़ी देर के बाद वे अन्दर आए और बोले—‘रीता ! बाबूजी कहाँ ?’

“बाहर गए हैं !” रीता ने कहा ।

“गज्जूजी ऐसे रोब से बोले, जैसे उन्होंने वेणी पकड़ना देख लिया हों । जाने वक्त बोले—‘कृष्णजी ! मुझे भी कुछ पढ़ने-लिखने का शौक है । आप से मिलकर मैं बातें करूँगा !’

“जरूर !” मैंने कहा ।

“वे दरवाजा बन्द करके बाहर चले गए । इस घटना के तीसरे दिन मैं शर्माजी के यहाँ गया तो देखा, रीता गज्जूजी की कोठरी में कुर्सी पर बैठी हुई है । हाथ में स्वेटर है ! स्वेटर देखकर मुझे छत पर कही हुई उसकी बात याद हो आई । उसे वहाँ बैठे ओर बतियाते देखकर मैं डरे की ओर वापस लौटा । रास्ते में ही शर्माजी ओर कोकिलाजी से भेंट हो गई । वे मुझे पकड़कर वापस ले आए । हमलोगों की बात-चीत की आवाज सुनकर रीता तुरत गज्जूजी की कोठरी से बाहर निकल आई । पिता-माता के साथ मुझे सामने देखकर वह थरा गई । मैं क्रुद्ध होकर भी ऊपर से शान्त रह गया । पिता-माता के लिए तो वह कोई नई बात थी ही नहीं । जब वे लोग आंगन में गए तो मैंने रीता को पुकारा और धीरे से कहा—‘तू इतनी कमीनी, जलील और कुत्ती है, इसका मुझे ज्ञान नहीं था । आज से तेरा-मेरा रिश्ता खत्म !, मैं जा रहा हूँ । तू भी मत आया कर मेरी तरफ !!!’

“एक सांस में इतनी आग उगलकर, मैं बड़ी तेजी से बाहर चला गया । मेरे आने के बाद शर्माजी और कोकिलाजी ने न जाने क्या पूछा और रीता ने क्या जवाब दिया !

“मैं डरे पर तो आया, मगर वहाँ रह नहीं सका; बाहर निकल पड़ा । बारह बजे के करीब आया तो नीकर ने कहा—‘रीताजी आई थी; मेज पर एक चिट्ठा लिखकर रख गई हैं !’

“मैं मेज पर गया तो देखा—‘सारा मेजपोश वहाँ रखी हुई हरी स्याही से रँग गया है । बेंत की मेज भी खराब हो गई है । मैं पत्र उठाकर पढ़ने लगा ।

['कृष्ण जी,

आप जो अभी बोलकर आए हैं, उसे भूले नहीं होंगे ! मैं खराब हूँ तो हूँ । आप का क्या है इसमें ? खबरदार ! कि अब आपने ऐसी बात फिर मुँह से निकाली । अगर स बार आपने फिर पहली जैसी हरकत की तो मैं भी वह बदला लूँगा कि जीवन-भर याद रखिएगा । कहे देती हूँ ! आप से आजतक का सभी रिश्ता खत्म हुआ । आप विश्वासघाती हैं ! कितना अच्छा था कि आप मेरे भैयाजी थे ! बीच में मेरा दिमाग खराब हो गया और मैं आपको सब कुछ मान बैठी । आज से आप फिर मेरे लिए भैयाजी हो हैं । सिर्फ भैयाजी ! आप की रीता आपके लिए मर गई !]

“रीता की उस चिट्ठी को पढ़कर पहले तो मेरा खून खोल गया । जी में आया कि अभी तुरत उठकर उसके घर जाऊँ और वहीं इतनी मार मारूँ कि हड्डी-पसली तोड़कर रख दूँ । मगर फिर, दिमाग में कई बातें आ गई । उन्हें सोचते-सोचते मैंने यहाँ तक उतरकर निश्चय किया कि रीता निर्दोष है । अगर वह दोषी होती तो ऐसी चिट्ठी कभी नहीं लिखती । आखिर की पंक्तियाँ तो इतनी कातरता और व्यथा से भरी हैं कि ऊपर की क्रोध-भरी बात बिलकुल हल्की पड़ जाती है । मैं 'क्या करूँ, क्या न करूँ' की हालत में था कि रीता दरवाजा खोलकर अन्दर चली आई । आकर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गई ! उसका सूखा चेहरा, सूखे होंठ और सूनी आँखें देखकर मेरो विचित्र हालत हो गई । उसने बाधिन की तरफ आँख मिलाई और मुझे देखती रही । उसकी दृष्टि में आत्मीयता से भरे हुए क्रोध का भाव भरा था ।

“मैंने हिम्मत करके पूछा—‘तुम मुझसे बदला लेने जा रही हो ? ठीक है ! ले लो बदला ! तुम्हें मेरी कसम है ! जरूर बदला लो । उस आदमी से बदला लेना बहुत जरूरी है रीता ! जिसने तुम्हारे लिए अपनी पत्नी को छोड़ा हो, बच्चों को आँखों से ओझल किया हो,

मित्रों को नाराज किया हो और अपनी प्रतिष्ठा खतरे में डालकर अपनी जिन्दगी तबाह कर ली हो ! अपना.....।’

“रीता चीखकर मेरी गोद में गिर पड़ी और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी । मैं थोड़ी देर तक चुप रहा मगर मेरा धैर्य भी बाँध तोड़ गया । हम दोनों बहुत देर तक रोते रहे ! राते रहे !! रोते रहे !!! उफ् ! कितना खौफनाक था वह दिन !

“रीता जब चुप हुई और आँसू पोंछकर घर जाने के लिए उठी तो झुककर मेरे पैर के नीचे की धूल उठाकर माँग से लगा ली और उसे आँखों पर धरते हुए बोली—‘मैं अपराधी हूँ देव ! पापिन हूँ ! मुझे क्षमा कर दीजिए ! क्षमा कर दीजिए मुझे !’

“मैं कुछ कहूँ-कहूँ कि वह बाहर निकल गई ! दरवाजे के बाहर खड़ा होकर मैं उसे देखने लगा । उसने भी घूमकर एकबार मेरा और निहारा और शान्तगति से धीरे-धीरे गली के मोड़ के बाद ओझल हो गई !”

कृष्ण इतना लिखाकर तुरत उठ खड़ा हुआ और बोला—‘अभी तुरत एक जरूरी काम से मुझे अपने प्रकाशक के यहाँ जाना है । तुम जरा अपनी यह कोपी दे दो मुझे ! कल वापस कर दूंगा ।’

• ललित ने बिना कुछ पूछे कृष्ण को उपन्यासवाली भोटी कोपी दे दी ।



ईर्ष्या से प्यार बढ़ गया !

कृष्ण के आते ही ललित ने पूछा—‘कृष्ण भाई ! कल आपने इतनी जल्दबाजी में प्रकाशक की बात कही और मेरी कोपी लेकर चलते हुए कि मैं कुछ समझ ही नहीं सका !’

कृष्ण ने कहा—‘तुम शायद नहीं जानते कि मैं इस प्रान्त का होकर भी आजकल यहाँ नहीं रहता ललित ! बरसों से दिल्ली को ही अपना अड्डा बना रखा है । कभी-कभी बम्बई भी, फिल्म-कम्पनियों के चक्कर में, चला जाया करता हूँ ।’

‘गोत-बीत लिखने ?’

‘हाँ ! ऐसे ही कुछ !’

ललित ने कहा—‘तभी आपको इस इलाके में मैंने पहले नहीं देखा । भाषा वगैरह भी आपकी उसी तरह की है । उस दिन जब आप उन्मुक्तजी से देहाती बोली में बतियाने सगे तब मुझे विश्वास हुआ कि आप सचमुच इसी प्रान्त के हैं !’

कृष्ण ने हँसकर कहा—‘तब तो किसी दिन तेलुगु बोलते देखकर तुम मुझे मद्रासी भी समझ सकते हो ! मैं तो बँगला भी अपनी मातृभाषा की तरह ही बोल लेता हूँ ललित ! ढाका में बरसों रहा हूँ । मद्रास में भी चार वर्ष !’

ललित बोला—‘आप कहाँ-कहाँ रहे हैं, यह कहकर मुझे उल्लू मत बनाइए कृष्ण भाई ! मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि आप यह उपन्यास लेकर गए कहाँ थे ?’

कृष्ण ने कहा—‘यहाँ के एक प्रकाशक मेरे मित्रों में हैं । मैं उन्हीं से मिलने यहाँ आया था । उन्होंने मेरे कार्यक्रम की चर्चा चलाई तो उसीमें इस उपन्यास की भी बात निकल गई । उसी सिलसिले में मैं इसे दिखाने ले गया था ।’

‘तब ? क्या कहा उन्होंने ?’

‘कहा कुछ नहीं ! रात-भर में पढ़ गए और आज सुबह स्वयं आकर मुझे दे गए । मैं उनके चेहरे से कुछ भाँप नहीं सका । पूछना मुझे खराब लगा । इसलिए कह नहीं सकता कि उनकी क्या धारणा है इसके विषय में !’

ललित ने कहा—‘खैर, कोई चिन्ता नहीं ! आप आगे लिखाइए कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने लिखाना शुरू कर दिया ।

“रोता दूसरे दिन मेरे यहाँ आई तो मेज पर एक पत्रिका पड़ी थी । उसकी पोंठ पर नारी के विषय में तीन वाक्य लिखे थे—

१. किसीने कहा—‘माया’ !—तेरा नाम है नारी ।
२. फिर किसीने सुधारा—चपलता, अस्थिरता—नारी का पर्याय है ।
३. तभी किसीने टोका—नारी का ही दूसरा नाम सतीत्व है ।

“मैंने दूसरे वाक्य के नीचे नीली पेन्सिल से एक चिह्न लगा दिया था । अपने अवचेतन मन के उस रेखांकन का ज्ञान मुझे तब हुआ जब रोता ने उसे देखकर तीसरे वाक्य के नीचे लाल पेन्सिल से तीन लाइनें खींच दीं ।

“मैंने पूछा—‘सच ?’

“रीता बोली—‘हाँ ! आप के प्यार की तरह !’

“मैं चुप होकर रोता को तरफ देखने लगा । लगा कि कलेजा चीरकर छिपा लूँ उसे, हृदय की धड़कनों में । कितनी प्यारी, कितनी अच्छी है रोता ! मेरा रोता !!!

“रोता बहुत देर तक मेरे पास बंठी रही । उसने कुछ कहने की कई बार कोशिश की, मगर कुछ कह नहीं सकी । मैंने उसे सकपकाते हुए देखा तो पूछा—‘रोता ! तुम शायद कुछ कहना चाह रही हो ! बोलो ! निर्भीक होकर बोल दो !’

“रोता ने कहा—‘परीक्षा नजदीक है । माँ कहती थीं कि गज्जू-जी से दो घंटे अंग्रेजी और हिसाब पढ़ लिया कर । भैयाजी हिन्दी पढ़ा दें !’

“मैंने कहा—‘ठीक है ! तुम उनसे पढ़ो ! मैं तुम्हें पूरी आजादी देता हूँ; मगर.....!’

“रोता ने कहा—‘नहीं ! मैं नहीं पढ़ूंगी । मैं परीक्षा ही नहीं देना चाहती । मेरा मन पढ़ने में जरा भी नहीं लगता ।’

“जब मैंने रोता को तरह-तरह से समझाया और आश्वासन दिया तब वह गज्जूजी से पढ़ने को तैयार हो गई !

“तीसरे दिन से वह गज्जूजी की कोठरी में सुबह और रात में जाकर पढ़ने लगी ।

“कोकिलाजी के एक और किराएदार थे—मेरे एक मित्र के दूर के रिश्तेदार । रोता उनसे भी कुछ पढ़ती थी । उनके साथ एक पण्डितजी रहते थे । रोता उनसे भी पढ़ने लगी । परीक्षा की तैयारी इतने जोरों में शुरू हुई कि शिक्षकों का उत्साह भी पहले से ज्यादा बढ़ गया । सभी शिक्षक यही चाहते कि रोता उनसे ज्यादा पढ़े और अधिक देर तक पढ़े ।

“मगर मैं शिक्षक के रूप में यह सब कुछ नहीं चाहता था । सीमित समय में और नियमित रूप से उसे पढ़ाकर मैं सिर्फ अपने एक कर्तव्य का पालन कर देता था । क्योंकि, और शिक्षकों की

तरह पढ़ाई के समय हो, रीता की उपस्थिति मेरे लिए बरदान नहीं थी !

“यह सिलसिला दस-पन्द्रह दिन तक चला । इन दस-पन्द्रह दिनों में एकदिन गज्जूजी ने कोकिलाजी से कहा—‘माताजी ! यहाँ कई लोग कई दृष्टिकोण से आते हैं । सम्भव है, कुछ लोग मेरी शिकायत भी करें, मगर आप उसपर ध्यान मत दीजिएगा । मैं ऐसे लोगों को खूब समझता हूँ । उन्हें भी जानता हूँ ।’

“जब मैंने गज्जूजी की यह बात सुनी तो रीता की पढ़ाई की बीचवाली अवधि का कुछ आभास मिल गया कि गज्जूजी मुझे ईर्ष्या क्यों करने लगे हैं ! बुद्धि ने कहा—रीता ने उसे जरूर कुछ प्रश्रय दिया है । मगर बिना किसी सबूत के मैं उसे कुछ कह नहीं सका ।

“दूसरे दिन रीता को जाँचने के लिए मैंने उससे कहा—‘तुम गज्जूजी से पढ़ने मत जाया करो !’

“रीता बोली—‘माँ-बाबूजी क्या कहेंगे ? उनकी ऐसी ही आज्ञा है । उन्हें शक हो जायगा तो !’

“मैं दृढ़ता से कहा—‘रीता ! मैं कुछ नहीं सुनना चाहता ! अगर तुम मुझे कुछ समझती हो, तो १० रोज के लिए पढ़ना बन्द कर दो ।’

“ठीक है ! नहीं पढ़ूँगी !’ रीता बोली । मगर कुछ उदास हो गई !

“मुझे जहाँ तक मालूम है, रीता दो दिनों तक गज्जूजी से पढ़ने नहीं गई । बीमारी का बहाना बनाकर पड़ी रही । इन दो दिनों में, मेरे प्रति प्यार की पराकाष्ठा का प्रदर्शन किया उसने । माता, पिता, भाई, सभी कहते रहे, मगर वह नहीं गई । तीसरे दिन मेरी आज्ञा लेकर वह गई तो गज्जूजी को कुछ इतमीनान हुआ ।

“उसी रात की बात है । मैं करीब ७॥ बजे रीता के घर पहुँचा । रीता गज्जूजी के कमरे में बैठी पढ़ रही थी । उसके केश

खुले हुए थे । काजल भी लगा रखा था उसने । मेरी आहट पाकर वह अपने कमरे में आ गई । मैं वहीं बैठा था । सराज भी था । उसके वहाँ जाने पर गज्जूजी बहुत बिगड़े । वे यहाँ तक खफा हो गए कि धम्म-धम्म चप्पल पटकते हुए हमलोगों के कमरे में आ खड़े हुए । और दिनों की तरह मुझे प्रणाम भी तहीं किया । बोले—‘चलो पढ़ने ! मैं कह गई हूँ !’

“रीता चुपचाप किताब आलमारी में रखने लगी ।

“गज्जूजी गरजकर बोले—‘चलो ! देर मत करो ! वरना माताजी से कह दूँगा । वे लोग आएँगे तो मुझी पर बिगड़ेंगे ।’

“मैं शान्त होकर उनकी बेवैनी का लुत्फ लेने लगा । सरोज ने कहा—‘जा न !’

“वे बोले—‘चलती हो कि नहीं ?’

‘रीता ने बिगड़कर कहा—‘कोई जवर्दस्ती है ! मैं नहीं जाऊँगी !’

“गज्जूजी बाधिन द्वारा घायल किये गए गजराज की तरह सीधे अपनी कोठरी में चले गए । मैं मुस्कुरा पड़ा । रीता धीरे से बोली—‘ऐसा पढ़ाना तो कभी देखा ही नहीं था !’

“शर्माजी और कोकिलाजी आ गए । उन्होंने आने ही कहा—‘आज मन्दिर में एक देवीजी का भजन होगा । दिल्ली से आई हैं । बहुत ही सुन्दर गाती हैं । यहीं खाना खा लीजिए । आज चला जाय जरा सुनने !’

“रीता बोली—‘मैं भी चलूँगी ।’

“जब हमलोग खाना खाकर चलने को तैयार हुए, तब रीता नहीं गई ।”

ललित ने पूछा—‘कहीं गज्जू बाबू से मिलने के लिए तो नहीं रह गई ?’

कृष्ण बोला—‘कहा नहीं जा सकता ललित ! और अब शक-सन्देह को लेकर दिमागपच्ची के मानी भी क्या ? चलो, आगे लिखो !’

“रीता के वहाँ अचानक ठहर जाने से मेरे मन में सन्देह हुआ । रोता का स्वभाव मैं जानता था । वह किसी भी युवक से यूँ बातें करती जैसे कबके मित्र हों । और ऐसे अनेक लोगों से मिले-जुले, हँसे-बोले बिना जैसे वह जी नहीं सकती । उसके विषय में बुरी धारणा मेरी कभी नहीं रही, मगर यहाँतक मैं जरूर सोचता था, और मेरा यह सोचना उसकी वैसी हरकतों पर ही कायम था ।

“रास्ते में मैंने उसके माँ-बाप की प्रतिक्रिया जानने के लिए एक चाल चली । मैंने कहा—‘रीता को उस पण्डितजी के यहाँ अकेलो भेज देना ठीक नहीं है । वह भी कह रही थी कि माँ भेज देता है ! मैं क्या करूँ ?’

“कोकिलाजी की जैसे दुखती नस पकड़ ली गई हो । बोलों—‘मगर उसने तो हमलोगों को कभी नहीं कहा ।’

“मैं गुस्से में बोला—‘चंचल और जवान लड़की माँ-बाप से कभी नहीं कहेगी कि आप रात में, अकेली, किसी नवजवान के पास बंटे बँठे रहने की सुविधा मुझे मत दीजिए ! वह तो और चाहेंगे ! मगर आपलोगों का क्या कर्तव्य है ?’

“कोकिलाजी चुप हो गई । उन्हें मेरी बात बहुत बुरी लगी । शर्माजी कोकिलाजी की तरफ ताकने लगे कि वे कुछ कहें, मगर उनके कुछ भी नहीं कहने पर, ये भी कुछ भी नहीं कह सके ।

“हमलोग मन्दिर में गाना सुनकर वहाँ से अपने-अपने डेरे चले गए ।

• “दूसरे दिन सुबह कोकिलाजी, शर्माजी और रोता के सामने गज्जूजी आए । मैं बैठा चाय पी रहा था । आते ही वे बोले—‘क्या हो रहा है ?’

“कलाकारों की बातचीत !’ मैंने कहा ।

“मैं भी वही हूँ ! आप बातचीत जाी रख सकते हैं !’ वे बोले ।

“मुझे पहले तो उनकी सूरत पर ही हँसी आई ! इसलिए कि उनकी कृतियों को देखने या सुनने का अभी तक दुर्भाग्य प्राप्त नहीं हुआ था । फिर भी, मैंने जब्त करके पूछा—‘अच्छा ! आप भी हैं !’ उन्होंने ऐँड़ी-चोटी का जोर लगाकर एक शब्द निकाला—‘जीहाँ !’ और तमतमाते हु बाहर चले गए ।

“शर्माजी हँस पड़े । रीता भी मुस्कुराई । मगर कोकिलाजी मेरे इस व्यवहार से जल-भुनकर राख हो गई !”

ललित ने टोका—‘क्यों ?’

कृष्ण बोला—‘वह एक रहस्य है, ललित ! आगे वह अपने आप खुल जायगा । चुपचाप लिखते चलो !’

“रीता की परीक्षा समाप्त हो गई । थोड़े दिनों के बाद नतीजा भी निकला । वह अच्छे नम्बरों से पास हो गई ! कोकिलाजी ने सफलता की मिठाई खिलाते हुए कहा—‘गज्जू बाबू ने जो-जो सवाल बनाए थे, ठीक वही आ गए !’

“शर्माजी बोले—‘कृष्णजी के तो सौ-फी-सदी प्रश्न आ गए । चमत्कार हो गया ! रीता की किस्मत अच्छी थी !’

“रीता ने मेरी ओर मुस्कुराकर देखा और अन्दर चली गई । जब मैं वहाँ से अपने घर को चला तो रीता ने आकर कहा—‘दोपहर में आऊँगी ! वहीं रहिएगा !’

“दोपहर में करीब १ बजे रीता मेरे पास आई । बहुत देर तक उससे बहुत तरह की बातें हुई । रीता ने कहा—‘आपके यहाँ मेरा आना बन्द कर दिया गया है । सहेली से मिलने का बहाना करके आई हूँ । बन्धन में मन बहुत घबड़ाता है । रात-रातभर नींद नहीं आती । कदिन रात में १२ बजे उ कर आपके यहाँ आने लगी, मगर रास्ते से ही लौट गई; कुछ लोग सामने से जा रहे थे । किन्तु आखिर कबतक यह बन्धन सँझूँगी ! आप कोई उपाय ढूँढ़िए । मुझे रास्ता दिखाइए । चारों तरफ अँधेरा ही

अंधेरा नजर आता है । इनने सारे बन्धन लग गए हैं, मगर आपने कभी सोचा कि ये बन्धन लगाए हुए किसके हैं ?'

"मैंने कहा—'मेरे ! मगर मैं क्या करूँ रोता ! मैं तो स्वयं प्रतिष्ठा और समाज के कठघरे में पड़े हुए शेर की तरह सरकस का तमाशा बन रहा हूँ । मुझे क्या कहती हो तुम ? कहो, मैं क्या करूँ ?'

"रोता ने कहा—'कुछ नहीं ! मैं क्या कहूँ । मुझे तो यह डर है कि कहीं आप मुझे छोड़ तो नहीं देंगे ? भूल तो नहीं जायेंगे ?' आपसे मुझे बहुत डर लगता है !'

"मैंने कहा—'रोता ! मेरा प्रेम बहुत आगे बढ़ चुका है । गहरे डूब गया है । मैं इसी वजह से ईर्ष्या, क्रोधी और उग्र हो गया हूँ । मेरा यह स्वभाव नहीं है रोता ! ईर्ष्या और क्रोध तो मुझमें कभी नहीं थे । हाँ, स्वभाव से उग्र जरूर हूँ ।'

"रोता मेरी गोद में सिर रखकर लेट गई और बोली—'सुनिए ! महलवाला वह गीत सुनिगा ?'

"मैंने पुलकित होकर कहा—'जरूर, मेरी रोता ! जरूर सुनूँगा !'

"रोता गाने लगी—'आएगा ! आएगा !! आएगा आनेवाला !!!'

"मैं सुध-बुध खोकर सुनता रहा । जब रोता गीत समाप्त करके उठी तब मैं दीवाल के सहारे उठैंगकर खिड़की से आकाश की ओर देख रहा था । रोता ने पूछा—'ऊपर क्या देख रहे हैं ?'

"आकाश !'—मैं बोला ।

"रोता ने कहा—'उसे ऐसे देखिएगा तो मुझे भूल जाइगा । जरा मेरी ओर भी देख लीजिए !'

"ऐसा कहकर उसने मेरी ठुड़ी अपनी आँखों की ओर घुमा ली । मैं नीले आकाश से काले आसमानों में उतर आया । खोया रहा उन्हीं में, न जाने कबतक !!

“रोता चली गई । मगर मेरी आँखें अभी उसीको आँखों में थीं । मैं बहुत देर तक वहीं बैठा रहा और फिर कहीं चला गया ! मुझे उसके बाद की कोई भी बात आज याद नहीं ।”

ललित ने कहा—‘तो कृष्ण भाई ! आज यहीं तक रहने दोजिए ! आज बड़े वच्चे का ‘एक्सरे’ कराना है । डाक्टर ने ठीक दस बजे बुलाया है ।’

कृष्ण बोला—‘ठीक है ! जाओ !’



सबसे बड़ा पाप !

ललित झुककर बैठ गया था । कृष्ण ने उपन्यास लिखाने के लिए अपना चेहरा ललित के आगे कर दिया । दोनों की नाक टकराते-टकराते रह गई । ललित हँसने लगा । कृष्ण ने कहा—‘हम-तुम आज नाक की लड़ाई लड़ जाते ललित ! बचा लिया न मैंने ?’

ललित हँस पड़ा । कृष्ण ने कहा—‘जब काशी और कुमार शर्माजी के यहाँ जाते थे तब ठीक ऐसा ही तमाशा करते थे । काशी, पैर फँलाकर नाक के नथुने फुला लेता और गर्दन आगे की ओर झुकाकर बैठ जाता । कुमार जीभ निकालकर नाक को भाले की तरह आगे बढ़ाकर काशी की नाक से अपनी नाक टकरा देता । कुमार कहता—‘हाउ डू यू डू ! (आप कैसे हैं ?)’

काशी नाक से बोलता—‘ओर्डर इज ओर्डर ! (हुक्म हुक्म है !) सब लोग ठहाका मारकर हँस पड़ते । मेरी पत्नी, शारदा ने भी यह तमाशा देखा था ।

ललित भी उस दृश्य की कल्पना करके ठहाका लगा गया । कृष्ण भी जोर से हँस पड़ा । उसने कहा—‘इन नाकों की कई कहानियाँ हैं ललित !’

‘एक दिन रीता मेरे पास आई तो मैंने उसकी नाक अपनी नाक से पिचका दी और कहा—‘कोई बहाना करके आज्ञा रे ‘सिंगर’ छोकरिया !’

‘रीता ने मेरी नाक जोर से दबाकर कहा—‘कभी न आज्ञा पास में तेरे, रे ‘पोयट’ छोकरवा !’

‘सिंगर (गायिका) और पोयट (कवि) की नाकें इसी तरह कई बार लड़ जातीं और कहकहे लग जाते । एक बार काशी, कुमार और दूसरे तीन-चार मित्रों के साथ जब मैं कलकत्ता गया था तब वहाँ भी काशी और कुमार, नाकवाला वह तमाशा दिखाने से बाज न आए । मुझे वहाँ भी ‘सिंगर’ और ‘पोयट’ की याद सताती रही थी ।

‘ललित ! आज तुम्हारी नाक से टकराते-टकराते, वे सारे दृश्य एकबार फिर आँखों के सामने नाच गए ! उफ् ! याद भी कितनी घातक हुआ करती है ललित ! लेकिन, यह सब बुरी बातें हैं । मैं एक नम्बर का नालायक हूँ । तुम उपन्यास शुरू कर दो ।

‘आज मैं तुम्हें रीता-काण्ड की सबसे बड़ी और सबसे अधिक पापपूर्ण घटना का हाल लिखाऊँगा ! उस घटना से रीता तबाह हो गई; मैं मरते-मरते बचा और बीसों आदमी महीनों तक, बर्बाद होते रहे । क्या-क्या नहीं हुआ ! खैर, चलो ! लिखो !’

ललित पहले तो बड़े आश्चर्य से कृष्ण को देखता रहा । फिर कलम कागज पर रखकर बोला—‘लिखाइए !’

‘एकदिन शाम को मैं निश्चित समय से बहुत पहले रीता से भेंट करने चला । मैंने जैसे ही बरामदे में पैर रखा कि देखा—रीता गज्जूजी के सामने कुर्सी पर बैठी हुई है । वे खाट पर बैठे हैं । गप्पें चल रही हैं । मैं चुपचाप पाँव दबाकर लौट आया । करीब एक घंटा तक पास के बगीचे में घूमता रहा । उधर से मनोज को आते देखा तो उसके साथ फिर रीता की तरफ चला ।

रीता अभीतक उसी ढंग से बैठी थी । हाथ में उसने स्वेटर ले रखा था । इस बार पास में सरोज भी बैठा था । मनोज को घर में घुसते देखकर भी रीता गज्जूजी के कमरे से नहीं निकली । मैं बाहर ही खड़ा था । दो-तीन मिनिट तक उनकी बातें सुनता रहा । फिर बिजली की तरह अपने घर की ओर भागा ।

“मैं अभी बाहर ही खड़ा हूँ, यह समझकर अन्दर से मनोज ने पुकारा—‘आइए भैयाजी !’

“भैयाजी का नाम सुनकर रीता को काठ मार गया । वह घबड़ाकर उठ गई । बाहर आकर देखा—मैं नहीं था । उसने मनोज से पूछा—‘आए थे क्या ?’

“मनोज बोला—‘हाँ ! अभी तो बाहर खड़े थे ! न जाने कहाँ चले गए !’

“रीता मेरे आने और जाने का रहस्य समझ गई । उस वक्त शर्माजी अपनी डिस्पेन्सरी में थे और कोकिलाजी कला-प्रसार-केन्द्र में चली गई थीं । रीता मनोज से कुछ बहाना करके सीधे मेरे पास आई । मैं डेरे पर आकर अपनी कोठरी में इधर से उधर चहल-कदमी कर रहा था । लगता था कि अभी धरती फट जाय तो उसमें कूदकर पाताल तक चला जाऊँ ! जबतक जिन्दा रहूँगा, यही सब देखना पड़ेगा !

“रीता ने बाहर से पुकारा—‘सुक्खू ! दरवाजा खोलो !’

“मैंने स्वयं जाकर दरवाजा खोला और रीता को बड़े आदर और प्यार से अन्दर ले आया । मैंने मुस्कुराते हुए कहा—‘कहो, कैसे-कैसे आना हुआ ?’

“रीता मुझे प्रसन्न देखकर परेशान हो गई । उसने मेरे प्रश्न का जवाब न देकर पूछा—‘आप अभी मेरे घर गए थे ?’

“हाँ !’

“तो चले क्यों आए ?’

“यूँही !”

“यूँही ?”

“हाँ !” कहकर मैं गम्भीर हो गया ।

“रीता थोड़ी देर तक चुप रही और उसके बाद तकिए में एकाएक मुँह छिपाकर रोने लगी । मैंने उसका सिर उठाकर देखा तो आँसुओं से पूरा तकिया गीला हो गया था । मैंने उसे उठाकर बिठाना चाहा मगर वह नहीं उठी; रोती रही, रोती रही !

“मैंने कहा—‘रीता ! रोती क्यों हो ? क्या हुआ है ? मुझे कुछ अपराध हो गया है ?’

“रीता नहीं बोली । रोती रही । मैंने उसे बड़ी तसल्ली दी । समझाया । प्यार किया । तब जाकर वह चुप हुई । मैंने पूछा—‘तुम ऐसा क्या कर रही हो रोता ? क्या हुआ है ?’

“रीता फिर फूट पड़ी । वह पलंग से नीचे उतरकर मेरे पैरों में बैठ गई और रोते हुए बोली—‘मुझे क्षमा कर दीजिए ! मैं कुछ नहीं कर रही थी । उन्होंने बुलाया था । अपने परिवार की बातें सुना रहे थे । मेरा उसमें कोई कसूर नहीं है । आप मुझे पापिन समझते हैं ! अष्ट समझते हैं ! आप मुझे मार डालिए ! मुझे जहर दे दीजिए ! मैं जीना नहीं चाहती ।’

“रोता और जोर-जोर से रोने लगी । मैंने कहा—‘रीता ! अब मैं तुम्हें कुछ भी नहीं कहूँगा । तुम मेरी आत्मा बन गई हो ! तुम्हारा अपराध मेरा अपराध है । तुमसे अब मैं कभी, कुछ भी नहीं पूछूँगा । अब अपने आपको ही तुम्हारे अनुकूल ढालूँगा । अपनी सम्पूर्ण धारणाएँ, तुम्हारी प्रकृति में मिलाकर मैं अपना अस्तित्व नष्ट कर दूँगा ! तुम जैसी भी हो, मेरी हो । बस ! मैं कुछ और नहीं जानता, न जानना चाहता हूँ ।’

“रीता का रोना, इस आश्वासन और आत्म-विलयन के बाद भी बन्द नहीं हुआ । मैंने उसे उठाकर अपने पास बिठा लिया ।

उसे बहुत समझाया । पुचकारा । आँसू पो लिये । वह चुप होकर भी उद्विग्न हो बनी रहो । मेरे परहेज और सहिष्णुता ने उसके मर्म पर चाट को थी । वह मेरे इस रुख से तिलमिला गई थी ।

“कुछ देर बाद रोता चली गई तब मैं बाहर निकल पड़ा । रात में शर्माजी के यहाँ नहीं गया । दूसरे दिन सुबह सराज मुझे बुलाने आया । मेरा इच्छा उस वक्त भी जाने को नहीं थी । सराज ने कहा—‘कुमार दादा को भी बाबूजी ने बुलाया है । कलकत्तावाले फूफाजों के लड़के आए हैं । उनके साथ एक जगह क लड़का देखने जाना है ।’

“सराज कुमार को बुलाकर दुबारा मेरे घर पहुँचा । सराज, मैं और कुमार शर्माजी के घर पहुँचे । वहाँ थोड़ी देर बै कर हमलोग लड़का देखने चले गए । बैरिस्टर साहब को लड़की के लिए एक लड़के का पता चला था ।

“हमलोगों के पीछे, घर पर गज्जूजी, रोता, कोकिलाजी और मनोज रह गए । सराज कहीं खेलने चला गया था । लड़का देखकर मैं और कुमार बाजार की तरफ चल पड़े । शर्माजी अपने भातजे के साथ घर लौट गए । बाजार में मोहन से भेंट हो गई । मोहन का रिश्तेदार भी कोकिलाजी का एक किराएदार था । वह भी रोता को पढ़ा रहा था । रोता उसे चाचा कहा करती थी । उसीके साथ वह पण्डितजी भी रहते थे ।

“माहन ने पूछा—‘इस वक्त इधर कैसे ?’

“मैंने कहा—‘शर्माजी, कोकिलाजी की भानजी के लिए लड़का देखने गए थे ! वे लोग भी अभी-अभी घर गए हैं ।’

“माहन ने कहा—‘कृष्ण ! तुम पहले दर्जे के गदहे हो । उन-लोगों का तुमने इतना न आगे बढ़ा दिया है कि एकदिन खुद तुम्हीं खतरे में पड़ जाओ !’

“मैंने घबड़ाकर पूछा—‘क्या बात है ?’

“मोहन बोला—‘मेरा रिश्तेदार गणेश उन्हीं लोगों के साथ रहता है । कल वह कह रहा था कि उसे गज्जूजी ने बुलाकर कहा—‘देखिए ! कृष्णजी यहाँ आकर रीता के साथ घंटों बैठे रहते हैं, यह कितनी बुरी बात है ! आप शर्माजी के मित्र हैं । उनसे कहिए, वरना किसी दिन कोई कुकाण्ड हो जायगा । कृष्णजी की नीयत खराब है । वे शर्मा-परिवार को इतनी मदद, इतना सहयोग, इतना समय क्यों देते हैं ? वे रीता को भ्रष्ट करना चाहते हैं ।’ जिसवक्त गज्जूजी उससे ये बातें कह रहे थे, उस वक्त पण्डितजी भी उसके पास थे । पहले दोदिनों तक गणेश टालता रहा और गज्जू उसे तंग करता रहा, मगर आज उसने कोकिलाजी से किसी तरह कह दिया ।

“मैंने पूछा—‘तब कोकिलाजी क्या बोलीं ?’

“मोहन ने कहा—‘कहता था कि कुछ खास नहीं ! वही दाब दूब वाली बातें; कुछ गणेश को समझाया, कुछ रीता को डाँटा और फिर पूर्ववत् ! मैं कहता हूँ कृष्ण ! तुम वहाँ जाना बन्द कर दो !’

“मैं मोहन के मुँह से गणेश की बातें सुनकर थर्रा उठा । उस वक्त इतना क्रोध हुआ कि इच्छा हुई—जाकर अभी गज्जू की खोंपड़ी नारियल की तरह पटककर, पचास टुकड़े कर दूँ । मोहन से मैंने कहा—‘मैं वहाँ जाना कल से ही बन्द कर दूँगा मोहन ! तुम्हारी राय सही है—मगर एक काण्ड के बाद !’

“क्या ?’ मोहन ने घबड़ाकर पूछा ।

“मैंने कहा—‘वह करने के बाद ही बताऊँगा । कल-परसों सुन लोगे ।’

“इतना कहकर मैं अपने घर चला गया । कुमार कोकिलाजी से अपना उधार पैसा माँगने के लिए, उनके यहाँ जाने लगा तो मैंने कहा—‘लेकर आना ! छोड़ना मत !!’

“मैं घर पर आया । खाना खाकर छत पर टहल रहा था कि नीचे से कुमार ने पुकारा—‘कृष्ण ! कृष्ण ! नीचे आओ ! एक बहुत खबर है !’

“मैं दो दो सीढ़ियाँ दनादन उतरता हुआ नीचे पहुँचा । एक जगह तो पैर फिसल भी गया । बैठक में आते ही कुमार ने कहा—‘शर्माजी का जो नया किराएदार है, वह तो बहुत बदमाश आदमी मालूम होता है । मैं जैसे ही सीढ़ी पर चढ़ा तो तुम्हारा नाम सुनकर खड़ा हो गया । पर्दा गिरा हुआ था । शर्माजी के घर का दरवाजा भी लगा था । मैं सटकर सुनने लगा । वह कोकिलाजी से कह रहा था—‘कृष्णजी रीता को भ्रष्ट करना चाहते हैं’ । मुझे एक ऐसे आदमी से इसके विषय में पता चला है कि आप उसे झूठ कह नहीं सकतीं ।’

“कोकिलाजी ने पूछा—‘किससे ?’

“उसने कहा—‘मीता के नानाजी से ! वे मेरे परिचित हैं । उनसे बनारस में भेंट हुई थी । वे ही बहुत-बहुत बातें कहते थे । आप कृष्णजी को अपने घर आने से रोक दें । नहीं तो एक दिन पछताना पड़ेगा । और मैं.....।’

“मैं इतना ही सुन सका क्योंकि शायद कोकिलाजी को मालूम हो गया कि कोई बाहर खड़ा है । मगर उनके बाहर निकलते-निकलते मैं गली में घुसकर इधर से निकल आया ।’

“कुमार की बातें सुनकर मैं गुस्से ● बेहोश हो गया । मैंने कहा—‘कुमार ! मैं अभी जाता हूँ और उसे मार-मारकर खत्म कर देता हूँ ।’ मैं ऐसा कहकर बाहर निकला, मगर कुमार ने मुझे पकड़ लिया । उसने कहा—‘कृष्ण ! शान्त रहो ! जो कुछ करना हो, कल करना ; आज उनके यहाँ, बाहर का एक रिश्तेदार आया हुआ है ।’

“मैं कुछ नहीं बोला । कुमार के साथ जोशीहोटल गया और वहाँ के मैनेजर नगेन्द्र बाबू से कहा—‘नगेन्द्रजी ! आज भांग पिलाइए ! इतनी पिलाइए कि बेहोश हो जाऊँ ।’

“नगेन्द्र मुझे अचरज से देखने लगे । भांग आई । बनी । मैं दो गिलास पीकर बुत हो गया । कुमार मुझे रिक्शे पर लादकर घर

छोड़ गया । मैं कहाँ और कैसे सो गया, इसका ज्ञान मुझे दूसरे दिन सात बजे सुबह हुआ ।

“मैं नहा-धोकर, खाना खाकर शर्माजी के यहाँ चला । मैंने पहले ही निश्चित कर लिया था कि आज गज्जूजी को बुरी तरह डाँटूंगा और बेइज्जत करूँगा । तबतक रास्ते में एक वकील साहब के गुंडे और सनकी लड़के से भेंट हो गई । वह रीता को कई बार छेड़ चुका था और मेरी झिड़कियाँ भी खा चुका था । जिस वक्त मैं उसके घर के सामने आया तो वह एक सिनेमा का गीत गाने लगा और मेरी ओर देखकर हँसने लगा । मेरे सिर पर खून तो सवार था ही । मैं वहीं रुक गया और बोला—‘आपको कई बार मैं समझा चुका हूँ । अगर आप अपने आपको गुंडा समझते हों तो मेरे पास उसकी भी अक्सीर दवा है । आप एक अच्छे आदमी के कपूत हैं, इसीसे मैं चुपा जाता हूँ । वरना.....!’

“वह चुप हो गया । उसके साथ एक और लड़का था । उसने उसे डाँटा भी । मैं उसी गुस्से में शर्माजी के घर पहुँचा । बरामदे में पैर रखते ही गज्जूजी की शक्ल दिखाई पड़ गई । मैं किसी अज्ञात शक्ति से उत्प्रेरित होकर उनकी कोठरी में प्रवेश कर गया । वे बैठे हुए उदास किसी मसले को सुलझा रहे थे । मैंने अन्दर घुसते ही पूछा—‘कहिए ! क्या हाल-चाल है ?’

“सब ठीक है !’

“आपको मुझसे कुछ शिकायत है ?’

“नहीं तो !’

“आपने कहीं मेरी कोई शिकायत की है ?’

“जी नहीं !’

“मैंने कहा—‘गज्जू बाबू ! मैं तो आया था किसी बहादुर और हिम्मतवाले मर्द से बातें करने । लेकिन आप तो जनकों की तरह साफ कन्नी काट गए ! मैं कायरों पर हाथ नहीं उठाता !’

“कायर और जनखा विशेषण सुनकर वे मर्द बनने को तैयार हो गए। उठकर खड़े हुए और बोले—‘आप क्यों चले आए मेरी कोठरी में ! अभी यहाँ से बाहर जाइए ! जाइए यहाँ से अभी !’

“मैंने वस, लपककर उनकी गर्दन पकड़ ली और गाल पर वह चाँटा मारा कि वे दीवाल के सहारे जा गिरे। दीवाल से लगते ही वे ‘बाप रे बाप ! मारे गए !’ कह कर चिल्लाए।

“अन्दर से तुरत कोकिलाजी, शर्माजी, कला-प्रसार-केन्द्र के नायकजी, मनोज, सरोज, रीता, सभी बाहर आ गए। शर्माजी और नायकजी ने मुझे पकड़कर पीछे हटाया। मैंने कहा—‘शर्माजी ! मुझे छोड़ दीजिए ! मैं इसे अभी खत्म कर दूँगा। बदमाश ! पाजी कहीं का ! क्या कहा था तूने ? अब बोल, हरामजादे !’

“उसने अपने गाल पर हाथ रखकर कहा—‘मैंने ठीक कहा था। मगर यह इस घर की इज्जत की बात है। मैं अभी कुछ नहीं कहूँगा। मेरे पास सबूत हैं।’

“मैं शर्माजी से फिर हाथ छोड़ाकर उस पर टूटा कि नायकजी ने रोक लिया। कोकिलाजी थर-थर काँप रही थीं। मनोज, सरोज, रीता, सभी घबड़ा गए थे।

“मैंने कहा—‘कमीने ! बाहर आ ! आकर साबित कर कि मैं क्या हूँ। तूने क्या देखा है ! वरना तुझे आज मौत के घाट उतार कर ही जाऊँगा। निकल बाहर !’

“शर्माजी मुझे पकड़कर अन्दर ले गए। कोकिलाजी ने हिमालय की ऋषि-पत्नी की तरह निर्लिप्त बनकर पूछा—‘क्या बात है ?’

“मैंने गुस्से में कहा—‘कुछ नहीं !’

“मुझे अन्दर बिठाकर शर्माजी बाहर गए तो वह बोला—‘देखिए बाबूजी ! इन्होंने मुझे मारा है। आप गवाह रहिएगा। मैं अभी एस्० पी० के यहाँ जाता हूँ।’

“एस्० पी० का नाम सुनते ही मैं फिर बाहर निकला । मैं उसे पकड़कर दुबारा मारना चाहता था कि शर्माजी ने पकड़ लिया । रीता ने आकर कहा—‘चलिए ! अन्दर चलिए !’

“मैं चुपचाप अन्दर चला गया और वहीं से बोला—‘तू एम्० पी० के यहाँ जाएगा ! अरे, तुझे तो आज ही मैं खत्म कर देता हूँ ! बचेगा तब न वहाँ जाएगा ! और बुला अपने बाप एम्० पी० को भी । उसे भी मार डालूंगा आज ! और ठहर ! फिर तुझे पुलिस का मजा चखाता हूँ !’

“इतना कहकर मैं शर्माजी के घर से फिर बाहर निकला । उसे बहुत गालियाँ दीं और कहा—‘अगर तू शाम तक यह घर नहीं छोड़ देता तो रात में तुझे कत्ल कर दूंगा, कत्ल !’

“शर्माजी के घर से मैं सीधे ‘आकाश’ के दफ्तर में गया । विचार में आया कि वहाँ के चार-पाँच सिपाहियों को लेकर शर्माजी के घर जाऊँ और गज्जू को मार-मारकर उसका भुत्ता बना दूँ । मगर शर्माजी के परिवार और रीता की प्रतिष्ठा की बात सोचकर वहाँ से सीधे जोशीहोटल चला गया । शर्बत बनवाकर पिया । आध घंटे में पचीस बार इधर से उधर उठकर आया-गया । लगता था कि उसे क्या कर दूँ ! कैसे उसे खत्म कर दूँ ! मैं दो घंटे तक बहुत बड़ी बेचैनी में रहा । नगेन्द्र ने पूछा—‘क्या बात है कृष्णजी ? आज बहुत अजीब-से हो रहे हैं आप ?’

“मैंने कहा—‘प्रेस में एक चपरासी को पीट कर आया हूँ; उसी से दिमाग खराब हो रहा है !’

“क्या बात थी ?’

“चोरी की थी उसने !’

“मैं वहाँ से तुरत उठा और रिक्शे पर बैठकर मंदान की ओर चला गया ।”

ललित ने पूछा—‘तो इसे आप रीता काण्ड का सबसे बड़ा पाप क्यों कहते हैं कृष्ण भाई ?’

कृष्ण ने कहा—‘यह रहस्य तुम्हें कलवाले अध्याय में मालूम होगा ।’

ललित बोला—‘मालूम होने से क्या होता है ? आपने ऐसे झूठे, बदमाश और शरारती आदमी को पीटा, तो इसमें पाप कैसे हो गया, मैं यही जानना चाहता हूँ !’

कृष्ण ने गर्म साँस छोड़ी और कहा—‘यही न रहस्य है ललित ! वैसे आदमी को मारकर भी मैंने पाप किया, रहस्य इसीमें है ! पाप ही नहीं, अक्षम्य अपराध और घोरतम कुकृत्य किया मैंने । मैं उसका प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ ललित ! और शीघ्र ही करूँगा । इसके बिना मेरी आत्मा को चैन नहीं मिलेगा ; और, रीता के साथ भी बहुत बड़ा अन्याय होगा !’

ललित परेशान होकर बोला—‘बस कीजिए कृष्ण भाई ! उसके विषय में ज्यादा कहकर मेरी दुर्गति मत कीजिए ! मुझे उस दिन की बात अभी भूली नहीं । रात भर नींद नहीं आई थी ।’

कृष्ण ललित की बात पर हँस पड़ा और बोला—‘हाँ, ठीक ही कहते हो तुम ! मगर कल, ६॥ बजे ही आ जाना । आधा घंटा पहले ही तुम्हें रहस्य का पता चल जायगा !’

ललित ने मुस्कुराकर हाथ जोड़ दिए और कहा—‘बहुत-बहुत धन्यवाद !!’



२६

हैरानगी भी हैरान !

आज ललित ६॥ बजे ही फुलवारी में पहुँच गया था । कृष्ण भी उसके आने के बाद ही पहुँचा । ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! आज आपके लिए घर से गर्मिर्म पकौड़ियाँ बनवा लाया हूँ ! आपने उस दिन उपन्यास में लिखाया था कि आप पकौड़ियों के बहुत शौकीन हैं !’

ललित ने थैले से अलमुनियम का एक छोटा-सा डब्बा निकाला और कृष्ण की ओर बढ़ा दिया । कृष्ण ने पकौड़ियाँ खा लीं तो कहा—‘सचमुच ललित ! मैं बहुत बड़ा प्रेमी हूँ पकौड़ियों का । बनी भी अच्छी हैं । एक बात और । तुम्हारा यह घूस बहुत शीघ्र, पापवाले रहस्य का भेद भी खुलवा देगा । मैं तुम्हारी चालाकी का लोहा मानता हूँ ।’

ललित हँसने लगा । कृष्ण ने कहा—‘लिखो, लिखो !’

“गज्जूबाबू को पीटने के दूसरे दिन सुबह, मैं देवजी के घर गया । उन्हें साथ लेकर जोशी होटल में आया । मैंने उनसे सारी बातें कह दीं । देवजी भी उस स्थान के नियमित निरीक्षकों में प्रमुख स्थान रखते थे । मैंने कहा—‘देवजी ! मुझे दुख है कि वह आपका भाई है । मैं तो जान से मार देता ! उसने न कुछ देखा, न समझा,

और मेरे विषय में इतनी सारी बातें उनसे कह दीं । आखिर वह होता कौन है, इस तथ्य से मेरे या उनके विषय में बोलनेवाला ?’

“देवजी बोले— आपने जो कुछ किया है, ठीक किया है । उसे यही सजा मिलनी चाहिए थी । मैं तुरत जाकर उससे कहता हूँ कि वह शर्माजी का डेरा अभी छोड़ दे ।’

“देवजी उससे मिले । डाँटा । समझाया । गज्जूजी के पिता भी दूसरे दिन ही, संयोग से आ गए । उन्होंने भी तुरत मकान छोड़ देने की राय दी । मगर इतनी पिटाई और बेइज्जती के बावजूद भी वह घर छोड़ने को तैयार नहीं थे । सच्चे प्रेमी थे बेचारे ! सूरत भी उनकी ऐसी थी कि जो लड़की उन्हें देखती, देखती रह जाती ! हँसाने और रुलाने का एकसाथ काम, सिर्फ उन्हीं की सूरत को करते हुए मैंने देखा । खैर, वह तो भगवान की दी हुई चीज है, उसमें उनका क्या चारा ! मगर वे अपने गुण से भी शहर के छूटे हुए मशहूर रईसों में स्थान पा गए थे । चढ़ती जवानी में ही कुसुमा के सर्वश्रेष्ठ रईस सिद्धू बाबू की सारी सिफतें उनमें अनायास चली आई थीं ।

“हाँ, तो मैं देवजी से मिलकर सीधे अपने घर आया । नौकर को कहा कि जाकर शर्माजी को बुला लाओ । नौकर लौट कर आया और बोला—‘थोड़ी देर में आ रहे हैं ! शायद वे लोग कहीं जा रहे हैं; सामान वगैरह बँध रहा है ।’

“मैं बहुत चिन्ता में पड़ा । क्या सभी लोग जा रहे हैं ! रीता भी उन्हीं के साथ चली जायगी क्या ? मेरा कलेजा धड़कने लगा । मैं सोचने लगा कि मैंने यह क्या किया ! मैं कितना बड़ा पशु और जंगली हूँ । ओह ! अब क्या होगा ?

“तबतक शर्माजी आ गए । उनके चेहरे पर मेरे खिलाफ कोई बुरी प्रतिक्रिया नहीं थी । उन्होंने कहा—‘आपने जो कुछ किया है, ठीक किया है । मैं तो और करता; मगर रीता की शादी नहीं हुई है, यही सोचकर चुप रह जाता हूँ । अगर रीता विवाहित होती तो

आज उनकी लाश ही मेरे यहाँ से जाती। किन्तु एक बात बहुत बुरी हुई है। आप जब बोल रहे थे, उस वक्त महल्ले के कई लोगों ने सुन लिया। सभीलोग तरह-तरह की बातें करते हैं। आपके जाने के बाद मनोज कुँ पर गया तो सामने का एक लड़का पूछ रहा था—‘क्या बात है? बेचारे को मार पड़ गई!’ मनोज कुछ नहीं बोला; चला आया। रीता जब स्कूल जा रही थी तो एक लड़के ने कहा—‘बेचारे को प्रेमी से पिटवा दिया!’ रीता तनकर खड़ी हो गई। मुझे घुलाया। मुझे देखते ही वह विद्यार्थी दुम दबाकर भागा। अभी कुछ दिनों तक मुहल्ले भर में अशान्ति रहेगी। मैं चाहता हूँ कि थोड़े दिनों के लिए ससुराल हो आऊँ। सबको ले जा रहा हूँ।’

“हाँ! आपसे कोई पूछे कि क्या बात थी तो कह दीजिएगा कि उससे मेरी व्यक्तिगत लड़ाई थी। कोई बहाना बना दीजिएगा। हमलोग कल दोपहर की लारी से जा रहे हैं।’

“शर्माजी के जाने के बाद मुझे अपने पर कुछ विश्वास हुआ और अपनी घृणास्पद पशुता पर थोड़ा-सा गर्व भी। शर्माजी के जाने के करीब दो घंटे बाद सरोज रीता का एक पत्र लेकर आया। उसमें लिखा था—

[‘.....!]

.....!

आपको न जाने क्या सूझी कि वैसा काण्ड कर बैठे। मैं कायर नहीं हूँ। वह तो घर से जा ही रहा था। मैं कल घर जा रही हूँ। बहुत-सी बातें हुई हैं। मैं मीता से कहे देती हूँ। ‘पूछ लेंगे। आपने ठीक किया। मैं इसे पसन्द करती हूँ। आपमें कायरता कभी नहीं आनी चाहिए! बस!

आप की ही सदैव—रीता!]

“रीता के इस पत्र से मालूम हुआ कि मीता भी आ गई है। मैंने सरोज से पूछा—‘मीता कब आई है?’

“कल आई है। रात की गाड़ी से।”

“तुमलोग कब जा रहे हो?”

“कल दोपहर में।”

“सरोज चला गया। सरोज के जाने के बाद मीता आई। मीता ने आकर बताया कि कोकिलाजी बहुत बिगड़ी हुई हैं। और सभी तो प्रसन्न हैं, मगर उनका पारा बेतरह चढ़ा हुआ है। बुरी एक ही बात हुई कि मुहल्ले में कई तरह की अफवाहें फैल गई थीं; कुछ-कुछ अब भी हैं। दो-चार दिनों में वे भी बिलकुल शान्त हो जाएंगी।

“मीता ने कहा—‘मैं कल ही रात की गाड़ी से आई। सुबह सरोज ने जाकर कहा—‘चलो, दीदी ने बुलाया है।’ आपने उस दुष्ट को पीटकर एकदम ठीक काम किया है। अगर मैं रीता की जगह होती तो उस बात पर मैं खुद आपके पहले, सौ चप्पलें खींच देती! वह आखिर होता कौन है शिकायत करनेवाला?’

“मीता थोड़ी देर बैठकर घर चली गई। मैं वहीं बैठा रहा। रीता कल घर जा रही है। मुहल्ले में बदनामी हो गई है। पूरा परिवार घर छोड़कर जा रहा है। न जाने, कब लौटे। संभव है, लौटे ही नहीं। परिवार की प्रतिष्ठा की बात है; रीता के जीवन का प्रश्न है! संभव है, वे लौटें, मगर रीता को वहीं छोड़ दें। फिर मेरा क्या होगा? मैं तो बर्बाद हो जाऊँगा। उफ्! यह क्या हो गया! मैंने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी क्यों मार ली? मैं रीता के जाने की बात सोचकर थर्रा गया। लगा कि अभी दम घुट जायगा। वहाँ से जाँशीहोटल गया। होटल से बाजार की तरफ गया। चारों तरफ घूमता रहा। कहीं मन नहीं लगा। रास्ते में कई मित्रों से भेंट हुई। सभी मुझे देखकर आश्चर्य करने लगे—क्या हो गया है तुमको? सोए थे क्या? रात-भर जगे हो क्या? तबीयत ठीक है तो? और सबों का एक उत्तर! मुस्कुराकर टाल जाना। ‘एक जरूरी काम’ का बहाना बनाकर मैं आगे बढ़ जाता। किसी-

कसीसे तां कतराकर निकल जाता ! सारे बदन में आग लग गई थी !

“रात में १० बजे घर लौटा। खाकर बिछावन पर आया तो लगा, मौत के जबड़े में बैठ गया हूँ। वहाँ से उठकर तुरत कुमार के घर गया। कुमार को जगाया और उसे साथ में लेकर मैदान के चारों तरफ चक्कर लगाने चल पड़ा। बारह बजे लौटकर लेट गया। बड़ी देर के बाद नींद आई।

“दूसरे दिन सुबह इच्छा हुई कि रीता से मिलने जाऊँ। मगर मुहल्ले भर में बदनामी और चीमीगाइयों से जाने का मन नहीं हुआ—‘रीता आज ही जा रही है। न जाने लौटे, न लौटे ! क्या जाने के पहले भेंट नहीं हो सकेगी ? मैं कैसे रहूँगा ? कहाँ जाऊँगा ? क्या करूँगा ? उफ् ! उफ् ! यह नहीं होगा। यह नहीं होने दूँगा ! मगर ! मगर !!!!!’

“मैं मन मसोसकर रह गया। रीता दोपहर की लारी से ननिहाल चली गई ! कुसुमा जैसे मुझे काटने को दौड़ रहा था। कुमार, गोपाल, जो कोई मुझे देखता, घबड़ा जाता। मैं तीसरे दिन ही कुसुमा से अपने घर भाग गया; भाग गया !

“पाँच-छह दिन वहाँ रहकर मैंने देखा कि मन वहाँ भी नहीं लग रहा है। पत्नी और बच्चों को साथ लेकर कुसुमा लौट आया। बच्चों में घिरे रहने से कुछ तबीयत बहली। पत्नी की उपस्थिति से भी काफी आश्वासन मिला। मेरी पत्नी—शारदा ने आते ही मीता को बुलवाया। शारदा को मैंने सभी घटनाएँ बचा-बचाकर सुना दी थीं। मीता से भी शारदा ने कुछ बातें सुनीं। पूछा—‘वे लोग कब लौटेंगे ?’

“मीता बोली—‘रीता तो कह रही थी, आठ-दस दिनों के बाद ही। देखें, कब आते हैं। कोई ठीक नहीं है !’

“मीता शारदा से मिलकर घर चलने लगी तो मैंने पूछा—‘कोई पत्र आया है ?’

“मीता बोली—‘नहीं !’

“मीता चली गई । मैं बेचैनी से छत पर चला गया । वहाँ पागल की तरह इधर से उधर सँकड़ों बार चक्कर काट गया । भोजन करने के समय जब नीचे आया तो देखा—मेज पर नये साल की डायरी रखी है । कल ही तो नया साल शुरू हो रहा है । मैंने सोचा—कल से डायरी लिखूँगा । डायरी मेरे प्रकाशक ने भिजवा दी थी ।”

ललित ने लिखना छोड़कर पूछा—‘रीता के जाने के बाद आपने डायरी लिखी ?’

‘हाँ !’

‘उसे सम्हालकर रखिएगा कृष्ण भाई ! आपके मरने के बाद उस डायरी की कीमत दस लाख रुपया हो जायगी ।’

कृष्ण ललित की बात पर हँस पड़ा । उसने कहा—‘ललित ! यह भारत है भारत ! जिन्दों की जहाँ कद्र नहीं, वहाँ मुर्दों को कौन पूछता है ! लेकिन एक बात है ललित ! मैंने जिन्दगी में डायरी कभी नहीं लिखी थी । उस वक्त डायरी लिखते हुए मैंने पाया कि वैसे मुसीबतों में डायरी लिखने से दर्द बहुत हल्का होता है । आज भी, जब कभी, मैं उसे पढ़ता हूँ तो सिहर उठता हूँ । विश्वास ही नहीं होता कि मैं भी कभी ऐसी परिस्थिति में पड़ा था । मगर चूँकि रीता आज भी रोम-रोम में समाई हुई है, इसलिए जब-जब उसे पढ़ता हूँ, घबड़ा जाता हूँ । कभी-कभी रो भी पड़ता हूँ ललित ! खैर, छोड़ो इन बातों को ! चलो, आगे लिखो !’

“रीता के ननिहाल जाने के दस दिन बाद मैं एक कवि-सम्मेलन में बुलाया गया । कवि-सम्मेलनों में तो सिगरेट-चाय की भरमार रहती ही है । वहाँ के स्वागत करनेवालों में एक मेरे प्रिय मित्र भी थे । उन्होंने बहुत-बहुत कोशिश की कि मैं सिगरेट पीऊँ, मगर मैंने नहीं पी । उन्होंने जबर्दस्ती मेरे मुँह से सिगरेट लगा दी और दियासलाई जलाकर उसे सुलगाने लगे तो मैंने सिगरेट दूसरे हाथ से लेकर तोड़ दी और

नीचे गिराकर पैर से मसल दिया । वे मेरी ओर अचरज से देखते रह गए !

“कवि-सम्मेलन से लौटकर एक दिन मैंने आलमारी खोली । खोलते ही रीता द्वारा दिए गए फूल-पत्तों की गठरी दिखाई पड़ी । मैंने उसे उठाकर सीने से लगा लिया । दरवाजा बन्द करके मैं घंटों रोता रहा । शारदा ने कई बार पुकारा, मगर मैं नहीं बोला । आँसू पोंछकर जब मैं ठीक-ठाक हो गया तब दरवाजा खोल दिया । शारदा ने पूछा—‘दरवाजा बंद करके क्या कर रहे थे ?’

‘मैंने कहा—“कसरत !’

“शारदा मेरी आँखों को देखे, इसके पहले ही मैंने आंगन में जाकर आँखों को धो लिया । शारदा ताड़ नहीं सकी ।

“इस तरह एक-दो दिन नहीं, बीसों दिन मैं रोया । सिसक-सिसककर रोया । मगर किसी को मालूम नहीं होने दिया । खाना भी मेरा कम हो गया । वजन में तीन सेर की कमी हो गई । सुबह से सोने तक, सारा संसार उजाड़-उजाड़, सूना-सूना लगता । न किसी से बात करने की इच्छा होती, न कहीं जाने का मन करता । शारदा और तीन बच्चे, यही मेरी जिन्दगी थे । मुझे थोड़ी-सी राहत मिलती । अगर मैं उस समय विवाहित और बाल-बच्चेदार नहीं होता तो निश्चितरूप से आत्म-हत्या कर चुका होता । कई बार सोचा भी । मगर जब कभी घर आता, बच्चों को किलकारी मारते देखता, गोद में उछलकर अपना मुँह चूमते पाता, बस काँप जाता और आत्महत्या का इरादा छोड़ देता । ऐसी खतरनाक स्थिति हो गई थी उस समय मेरी !!!

“आत्महत्या तो नहीं ही कर सका, मगर आधा पागल में जरूर हो गया था । लोग भी मुझे वैसा ही समझने लगे थे । जोशीहोटल के मालिक, मैनेजर, साथी-मित्र, शहर के दूसरे परिचितों को भी विश्वास हो गया था कि मुझ पर किसी ने जादू-टोना करके मेरी अकिल हर

ली है । तरह-तरह के लोग थे । तरह-तरह के अनुमान से मैं विक्षिप्त करार दिया गया था ।’

“करीब एक महीना बाद ! एक महीना से एक-दो रोज ही ज्यादा हुए होंगे । मैं शाम को जैसे ही जोशीहोटल से आया तो मेरी बिटिया—सुषमा—ने कहा—‘बाबूजी ! रीता दीदी आई थीं । सरोज भैया भी आया था ।’ बेटा दीपक बोला—‘हाँ, बाबूजी ! लीता दीदी ! छलंज भैया !’ शारदा ने आकर बताया—‘अभी रीता आई थी । फिर थोड़ी देर में आएगी ।’

“मैंने सोचा, इतनी प्रतीक्षा कौन करे । अभी चलकर वहीं भेंट कर आऊँ । मैं बाहर निकल ही रहा था कि रीता आ गई । उसे देखते ही धड़कनें रुक-सी गईं । लगा कि तुरत गिर पड़ूँगा । दरवाजा का सहारा लेकर मैं खड़ा रहा । रीता सरोज के साथ थी । शारदा ने कहा—‘चलो बैठो ।’ रीता शारदा की खाट पर बैठ गई । मैं सामने की कुर्सी पर बैठ गया । मैंने रीता को देखा तो देखा नहीं गया । विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मैं उसे देख रहा हूँ । क्या मेरे प्राण शरीर में दुबारा लौट आए ! उफ् ! वह विश्वास करने के लायक बात नहीं थी । मैं पत्थर की मूरत की तरह चुपचाप बैठा रहा । रीता भी चुपचाप मेरी ओर देखती रही । मैं चेतनाहीन-सा हो गया था ।

“सरोज, सुषमा और दीपक के साथ बाहर खेलने चला गया । शारदा रीता के लिए चाय बनाने चली गई । मैंने हिम्मत से रीता की ओर देखा । रीता का स्वास्थ्य पहले से अच्छा हो गया था । साँवली कुछ ज्यादा बेशक-हो गई थी, मगर गाल उभर आए थे । हड्डियाँ भर गई थीं । चेहरे पर एक आकर्षक चमक और कान्ति थी । मगर इन सभी सुन्दरताओं की पृष्ठभूमि से एक अरूप वेदना झाँक रही थी—अन्तरतम में बैठी हुई एक मार्मिक आशंका !!! मैंने रीता का हाथ लेकर अपनी आँखों पर धर लिया ।

“मैंने पूछा—‘अच्छी हो ?’

“हाँ !”

“पत्र क्यों नहीं लिखा !”

“एक लिखा था !”

“वह तो मीता को लिखा था । मुझे क्यों नहीं लिखा ?”

“रोक लगा दी गई थी ।”

“और तुमने मान ली ?”

“क्या करती ?”

“मैं घबड़ाकर रीता की ओर देखने लगा । तबतक शारदा चाय लेकर आ गई । हलका-सा जलपान भी था । शारदा और रीता ने मिलकर जलपान किया ।

“रीता ने जाते समय कहा—‘कल स्कूल जाते हुए सीधे यहीं आऊँगी । रहिएगा ।’

“सरोज के साथ वह चली गई । दूसरे दिन १०॥ बजे आई । अकेली । मैं उसके साथ बैठक में जा बैठा । शारदा अपना काम-धाम करती रही । कभी-कभी आकर देख भी लेती । हम दोनों कुर्सियों पर दूर-दूर बैठे थे ।

“रीता ने कहा—‘आपके यहाँ नहीं आने की शपथ दी गई है मुझे ! माँ ने कहा है—तू मेरा मरा हुआ मुँह देख ! मुझे विधवा देख कि कृष्णजी के यहाँ जा ! मैं क्या करूँ ! मजबूर हूँ । पत्र भी लिखने में यही कसमें हैं । माँ को मैं बहुत मानती हूँ । पत्र नहीं लिखने के लिए मुझे क्षमा कर दीजिए !’

“मेरी जुबान जरा भी नहीं खुली । दुनिया एक महीने में ही इतनी बदल जायगी, इसकी कल्पना तक नहीं थी । रीता का चेहरा कल से आज ज्यादा उदास था । उसने कहा—‘परसों वसन्त-पंचमी है ! मीता के घर जाने का प्लान बनाकर आऊँगी तो देर तक बैठूँगी । अभी स्कूल जा रही हूँ ।’

“रीता चली गई । मैं उसी कुर्सी पर बैठा रहा । लगता था कि सारे शरीर में लकवा मार गया है; अब नहीं उठा जायगा शायद ! उफ् !!! यह क्या हो गया है मुझे ?’ शारदा ने आकर कहा—‘आफिस का समय हो गया है । तैयार हो जाइए ।’ मैं तैयार होकर आफिस चला गया ।

“वसन्तपंचमी का दिन आया । रीता खूब बन-सँवरकर मीता के साथ आई । मीता थोड़ी देर तक बैठकर अपने घर चली गई । मीता अपने साथ शारदा और बच्चों को भी लेती गई । घर में सिर्फ मैं और रीता रह गए । नौकर भी था । नौकर ने आकर पूछा—‘रीता दीदी ! जलपान लाऊँ ?’

“मैंने कहा—‘ले आ !’

“हमने जलपान एक साथ ही किया । रीता ने पानी पीकर गिलास नीचे रख दिया । मैं उसे उठाकर पी गया । रीता ने गिलास पकड़कर कहा—‘यह क्या किया आपने ?’

“कुछ नहीं !’

“रीता भौंचक होकर मेरी ओर ताकने लगी; फिर मुस्कुरा पड़ी ।

“उसने मेरी गोद में सिर रख दिया और लेट गई । बोली—‘आपको शरीर नहीं दे सकी, यह बहुत अच्छा हुआ ! मैं तो आपकी कला के लिए न हूँ ! आपकी कविता के लिए !!!’

“मैं आश्चर्य से रीता की ओर देखने लगा । वह पागल की तरह कहती चली गई—‘मेरा सारा प्यार आपकी कला के लिए है । मेरे पापी शरीर से आपकी कला दूषित हो जाती, इसलिए मैंने अपना शरीर नहीं दिया । आपसे विवाह भी नहीं कर सकती ! आपकी जीवन-संगिनी बनना आपकी कला को मार देना है ! दोनों परिवारों के लिए भी घातक है । यह शरीर मेरा नहीं, मेरे माँ-बाप का है । वह जहाँ चाहें, जिसे चाहें, दे दें, बेच दें । हृदय और आत्मा पर उनका अधि-

कार नहीं है। वह मेरी चीज है। मैंने अपनी चीज अपने देवता के चरणों पर चढ़ा दी है !'

“रीता कहते-कहते रोने लगी। मुझे तो लगा कि अभी मस्तिष्क फटकर टुकड़ों में बिखर जायगा। उसने हिम्मत से आँसू पोछे और कहा—‘आपने क्यों समझ लिया कि मैं आपसे दूर चली गई हूँ? मैं लाखों कोस दूर जाकर भी आपके पास हूँ; आप में हूँ। मुझे तो ऐसा ही लगता है। आप शायद इसे महसूस नहीं करते! मैं करती हूँ। जीवन भर करूँगी!! मेरे हृदय में अब किसी प्रकार की साध नहीं रह गई है। मैं पूर्ण हो गई हूँ, पूर्ण!’

“इतना कहकर रीता अचानक खाट से नीचे उतर गई और टहलने लगी। उसने कहा—लगता है कि अभी प्राण निकल जाएँगे। जरा जल्दी से एक गिलास पानी मँगाइए! मेरा दिल जोरों से धड़क रहा है! ओह!” वह धम्म से खाट पर बैठ गई।

“मैं दौड़कर अन्दर गया और खुद पानी लेकर आया। पानी पीकर वह मेरे कन्धे पर सिर झुकाकर बैठ गई। उसने कहा—‘आपको उसी दिन एक खबर सुनाने आई थी, मगर हिम्मत नहीं हुई। सोचा, न जाने आपको क्या हो जाय!’ मैंने घबड़ाकर कहा—‘जल्दी कह दो रीता! मुझे कुछ नहीं होगा! मैं सच कहता हूँ, मुझे कुछ नहीं होगा!’

“रीता बोली—‘आप यह खबर सुनकर एकदम बदल जा सकते हैं, आत्मघात कर सकते हैं; मेरा गला घोट सकते हैं; मेरे पिता-माता और न जाने किस-किसकी हत्या कर सकते हैं।’

“मैंने रीता का पैर पकड़कर कहा—‘मैं कुछ नहीं करूँगा रीता!’ कुछ नहीं करूँगा! मैं तुम्हारे प्यार की सौगन्ध खाकर कहता हूँ—कुछ नहीं करूँगा। तुम जैसा कहोगी, वैसा ही करूँगा! तुम्हारी कसम खाकर कहता हूँ!’

“रीता ने हाथ आगे करके कहा—‘वचन दीजिए!’

“मैंने रीता के हाथ पर अपना हाथ रख दिया । रीता ने अभूत-पूर्व गंभीरता से अपनी अन्दरूनी बेकली को दबाकर कहा—‘गज्जू बाबू से माँ ने मेरी शादी पक्की कर दी है !’

“रीता के मुँह से यह वाक्य समाप्त ही हुआ था कि मैं दीवाल से जा टकराया । पहले तो रीता को पता नहीं चला कि मुझे क्या हुआ है । मगर मेरे दाँत बन्द देखकर वह घबड़ा गई । दौड़कर नौकर को पुकारा । नौकर ने आकर मेरे मुँह पर पानी का छीटा दिया । रीता हाथ में पंखा लेकर हवा करने लगी । करीब पाँच-सात मिनट के बाद मेरी बेहोशी दूर हुई । मैंने आँखें खोलीं तो देखा—रीता की आँखें झर-झरकर मेरे मुँह पर गिर रही हैं । नौकर चुपचाप अन्दर चला गया । रीता मुझे गोद में लिपे बहुत देर तक रोती रही !”

ललित लिखना छोड़कर उठ गया । उसने उपन्यास हाथ में उठा लिया और कहा—‘कृष्ण भाई ! जरा दियासलाई दीजिए ! इस उपन्यास को बिना जलाए मैं नहीं छोड़ूँगा । यह कम्बस्त मुझे भी खा जायगा ।’

जब कृष्ण ने ललित को दियासलाई नहीं दी, तब उसने कौपी को टुकड़े-टुकड़े करके फेंक देने की कोशिश की मगर कृष्ण ने झपटकर उसके हाथ से कौपी छीन ली और डाँटकर कहा—‘पागल मत बनो ललित ! यह उपन्यास तुम्हारा नहीं, मेरा है ! मेरा ! ! !’

ललित उपन्यास को वहीं छोड़ कर तुरत फुलवारी के बाहर चला गया !



उसीने प्रेम को पहचाना !

कृष्ण आज सुबह छह बजे ललित के घर पर गया । वह अभी तक सोया हुआ था । पत्नी ने जब उसे कृष्ण के आने की खबर दी तो वह आँखें मलता हुआ बाहर आ गया । कृष्ण ने पूछा—

‘आज बहुत देर तक सो रहे हो ?’

‘हाँ, रात बहुत देर से नींद आई !’

‘चलो, जल्दी तैयार हो जाओ !’

ललित तैयार होने चला गया । कृष्ण बाहर बरामदे में बैठकर मेज पर रखा हुआ अखबार पढ़ने लगा ।

ललित जब तैयार होकर बाहर आया तो उसके हाथ में चाय की दो प्यालियाँ थीं । चाय पीकर दोनों रिश्ते पर सवार हुए और अजायबघर की फुलवारी में दाखिल हो गए ।

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! कल तुम इतने उत्तेजित क्यों हो गए थे ?’

ललित शरमाते हुए बोला—‘मुझे स्वयं आश्चर्य हुआ था कृष्ण भाई ! फुलवारी से चले जाने के बाद, मैं मन ही मन यही सोचता रहा कि आपको मेरी हरकत से कितनी चोट पहुँची होगी ! कृष्ण भाई ! मैं क्या करता । उस वक्त मैं अपने आपे में नहीं था ।

आप ही बताइए, रीता ने जिस दिन आपको वह कल्पनातीत समाचार सुनाया था, उसे सुनकर आपको गश क्यों आ गया था ? मेरी भी कुछ वैसी ही हालत हो गई थी !'

कृष्ण ने कहा—'ललित ! मुझे सबसे आश्चर्य इस बात का हुआ और अभी तक है कि कोकिलाजी ने जब बहुत पहले ही गज्जूबाबू के साथ रीता का सम्बन्ध तय कर लिया था, तो शर्माजी को या मुझे क्यों नहीं बताया ? रीता को भी ननिहाल जाने के पाँच-सात दिनों के बाद इसका पता चला । शर्माजी को भी वहीं जाकर सबकुछ मालूम हुआ । ललित ! मैं साहित्य और रीता की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि अगर मुझे मालूम होता कि गज्जूबाबू रीता के होनेवाले पति हैं तो हाथ उठाने की कौन कहे, मैं उनके अपमान की बात भी नहीं सोचता । अगर वे उससे भी ज्यादा झूठ और ईर्ष्या का सहारा लेते, तोभी मैं बदला नहीं लेता !

'रीता को अगर मालूम होता कि वे उसके भावी पति हैं तो वह पत्र में उनकी पिटाई को पसन्द करने की बात कभी नहीं लिखती । उनका यदाकदा अपमान भी कभी नहीं हो पाता ।

अगर शर्माजी को मालूम होता कि गज्जूबाबू उनके होने वाले दामाद हैं तो वे दूसरे दिन मेरे यहाँ कभी नहीं आते । आते भी तो मुझे उस काण्ड के लिए बधाई नहीं देते । लाश निकालनेवाली बात तो कदापि नहीं बोलते ।

'देवजी अगर वह बात जानते तो गज्जू बाबू को शर्माजी का घर छोड़ देने को कभी नहीं कहते । मनोज और सरोज को भी खुशी हरगिज नहीं होती ।

'मैं कहता हूँ ललित ! इस पूरे दुष्काण्ड की जिम्मेवारी कोकिलाजी पर है । उन्होंने शर्माजी, रीता, मनोज तथा मुझे, और किसे नहीं, सभी को एकसाथ ही बेवकूफ बनाया और अपने भावी दामाद को जानबूझकर पिटवा दिया । ललित ! अगर उन्होंने यह बात चुपके

से मुझे या शर्माजी को बता दी होती, तो कितना अच्छा होता !'

ललित ने कहा—'कृष्ण भाई ! उनका चरित्र मैं शुरू से ही देखता आ रहा हूँ । विचित्र प्रकार की औरत हैं । पति से दुराव, पुत्री से दुराव, दामाद से दुराव, आपसे दुराव ! आखिर इस षड्यन्त्र का तात्पर्य ! मैं तो इस पाप की पूरी कसूरवार उन्हींको मानता हूँ । आपने जब इस काण्ड को 'सबसे बड़ा पाप' कहा था, तब तो मैं बिल्कुल नहीं समझ सका था । लेकिन, कृष्ण भाई ! यह सचमुच बहुत बड़ा पाप हो गया । किन्तु इसका प्रायश्चित्त आपको नहीं, कोकिलाजी को करना चाहिए । उनको ही करना पड़ेगा !!!'

कृष्ण ने कहा—'ललित ! मैं प्रायश्चित्त सिर्फ इसलिए करना चाहता हूँ कि मेरे पापी हाथ ने रीता के पति का अपमान किया । मैं यही जानता हूँ कि मुझ से अपमान कराया गया, मैंने किया नहीं । तुम से सच कहता हूँ ललित ! अगर गज्जूबाबू पर, रीता के पति के रूप में मैंने हाथ उठाया होता, तो इस हाथ को काटकर फेंक देता । रीता के पति तो पति हैं; जब मैं रीता के दिए हुए पत्रों को अपना सर्वस्व समझता हूँ, तो ज्यादा क्या कहूँ ! मगर क्या करूँ ललित ! अनजाने बहुत बड़ा पाप, जघन्य अपराध कर दिया मैंने ! करा दिया गया मुझसे !!!'

कुछ देर तक चुप रहने पर कृष्ण ने कहा—'ललित ! लो, अपनी यह कौपी ! चलो, उपन्यास आगे बढ़ाओ !'

'रीता ने गज्जूबाबू से अपने विवाह का समाचार सुनाकर मुझे बेहोश कर दिया । होश में आने पर भी मैं होश में नहीं था । रीता जब चली गई तब मैं कितने प्रकार की बातें सोच गया ।

'रीता कहीं उनसे प्रेम तो नहीं करती ! अगर नहीं करती तो उस दिन मुझ से झूठ क्यों कहा ? उस दिन मैं और रीता कमरे में थे । गज्जूबाबू ने बाहर से पुकारा—'रीता ! सुनो !!' रीता उठकर बाहर गई । उन्होंने उसे अपनी कोठरी में चलने का

इशारा किया । रीता ने अपनी कोठरी की ओर अँगुली बताकर कहा—‘कृष्णजी बैठे हैं ।’ इस पर गज्जूजी ने रीता को चाभी दे दी और तुरत ऊँचे स्वर में बोलने लगे—‘देखो ! मैं बाहर जा रहा हूँ, चाभी रखे रहो । बाबूजी आनेवाले हैं । उन्हें दे देना ।’

“रीता चाभी लेकर अन्दर आई तो मैंने पूछा—‘क्या कह रहे थे तुमसे ?’

“रीता सफेद झूठ बोल गई—‘कुछ नहीं !’

“हालाँकि मैंने झाँककर सभी बातें देख-सुन ली थीं । रीता के ‘कुछ नहीं’ कहने पर मैं तिलमिलाकर चुप रह गया था । रीता का चेहरा भी कुछ उड़ा-उड़ा-सा था ।

“थोड़ी देर में गज्जू बाबू अन्दर आए और बोले—‘कहिए कृष्णजी ! आप सानन्द तो हैं ?’

“मैंने सिर्फ ‘हाँ’ कहा और अखबार पढ़ने लगा । वे चुपचाप चले गए । रीता मेरी ओर डरकर ताकती रही ।

“आखिर इसका क्या अर्थ है ? क्या मैं अभी तक मूर्ख बनाया जा रहा हूँ या यह भी रीता की चंचलता ही भर है । मगर वाह री चंचलता ! जिसे भी अपनी ओर देखते-श्रुते पाया, उसीकी बन गई प्रेमिका ! कैसी भयानक, कितनी घातक है यह चंचलता !!

“फिर मुझे हकीम के एक छोकरे की याद आई जो रीता का मुफ्त में इलाज करने को तैयार था । खुद कई बार शर्मिजी के घर पर भी आ चुका था । एकदिन रीता ने कहा—‘इसके यहाँ जाते हुए, डर लगता है । गुण्डा आदमी है । लड़कियों से छेड़खानी करता है ।’ मगर कोकिलाजी उसके पास ले जाने के लिए रीता को बराबर तंग करती थीं । न जाने क्यों !

“मुझे सुकुलजी की भी याद आई, जिन्होंने अपनी पुस्तक की भूमिका में, उसके संगीत की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी । आखिर रीता-जैसी संगीतज्ञ उन्हें और कहाँ मिलती ! वे कोकिलाजी के

शिक्षक भी थे । विकलजी को लेकर तो काफी बदनामी फैल चुकी थी । शंकरजी भी कभी बेइज्जत करके वहाँ से निकाले गए थे । कोकिलाजी का वह दरबारी घर, कलाकारों की कसौटी था, मगर बहुत कम सौभाग्यशाली लोग खरे उतरे थे उसपर ! बड़े-बड़े लोग वहाँ आए, आकर चल दिए !

“कोकिलाजी एक डेढ़ वर्ष के लम्बे दौरान में, यह किस्सा सैकड़ों बार दुहरा चुकी थीं कि जब वे कला-प्रसार-केन्द्र में गाना गाने जाती थीं तो अनेक गुंडे उनका पीछा करते थे । शर्माजी ने कई पहलवान उनकी रक्षा के लिए बुलवा रखे थे । वे सभी लोग लुक-छिप कर उनके पीछे चलते और गुंडों से लोहा लेते । मगर शर्माजी यह नहीं बताते कि उनके यहाँ निषादा और श्यामा जैसी बदचलन औरतें कभी-कभी क्यों आया जाया करती हैं और कोकिलाजी से एकान्त में घंटों बातें क्यों किया करती हैं !!!

“मेरे दिमाग में उस वक्त से आज तक यः बात भी नहीं आई कि प्रौढ़ा स्त्री के पीछे गुंडे आखिर क्यों पड़ते थे ! एक से एक सुन्दर और युवती लड़कियाँ कला-प्रसार-केन्द्र में जाती थीं, मगर उनका पीछा कभी कोई नहीं करता था ! किशोरियों और तरुणियों को छोड़कर, गुंडे साँवली और प्रौढ़ा कोकिलाजी के पीछे ही क्यों पड़े हुए थे ? मुझे आजतक इस रहस्य का पता नहीं चल सका कि कोकिलाजी ने एकदिन रीता को, शादी हो जाने के बाद मुझसे मिलने देने की प्रतिज्ञा करके, उसे वैसा आश्वासन क्यों दिया था ?

“इसके पहले वे मुझे, शर्माजी के सामने, एक और किस्सा सुना चुकी थीं । एक बार उन्हें एक रिटायर्ड पुलिस अफसर ने बुलाकर कहा था—‘आप हमारे पास रह जाइए । बच्चों को अनाथालय में भर्ती करा दूँगा । आपके बीमार पति का भी बन्दोबस्त हो जायगा ।’ उन्होंने अपने मैनेजर से दो सौ रुपए भी घर पर भिजवा दिए थे । कोकिलाजी ने मैनेजर को डाँटकर वे पैसे वापस कर दिए थे ।

शर्माजी को, मैनेजर को डाँटकर पैसे वापस कर देने की बात पर, वहाँ जाने की बात से, ज्यादा विश्वास हो जाता था और वे अपने-आप को धन्य समझते थे वैसे सतीसाध्वी नारी-रत्न पाकर !

“एकदिन कोकिलाजी ने एक और मजेदार कहानी सुनाई थी । उनकी एक परमप्रिय सहेली थीं । वे उनके साथ एक मठ में रोज जाया करती थीं । बीसों बार जाने के बाद उन्हें एक दिन अचानक मालूम हुआ कि उनकी गाढ़ी दोस्त तो वहाँ अपने प्रेमी के साथ रँगरलियाँ मनाने जाती हैं, बस, उन्होंने दूसरे ही दिन से वहाँ जाना बन्द कर दिया ।

“शर्माजी यहाँ भी गर्व का अनुभव करते थे कि वाह ! खराबी का ज्ञान हुआ और दूसरे दिन से ही जाना बन्द कर दिया । पाति-व्रत इसे कहते हैं !!! बेचारे यह भूल जाते थे कि गाढ़ी दोस्ती का क्या अर्थ होता है और बीस-बाईस बार पहले जाने का क्या अंजाम हो सकता है !!!

“कोकिलाजी और शर्माजी से जब मैं अपने बचपन की कोई घटना सुनाता तब कोकिलाजी कहतीं—‘आपकी और इनकी बातें इतनी मिलती-जुलती हैं कि क्या कहूँ !’

“इतना कहकर वे शर्मा जातीं । कभी-कभी मेरे प्रति असावधानी का बहाना करके, वे अपना वस्त्र कुछ इतना अस्त-व्यस्त कर लेतीं कि मैं आँख मूँदकर सूरदास के ‘मैं नहीं माखन खायो’ पद का स्मरण करने लगता । एकदिन मैंने रीता से हँसी में पूछ भी दिया—‘मुम्हारी माँ भी मुझे प्यार करती हैं क्या ?’

“रीता चिन्तित होकर बोली—‘नहीं नहीं ! वे बाबूजी को बहुत मानती हैं ! ऐसा नहीं हो सकता ।’

“एक बात मुझे और याद आई । जब कभी मैं अपनी प्रकृति या विचारों को, पुरानी घटनाओं के आधार पर कहता तो कुमार बीच में ही कोकिलाजी को छेड़ देता—‘कह दीजिए कि यह बात

भी ठीक शर्माजी से ही मिलती-जुलती है ! इस पर कोकिलाजी शर्मा जातीं; मुस्कराने लगतीं ।

“एकदिन कला-प्रसार-केन्द्र के एक वादक को मैंने रीता की वेणी पकड़े हुए देखा था तो डाँटा था ।

“इस तरह एक नहीं, अनेक दृश्य, मेरी आँखों के सामने आ गए । मैं रीता को अपने शरीर, हृदय और आत्मा से प्यार करके भी इतनी सारी बातें सोच गया । मैं हैरान इसलिए था कि विवाह का प्रस्ताव सुनकर वह मुझ जैसी क्यों नहीं हो गई ? बर्दाश्त कैसे कर गई ?”

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! आखिर वह हिन्दू नारी है । अगर उसके पिता-माता ने गज्जू बाबू से ही उसकी शादी ठीक कर दी तो क्या वह उन्हें अपना पति नहीं मान ले ? क्या वह अब भी आपके ही सहारे रहकर, अपने आदर्श और परिवार की प्रतिष्ठा पर कुठाराघात करे ? आप ही सोचिए कृष्ण भाई ! कि राम से प्रेम करके और उन्हें अपना पति मानकर भी अगर सीता की शादी रावण से हो गई होती तो क्या सीता रावण के यहाँ नहीं जातीं ? जरूर जातीं । धनुष अगर रावण तोड़ता तो सीता रावण की ही पत्नी होतीं ! नहीं होतीं क्या ?’

कृष्ण आश्चर्य से ललित की ओर देखने लगा । उसने कहा—‘ललित ! तुम जिस आदर्श की बात कह रहे हो, उसे मेरा सादर प्रणाम है ! मगर मैं ऐसी सीता को श्रद्धा से नहीं देख सकता । ललित ! तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो । रीता ने अपने सच्चे प्यार और प्यारे कृष्ण से ज्यादा महत्त्व, पिता-माता को दिया कि नहीं ?’

‘जरूर दिया ! अगर नहीं दिया होता तो गज्जू बाबू से शादी करना वह क्यों स्वीकार कर लेती !’

हाँ ! तो मैं उन मजबूरियों और आदर्शों की बात नहीं कहता ललित ! प्रेम के सामने जीवन, प्रतिष्ठा, समाज, संसार, अपने-पराए, किसी को महत्त्व नहीं दिया जाता । मैंने सच्ची प्रेमी-प्रेमिकाओं के किस्सों में तो यही पढ़ा-सुना है । औरों के मैं नहीं जानता । लेकिन तुमसे एक बात कह दूँ ललित ! कि रीता की सभी कमजोरियों को मैं अपनी कमजोरी मान बैठा हूँ । इसलिए उसके किसी भी व्यवहार और काम से मैं उसे छोड़कर भाग नहीं सकता । वह चाहे जितना विश्वासघात करे, मगर मैं विश्वास लेकर ही मरना चाहता था, चाहता हूँ । खैर, जाने दो इसे ! चलो, आगे लिखो !'

“रीता दूसरे दिन आई तो मैंने उससे बहुत बुरी-बुरी बातें कहीं । मेरा दिमाग ठिकाने नहीं था । मैं नहीं जानता था कि मैं क्या कह रहा हूँ, क्या कर रहा हूँ ! मैंने कहा—‘रीता ! उस दिन तुम गज्जू बाबू से मेरी ओर इशारा करके, मेरे पूछने पर इनकार कर गई थीं, और अब जो तुम चुपचाप पिता-माता की आज्ञा मान लेने की बात कहती हो, तो न जाने मन में क्यों शंका होने लगी है । तुम मुझे धोखा तो नहीं दे रही हो रीता ?’

“रीता ने कहा—‘आपको जो धोखा दे रही हूँ, वह मैं ही जानती हूँ । आपको इसके विषय में, मैं कोई सफाई नहीं देना चाहती । हाँ ! आप अगर मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं तो सोच-समझकर आज्ञा दीजिए ! मैं अभी अपने घर से यहाँ चली आती हूँ । फिर संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो मुझे यहाँ से हटा कर ले जाय !’

“रीता कहकर तन-सी गई । उसका चेहरा आग की तरह तपा हुआ था । मैं अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगा । रीता ने कहा—‘आप मुझे बहुत गिरी हुई लड़की समझते हैं ! समझते हैं न ?’

“मैं चुप था ।

“खैर, समझिए ! मैं कुछ नहीं कहूँगी !” रीता बोली । शारदा आंगन में बैठकर तरकारी चीर रही थी । उस दिन मैंने सभी को खाने पर बुला रखा था । खाने पर रीता नहीं आए, यही चाहती थीं कोकिलाजी । जब उन्होंने खाने के समय उसे घर पर नहीं देखा तो सीधे मेरे डेरे पर आई । बाहर से पुकारा—‘सुषमा !’

‘मैंने तुरत उठकर बैठक का दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया । सुषमा ने बाहर का दरवाजा खोल दिया । वे शारदा के पास आंगन में चली गईं । इसी बीच मैंने रास्ते की तरफ का दरवाजा खोलकर रीता को निकाल दिया । थोड़ी देर के बाद अन्दर का दरवाजा खोलकर मैंने पूछा—‘शारदा ! कौन आया है ?’

“शारदा ने कहा—‘रीता की माताजी !’

“मैं आंगन में चला गया । उन्होंने कहा—‘न जाने रीता कहाँ चली गई है !’

“मैं चुप रहा । शारदा मुझे गौर से देखने लगी तो मैंने आँखें फेर लीं । वहाँ से मैं तुरत बाहर चला गया । दो तीन घंटे बाद लौटा तो मालूम हुआ कि रीता दुबारा सरोज के साथ आई थी और खाना खाकर अभी माँ के साथ लौट गई है ।

“ननिहाल से रीता, कोकिलाजी और सरोज एकसाथ आए थे । मनोज आठ-दस दिन पहले ही आ गया था । वह मेरे यहाँ ही भोजन करता था । बीच में बीमार पड़ गया था तो मैंने उसकी बहुत देखभाल की थी । शर्माजी घर पर नहीं रह गए थे ।

“हाँ ! रीता दूसरे दिन नहीं आ सकी । दस बजे के करीब मीता आई । वह आकर मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गई । हम-लोग रीता की ही चर्चा कर रहे थे कि मनोज आ गया । वह कहानियाँ शुद्ध कराने आया था । मैंने कहा—‘एक घंटा के बाद

आओ ।’ वह एक घंटा के बाद आया तो मैंने कहा—‘शाम को आना !’ वह झुंझलाकर घर चला गया और घर जाकर रीता से कह दिया कि मीता कृष्णजी से सटकर बैठी थी; प्रेम-व्यापार चल रहा था । रीता ने तुरत एक चिट्ठी मीता को लिखी । तबतक मीता भी अपने घर जा चुकी थी । मैंने मीता को उसी वक्त कहा था कि मनोज जाकर जरूर कुछ शरारत करेगा । जब इसने अपनी बहन की शिकायत माँ से कर दी थी तो तुम्हारे हमारे विषय में क्यों नहीं कहेगा ?

“सरोज मीता को पत्र देकर मेरे पास लौटा । मीता ने वह पत्र मुझे दिखाने के लिए भेज दिया था । उसमें रीता ने लिखा था—‘मीता ! नवीन सफलता पर बधाई !’

“पत्र पढ़कर मुझे बहुत दुख हुआ । मीता को मैं अपनी मित्र की तरह मानता था । उफ् ! रीता कहाँ तक अविश्वास कर सकती है ! मगर इसमें उसका क्या कसूर था ! आग तो मनोज को लगाई हुई थी ! मैंने एक खम्बा पत्र रीता को लिखा । उसमें प्रार्थना की कि वह मुझपर विश्वास करे और पत्र पढ़ते ही आए । मगर रीता नहीं आई । उसने दूसरे दिन मीता से स्कूल में कहा कि मैंने स्वयं सबकुछ देखा है । रीता के इस असत्य का मेरे पास कोई जवाब नहीं था । मैंने कहा—‘अगर उसने स्वयं सबकुछ देखा तो सीधे अन्दर क्यों नहीं आई ? मुझे शर्मिन्दा क्यों नहीं किया ?’

“मीता ने कहा—‘खैर, जाने दीजिए ! आजकल वह बहुत दुखी रहती है । दुख और गुस्से में उसे कुछ नहीं मालूम होता । आपको एक पत्र दिया है, उसने ।’ पत्र देकर मीता अपने घर चली गई । पत्र में लिखा था—[अनगिनत प्रणाम ! मैं अब आने में असमर्थ हूँ ! मैं बहुत बुरी हूँ न ! ‘तुम चुप क्यों हो ! खामोशी अच्छी नहीं !’ आपकी चिट्ठी मिली । पढ़कर प्रसन्नता हुई । आशा है, आप मुझे इसी प्रकार याद करते रहेंगे । कुछ विचित्र-

सा लगा कि आखिर मुझे बुजाने का कारण क्या हो सकता है ! शुष्कता ही तो लेकर आई हूँ फिर मधुरता कहाँ से लाऊँ ? घने अन्धकार में बिहँसता हुआ प्रदीप कहाँ से जलाऊँ ?

दीप जलाकर बुझाना तो मेरा कवि ही जानता है । मुझे तो ऐसा विश्वास है कि मैं अपनी सारी ममता और अपना सबकुछ खोकर भी अपने कलाकार को नहीं पा सकती हूँ ! क्या इसमें असत्यता है ? मैं नहीं पा सकती आपको.....और न चाहती ही हूँ । आने की बात आपतक ही सीमित है ।

क्या आपको मुझ पर अविश्वास है ? क्या आप नाराज हैं ? काश ! मैं अपनी सारी ममता उड़ेलकर आपको प्रसन्न कर पाती । मेरा दुर्भाग्य !!! मैं पगली हूँ ?

तड़प लेती हूँ लेकिन, तुम को तड़पाना नहीं आता । क्या आजकल खूब कविता करते हैं ? फूल भेजना चाहती हूँ परन्तु..... सोचती हूँ—शायद अब मेरे फूलों को लेना नापसन्द करें । क्यों ? गलत तो नहीं है ?

क्या मेरी कमी आप कभी महसूस करते हैं ? मैं तो ऐसा नहीं समझती हूँ कि आप महसूस करते होंगे । मैं बहुत बुरी और भ्रष्ट हूँ न ? आपकी पत्नी और बच्चों को छुड़वा दिया और बहुत नकसान भी किया है मैंने !! क्यों ?

मैं बहुत बुरी.....हूँ न ? मैं आपके लिए अभिशाप बनकर आई हूँ ! क्यों ? क्या मैं पगली हूँ ? अवश्य हूँ ! क्यों ? आप अवश्य प्रसन्न होंगे ?—रीता]

रीता का वह पत्र पढ़कर मैं सन्न रह गया । उस पत्र को पढ़ने के बाद मैंने तुरत दूसरा पत्र लिखा । उसमें मैंने रीता को लिखा—
[अगर तुम मुझे खत्म कर देना चाहती हो तो ठीक है, ऐसा ही पत्र लिखो । मैं भी अब ज्यादा जीना नहीं चाहता । अगर तुम्हारी

इच्छा यही है तो वह बहुत शीघ्र पूरी होगी । मुझे क्षमा कर दो । अब मैं कुछ नहीं लिखूँगा ; कुछ नहीं बहूँगा ।]

मैंने वह पत्र सुखू के हाथों भेज दिया । थोड़ी देर में सुखू वापस लौट आया खालीहाथ ! दूसरे दिन सुबह सरोज ने रीता का पत्र लाकर दिया ! उस रात जरा नींद नहीं आई । चिट्ठी यूँ थी—

[‘आराध्य देव !

.....!]

पता नहीं मेरे प्रिय ! कि मैं क्यों कभी-कभी विक्षिप्त-सी हो जाती हूँ और तुम्हें ऊटपटांग लिख दिया करती हूँ । पर इससे क्या तुम अपनी रीतू से नाराज हो जाओगे ? नहीं प्रियतम मेरे ! तुम नाराज मत होना, अपनी रीतू से !

उफ् ! रीतू तुम्हें इतना प्यार करती है कि तुम उसका अन्दाज ही नहीं लगा सकते.....। सच ! बहुत प्यार करती हूँ तुम्हें !

ओह ! तुम कितने मोहक हो देव ! जी चाहता है, तुम्हें दूर से देखूँ । छूँ नहीं ! मेरे आराध्य ! मेरे प्रिय !!

स्नब, क्या तुम मुझे चाहते हो ? एक बार कह दो—हाँ रीतू ! मेरी रानी !! चाहता हूँ तुम्हें ! तुम्हारी रीतू तृप्ति से भर जायगी !!!

ओह ! मेरे कलाकार ! मेरे प्रियतम !! मुझे क्षमा कर देना । क्षमा, अपनी रीतू को !

विदा दो आराध्य ! रात बीत रही है । दो से ज्यादा हो गए हैं ।

कदाचित् मेरे पास दो छोटे-छोटे पंख होते ! मेरे प्रिय ! तब मैं अपनी स्वप्नावस्था में तुम्हारे पास उड़ आती । पर ये विचार व्यर्थ ही हैं न !

तुम्हें ही तो मैं अपना प्रकाश मानती हूँ मेरे कवि ! अब बींद आ रही है ! मैं आ रही हूँ तुम्हारे समीप ।

प्रियतम !! ऊटपटांग लिखने के बाद तुम्हारी अपनी रीतू, बहुत रोती है ! ऐसा क्यों मेरे प्राण ? क्या सच, तुम्हारी अपनी रीतू पगली है ? तुम्हारी ही सदैव—रीतू !”]

कृष्ण इतना लिखाकर तिलमिला-सा गया । वह उठकर टहलने लगा । थोड़ी देर तक टहलने के बाद वह ललित के पास आया और बोला—‘ललित ! यह मेरे जीवन का पहला अवसर था जब कि रीता ने मुझे ‘तुम’ कहकर सम्बोधित किया था और अपने लिए रीतू लिखा था । उसी दिन से रीता मुझे ‘तुम’ कहने लगी और मैं उसे ‘रीतू’ !’

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! ‘तुम’ में जो मजा है वह ‘आप’ में नहीं !’

कृष्ण हँस पड़ा । उसने कहा—‘इसीलिए तो मैं तुम्हें ‘तुम’ कहता हूँ और तुमसे ‘आप’ कहाकर ज्यादा मजा लेता हूँ । मगर देखो ! कल से तुम भी मुझे ‘तुम’ ही कहा करो !’

ललित ने कहा—‘अच्छा, देखिए ! कोशिश करूँगा !!!’



मेरे सिवा, सभी महान !

आज कृष्ण जैसे ही आया कि ललित ने दूर से ही कहा—‘आओ यार कृष्ण !’

कृष्ण ठहाका मारकर हँस पड़ा । उसने कहा—‘उपदेश देने का इतना जल्द असर तुम पर पड़ जायगा, यह मैं नहीं जानता था ललित !’

ललित ने मुस्कराकर कहा—‘मैं अक्लमन्द शागिर्दों में हूँ कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने हँसते हुए कहा—‘अपनी अक्लमन्दी का लोहा, बारबार मनवा कर, उसका महत्त्व मत घटाओ ललित ! चाणक्य के बाद इस भूमि ने तुम्हें ही पैदा किया है ?’

ललित शरमाकर बोला—‘आप तो कृष्ण भाई ! बात-बात में लज्जित कर देते हैं !’

कृष्ण ने कहा—‘आप नहीं, तुम !’

ललित बोला—‘हाँ हाँ ! ‘तुम !’

• कृष्ण ने कहा—‘अच्छा, चलिए, लिखना शुरू कर दीजिए !’

“रीता का पहला आत्मीय पत्र पढ़कर मैं बहुत मर्माहत था । अब सन्तोष हुआ । उस पत्र को मैं कई बार पढ़ गया । ‘तुम’ शब्द पहली बार सुनकर कितना अच्छा लगा । एकदम अपना ! जैसे मनियारे साँप को खोई हुई मणि मिल गई हो !’

“रीता स्कूल जाते वक्त आई। आकर उसने किताबें आलमारी में रख दीं और कहा—‘आज पढ़ाई यहीं होगी। स्कूल में रोज पढ़ते-पढ़ते दिमाग खराब हो गया है। वहाँ पढ़ने में तबीयत भी नहीं लगती।’

“वह बैठकवाली चौकी पर लेट गई। मैं उसका हाथ अपने हाथ में लेकर आँखों से लगा ही रहा था कि शारदा अन्दर चली आई। यह दृश्य देखकर वह तुरत चली गई। उसने जाकर मुझे पुकारा। मैं आंगन में गया तो उसने कहा—‘इतना आगे मत बढ़िये ! यह बुरी बात है। मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकती। अगर ऐसा कीजिए तो कल से मैं रीता को यहाँ आने नहीं दूंगी।’

“मैंने शारदा के क्रोध का कोई उत्तर नहीं दिया। सुनकर चुपचाप बैठक में लौट आया।

“रीता ने पूछा—‘क्या कह रही थी?’

“मैंने कहा—‘पूछ रही थीं कि तुमने खाना खाया है कि नहीं?’

“रीता ने प्रसन्न होकर कहा—‘खाकर आई हूँ। शारदा दीदी कितनी अच्छी हैं ! देवी हैं !’

“रीता ने मेरे बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—‘आखिर आपने ये बाल मुझे नहीं ही दिए ! खैर, कोई बात नहीं। हाँ ! एक बात खूब याद आई। कल जब माँ आ गई थीं, मेरी तो पिंडली ही काँप गई। वहाँ से मैं सीधे भीता के यहाँ गई, और उसे लेकर अपने घर गई। वहाँ से सरोज को लेकर फिर यहाँ खाना खाने आई। जब खाना खाकर मैं जाने लगी तो शारदा दीदी ने कहा—‘तुम ठहर जाओ ! पीछे चली जाना।’ वे तो मुझसे कुछ जानने के लिए रोकना चाहती थीं मगर माँ ने कुछ और ही समझा।’

“मैंने कहा—‘अपने हिसाब-किताब से क्या?’

“क्या मतलब?’

“कुछ नहीं !’

“रीता कुछ समझ नहीं सकी। उसने कहा—‘रास्ते में माँ ने कहा—‘बड़ी अजीब औरत हैं शारदाजी ! तुम्हें रोक क्यों रही थीं ?’ मैंने कहा—‘उन्हें यह सब क्या मालूम ?’

“रीता तो भोलेपन में यह बात बोल गई मगर मैं इसी बात को लेकर गहराई तक अनेक बातें सोच गया। माँ-बेटी में इस प्रसंग पर यहाँ तक प्रश्नोत्तर हो चुका है क्या ? क्या रीता और मेरे विषय में कोकिलाजी को इस हद तक जानकारी है ? क्या रीता से उन्होंने इस विषय में खूब खुलकर बातें की हैं ? अगर ऐसा नहीं, तो रीता के शारदा द्वारा रोके जाने पर उन्होंने आश्चर्य क्यों प्रकट किया ? क्या इसी शारदा के पास रीता कभी रातभर नहीं छोड़ दी गई थी ? तो आज यह शक क्यों ? संभव है रीता ने ही माँ से कोई चाल चली हो !

‘इस तरह की कई सम्भावनाएँ पर मैं गहराई तक सोच ! गया कुछ निश्चयात्मक परिणाम पर नह पहुँच सकने के कारण मैंने सोचा कि रीता से ही कुछ प्रश्न करना चाहिए !

मैंने पूछा—रीता ! तू शारदा को, भाभी से, दीदी क्यों कहने लग है ?

“रीता ने पूछा—‘आप मुझे रीता क्यों कहने लगे हैं ?’ रीता के प्रश्न से ही मेरा उत्तर मिल गया ! मैं निश्चिंत हो गया ।

“मैंने पूछा—‘मेरे विषय में तुम्हारे यहाँ चर्चा चलती है ?’

“खूब चलती है !’

“क्या-क्या ?’ मैंने उत्सुकता से पूछा ।

‘रीता बोली—‘हजार तरह की बातें ! मैं आपकी वहाँ इतनी शिकायत इतनी निन्दा करती हूँ कि घरवाले निहाल हो जाते हैं। तभी न माँ को, उस दिन शारदा दीदी की बात पर आश्चर्य हो गया था। वे समझती हैं कि मैं एकदम भोलीभाली और बड़िया बिटिया हूँ। आपने ही मुझे बरगला रखा है। सामखा मेरे पीछे पड़े हुए हैं !

बात भी सही ही है ! आप क्यों मुझ जैसी लड़की को इतना प्यार करते हैं ? मुझमें क्या रखा है ? काली हूँ ! कमजोर हूँ !! बीमार और गरीब हूँ !!! कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं मुझमें ?'

“मैंने रीता का मुँह हथेली से बन्द कर दिया और कहा—‘रीतू ! सुर्खाब के परों की जरूरत शारीरिक सुन्दरता को होती है । मैं तेरे ऊपरी रूप पर नहीं, तेरी कला पर समर्पित हूँ । तुझे अपने सपने का एक प्रतीक बनाना चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ, मेरे शब्द और तेरे स्वर मिलकर जीवन की कला को एक नई दिशा दें, नई मोड़ और नई जिन्दगी दें !’

“रीत ने मध्यमा अँगुली को मेरे होठों से लगाकर कहा—‘बस कीजिए कविजी ! बस ! कविता मत रचिए ! शब्द और स्वर दो वस्तुएँ हैं । उनकी शोभा अलग-अलग है । उन्हें दूर ही रहने दीजिए ।’

“मैंने कहा—‘रीतू ! मैं भला कौन हूँ दूर रहने देनेवाला ? हाँ, तेरे पिता-माता, तेरा समाज, तेरी तथाकथित पारिवारिक प्रतिष्ठा, ये सभी जरूर चाहते हैं कि काव्य को जंगल में बिलखता छोड़ दिया जाय और रागिनी को दरवार में आने का हुक्म दिया जाय ! रीतू ! तेरा समाज, आदमी नहीं चाहता । वह या तो खुदा चाहता है या शैतान !!! आदमी और इन्सान की जरूरत उसको नहीं है । वह चाहता है, ऐसा बठगुत्तया, जो अपने एक गुण से देवता कहला उठे और दूसरे ही अवगुण से राक्षस !! मनुष्य बनकर रहने देना इस दुनिया को गवारा नहीं है । कमजोरियों और खूबियों के मिट्टी-पानी से बने मानव की जरूरत, इस समाज को नहीं है रीतू ! यह समाज अपने मुँह पर कालिख पोतकर दूसरों की सूरत पर हँसनेवाला समाज है !!!’

“रीता को लगा कि कहीं समाज, जमाना और दुनिया के बहाने, मैं उसीपर तो व्यंग्य नहीं कर रहा हूँ ! उसने कहा—‘आप रीतू

को नहीं समझते ? नहीं समझ सकते उसे आप !'

"मैंने रीता को गुदगुदा दिया और कहा—'मैं तुझे खूब समझता हूँ ! मुझे बेवकूफ मत बना ।'

"रीता अपनी बेवकूफी पर हँसने लगी !

"मैंने पूछा—'रीतू ! तूने मीता को लेकर, व्यर्थ में, बातें इतनी क्यों बढ़ा दीं ?'

"रीता बोली—'मैं खुद आकर देख गई थी ।'

"क्या ?'

"एक दरवाजा बन्द था ! आपसे मीता बातें कर रही थी !'

"मैंने कहा—'रीतू ! मीता मेरी मित्र की तरह है ! व्यर्थ का सन्देहास्पद कलंक लगाकर मुझे बेमौत मत मार ! मुझपर रहम कर ! जो कुछ तूने देखा, उसमें क्या है ? क्या है उसमें ?'

"रीता ने कहा—'अच्छा ! मैं वह बात अपने दिमाग से निकाल देती हूँ । मीता मेरी सहेली है । मैं उसे माफ कर देती हूँ ।'

'रीता के दिमाग से शक नहीं गया । वह थोड़ी देर बैठकर मीता के यहाँ चली गई । जाते हुए बोली—'कल इसी वक्त आऊँगी ! खाना भी यहीं खाऊँगी ! क्या ख्याल है ?'

"मैंने एक चपत कसकर कहा—'बहुत बुरा !'

ललित ने पूछा—'कृष्ण भाई ! आपकी रीता के विषय में शुरू से आज तक कई तरह की बातें जानकर, मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वह आपके लिए ही पैदा हुई थी, और आपके लिए ही मर जायगी ।'

• कृष्ण कुछ नहीं बोला । ललित की इस मार्मिक बात से वह मर्माहत हो उठा था । कुछ क्षण बाद उसने कहा—'हाँ, तो आगे लिखो !'

"दूसरे दिन मीता ने आकर खाना खाया और बतलाया कि रात में सिनेमा चलने का प्रोग्राम है । मीता की भाभी, मीता, रीता

और मैं पहले शो में 'आवारा' देखने गए। रीता सीधे मीता के यहाँ पहुँच गई थी। मैं बाहर-बाहर वहाँ गया। रास्ते में रीता से मैंने कहा—'तुम विवाह करके भूल तो नहीं जाओगी मुझे ?'

"रीता रूठ गई। सिनेमा पहुँचने तक बोली नहीं। फिर जब कुछ हँसी की बात कही, तब जाकर मुँह खोला। किन्तु, भीतर, अभी तक वह करुणा और क्रोध से भरी हुई थी। मीता ने बहुतेरा समझाया-बुझाया, तब कहीं वह मेरी बगल में बैठी। सिनेमा से साथ लौटते समय रास्ते में उसकी एक सखी ने उससे पूछा—'कहाँ ?'

"मरने !' उसने कहा।

"उस दिन सिनेमा में मैंने उसे विवाहवाली बात कहकर हला भी दिया था। उसने गुस्से में आकर मीता से कहा—'तुम इधर आकर बैठ जाओ।' मगर मीता के समझाने पर वह मेरे पास ही बैठी रही। जब मीता को उसके घर पर छोड़कर रीता मेरे साथ चली तब मैंने कहा—'चलो, जरा मेरे यहाँ भी बैठ लो !'

"उसने कहा—'नहीं ! नहीं जाऊँगी !'

"मैंने कहा—'कम से कम एक-दो मिनट के लिए चलो।

"वह मेरी अवज्ञा करके जाने लगी, तब मैंने चिल्लाकर कहा—'रीतू !' मैं इतने जोर से चिल्लाया कि महल्ले भर के लोग रास्ते की ओर मुखातिब हो गए। शारदा भी खिड़की से देखने लगी। रीता ठहर गई। मैंने लपककर उसका हाथ पकड़ा और घर में ले गया। पागल की तरह मेरी यह हरकत देखकर शारदा घबड़ा गई। रीता ने अन्दर आकर कहा—'कहिए, क्या कहना है ?'

"मैंने कहा—'तुम आ क्यों नहीं रही थीं ?'

"कोई इस वक्त आते देख लेता तो ?'

"ओ ! यह बात है ! पति का भय होने लगा है ! कहीं तुम आचरणहीन न समझ ली जाओ। ठीक है ! जाओ ! चली जाओ अभी यहाँ से ! तुम्हारे प्यार का पुरस्कार मिल चुका मुझे !'

“इतना कहकर मैं आंगन में चला गया और रीता उठकर अपने घर चली गई। मेरी मनोदशा कुछ ऐसी हो गई थी कि उस वक्त मैं किसीकी हत्या भी कर सकता था। मैं बैचैनी से इधर से उधर घूमने लगा। शारदा जब पास आई तो उससे कहा—‘शारदा ! जरा सिर पर पानी दो ! लगता है, पूरा मस्तिष्क बम की तरह फटकर बिखर जायगा।’

“शारदा ने कहा—‘सर्दी है ! पानी ठीक नहीं होगा। चलिए, तेल मल देती हूँ।’

“शारदा मुझे सहारा दिए हुए पलंग तक ले गई। सिर में तेल डालकर धीरे-धीरे मलने लगी। सिर दबाते हुए उसने पूछा—‘सिनेमा गए थे क्या?’

“हाँ !’

“रीता को इस तरह क्यों पकड़कर ले आए ! मुहल्ले के लोग देख रहे थे !’

“मैंने आश्चर्य से पूछा—‘मैं उसे पकड़कर ले आया था क्या ? मुझे कुछ नहीं मालूम शारदा ! मैं होश में नहीं हूँ। लगता है, बहुत शीघ्र धड़कनें बंद हो जायेंगी। जरा जोर से सिर दबाओ। मैं नहीं जीऊँगा शारदा ! मेरी यह अन्तिम घड़ी है। रीता मुझसे छीन ली गई है ! उसका विवाह होने जा रहा है ! मेरी मौत आ रही है !’

“इतना कहकर मैं रोने लगा। शारदा थोड़ी देर तक तो मुझे सम्हालती रही; फिर वह भी रोने लगी। अगर उस वक्त मैं रो नहीं पड़ता तो निश्चय पागल हो जाता।

“शारदा मेरी हालत देखकर चट्टान-सी खड़ी हो गयी और बोली—‘सुनिए आप रीता से विवाह कर लीजिए ! मैं आपकी मृत्यु अपने पति के रूप में बर्दाश्त कर सकती हूँ। मैं विधवा होकर अपना जीवन काट लूँगी, मगर मैं आपके बलाकार की मौत नहीं देख सकती ! आपकी कला की हत्यारिन बनकर मैं नहीं जी सकती ! आप

रीता को कह दें कि वह तैयार हो जाय। मैं तैयार हूँ ! रीता इस घर में मेरी सौत नहीं, मेरी छोटी बहन बनकर आएगी— मेरी अपनी छोटी बहन! आप उससे कल कह दीजिए!’ शारदा मेरे आंसू पोंछने लगी।

“वह भी रो-रोकर बोन रही थी। मैं भी रोते-रोते सुन रहा था। हम दोनों का रोना सुनकर सुषमा जग गई। शारदा ने उसे डाँट-कर सुला दिया। मैं उठकर बँटक में चला गया। करीब दो बजे रात तक मैं रोता रहा। शारदा भी रोती रही। दोनों जैसे एक ही चक्की में पिस रहे हों !’

“दूसरे दिन स्कूल जाते वक्त रीता आई। बहुत देर तक इधर-उधर की बातें हुईं। मैंने कहा—‘रीतू ! रात मेरी हालत बहुत खराब हो गई थी। तेरे विवाह की बात से मैं घबड़ा गया हूँ। शरीर, हृदय, मस्तिष्क किसीपर मेरा अधिकार नहीं रह गया है ! तेरी दीदी से रात मैंने सभी बातें कह दीं। उन्होंने कहा—‘रीता को यहाँ ले आइए ! वह मेरी छोटी बहन बनकर रहेगी !’

“रीता मेरी ओर देखने लगी। शारदा ने रीता को मेरे पास देखा तो अन्दर आ गई। आते ही रीता उसके पैरों पर गिरकर रोने लगी। शारदा भी रोने लगी। मैं डबडबा गया। शारदा ने कहा—‘तुम चली आओ यहाँ ! हमलोगों को मिलकर इन्हें बचा लेना चाहिए ! आओगी?’

“हाँ !’ रीता रोते हुए बोली।

“उसी वक्त सुषमा और दीपक अन्दर आ गए। शारदा उन्हें लेकर अँगन में चली गई। रीता ने कहा—‘मुझे कहीं बाहर भेज दीजिए ! मैं जरा मजा चखा दूँ उनलोगों को, जबदस्ती विवाह करने का !’

“मैंने कहा—‘ठीक है ! कल मैं बन्दोबस्त करता हूँ ! तुम अभी स्कूल जाओ। उधर से लौटते हुए मिलो !’

“रीता स्कूल चली गई। मैं गोपाल से मिलकर राय लेने चला गया। मेरा दिल बड़-घड़ कर रहा था। हम दोनों बहुत देर तक विचार-विमर्श करते रहे।

“गोपाल ने कहा—‘यह अच्छा नहीं होगा कृष्ण ! लोग क्या कहेंगे ! रीता और तुम्हारे परिवार की प्रतिष्ठा, तुम्हारी अपनी प्रतिष्ठा के सामने राई-भर भी अस्तित्व नहीं रखती । तुम्हें सारा देश जानता है । सभी लोग अँगुलियाँ उठाएँगे । रीता भी चैन से नहीं रह सकेगी । तुम कलाकार हो । अभी नहीं मालूम हो रहा है । जब रीता दो वर्ष रह लेगी, तुम अपने आप को बदला हुआ पाओगे ! और, हमलोगों का तो अस्तित्व ही मिट जायगा !’

“मैंने कहा—‘गोपाल ! कम से कम रीता के लिए ऐसी बातें मत करो । वह मेरी सर्वस्व है । मैं उसे शरीर, हृदय और मस्तिष्क से ही नहीं, आत्मा से प्यार करता हूँ । वह मेरी जिन्दगी है ! जिन्दगी है गोपाल !!’

“गोपाल ने कहा—‘क्या यह उन्माद, क्या यह भावावेश स्थायी है कृष्ण ? तुम इतने बड़े कवि हो ! सोचो ! क्या कविता लिखने के समय जो उन्माद सिर पर सवार होता है, वह बाद में भी रह जाता है ? क्या यह भावुकता रीता, शारदा और तुम्हारे लिए उचित होगी ?’

“मैं हारकर चुप हो गया । मैंने पूछा—‘तब तुम क्या कर देते हो ?’

“गोपाल बोला—‘जीवन भर जलो ! रीता को जलने दो !! रीता के पति, उसके पिता-माता, समाज, संसार, दोस्त-दुश्मन, सभी के हाथों में तलवार देकर, जीवन-भर अपनी गर्दन बलिवेदी पर झुकाए रहो । तुम इससे खोओगे नहीं कृष्ण ! पाओगे ! बहुत कुछ पाओगे ! मेरी बात मानो !’

“मैं कुछ नहीं बोला । उठ कर घरपर चला आया । ४ बज गए थे । मगर रीता स्कूल से लौटकर नहीं आई थी । मीता ने आकर पत्र दिया —[मैं उर्मिला की शादी में नहीं जा रही हूँ । आप भी मत जाइएगा । माँ जाएँगी । शाम में आऊँगी । उन्होंने दूसरों से कह दिया है कि मैं अपनी चाची के घर जा रही हूँ, दूसरे मुहल्ले में ।

यह झूठ है, ताकि आपको यहाँ मेरे रहने की खबर न हो जाय ! — रीतू !']

“मैं उर्मिला की शादी में दस-पन्द्रह मिनट के लिए गया और तुरत लौट आया । रीता करीब आठ बजे आई । सरोज पहुँचाने आया था । पहुँचाकर वह घर लौट गया । रीता ने कहा—‘मैं कहीं भी जाने को तैयार हूँ, सिर्फ आपकी खातिर ! अपने सच्चे प्यार की खातिर ! मगर रह-रहकर दिल धड़क उठता है । लाख बार सोच कर भी मेरा मन नहीं कहता कि तुम कृष्णजी के योग्य हो ! आखिर मुझमें क्या है ! मैं तो कहती हूँ, मेरे प्रियतम ! मेरे आराध्य !! इस जिन्दा लाश को गज्जू बाबू की ही चिता पर सुलगने दो । इसमें क्या रखा है ? कुछ भी नहीं । मैं सब तरह से पूर्ण हो चुकी हूँ । मैंने क्या नहीं पाया ? मैंने तुम्हारा दुर्लभ प्यार पाया । जिन्दगी पाई ; इतना बड़ा कलाकार पाया । मैंने तुम्हें पा लिया, बस, सब कुछ पा लिया !!!’ रीता इतना कहकर गले से लिपट गई । आँखें उसकी बरस रही थीं । कितनी कातर, कितनी विह्वल हो गई थी वह ! मैंने उसकी विह्वलता समझ ली । बोला—‘रीतू ! तू यदि यह समझकर रोने लगती है कि तेरे विषय में मैं न जाने क्या सोचता हूँ तो तू मेरे साथ अन्याय करती है । मैं तेरी मजबूरियाँ समझता हूँ ! तेरे पिता-माता की भी मजबूरियाँ समझता हूँ । अपनी भी समझता हूँ । और सुन ले ! मैंने आज एक बात तय कर ली है । हिमालय की तरह कलेजे को मजबूत करके निश्चय कर लिया है कि तेरी शादी गज्जू बाबू से ही होगी ! मेरी अनुमति है !!!’

“रीता मेरी गोद में गिरकर जोर-जोर से रोने लगी । मैं नहीं रोया । मैं कहता गया—‘रो मत रीतू ! उठ और बहादुर बनकर परिस्थितियों का सामना कर ! अगर तेरा हिन्दू-समाज यही चाहता है कि एक नारी, एक-साथ, दो-दो पतियों का वरण करे, तो कर ! समाज के मुँह पर समाज का ही जूता मार ! यह इसी के लायक है ! प्यार

ऐसी चीज नहीं रीतू, जिस पर पिता, माता, पति, पुत्र और नियम-कानून अपनी कठोरता से रोक लगा दें या उसका अस्तित्व मिटा दें। मगर मुझे दुख बस एक ही बात का है रीतू ! मैं एक भयानक बात को तुझसे आज तक छिपाये रहा, और इसलिए छिपाए रहा कि गज्जू-बाबू तेरे होने वाले पति हैं। किन्तु तुझसे मैं कुछ भी छिपाकर नहीं रख सकता। यह भेद भी नहीं। तो, हृदय कठोर करके सुन !—तेरे भावी पति के ही एक मित्र से मुझे मालूम हुआ है कि वे मशहूर शराबी और वेश्यागामी हैं; अपने शहर की रंडियों के यहाँ उनका अड्डा रहा है। यहाँ भी मैं दो-तीन बार उन्हें टेलीफोन-गर्ल्स के साथ देख चुका हूँ। तेरा जीवन नरक बन जायगा, मैं इसकी कल्पना से ही काँप उठता हूँ रीतू ! ओह ! यह कितना बुरा हुआ है !’

“रीता को इस खबर से जरा भी दुख, जरा भी अचरज नहीं हुआ। उसने निर्लिप्त भाव से कहा—‘मैं यही चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि मेरा पति वेश्यागामी, चोर, गुंडा, शराबी और डाकू हो, ताकि मेरे पिता-माता को अपनी मरजी से मेरी शादी करने का भरपूर फल मिल जाय ! वे देखें कि मैं कितने आनन्द और सुख में जीवन व्यतीत कर रही हूँ !!’ उसने एक क्रूर मुस्कराहट से यह वाक्य समाप्त किया।

“मैंने कहा—‘रीतू ! अपनी जिन्दगी को नरक में डालकर दूसरों को फल चखाने के भला क्या मानी हैं ?’

रीता बोली—‘मुझे अपने विषय में सोचने का अधिकार नहीं है देव ! मैं तो बकरी हूँ, बकरी ! किसी भी कसाई के हाथ में मेरी डोरी धराई जा सकती है !’

‘इसी तरह रीता और मैं कोई दो घंटों तक बातें करते रहे। वह चलते समय बहुत प्रसन्न थी। उसने कहा—‘कल बाग में जाने का विचार है। मीता भी आएगी ! आप दो बजे वहाँ जरूर पहुँच जाइएगा।’ रीता रात में दस बजे अपने घर चली गई।

“दूसरे दिन दो बजे में नहीं जा सका। एक जरूरी काम से ‘आकाश’ के स्वामी के साथ बाजार चला गया। बाजार से चार बजे लौटा तो शारदा ने कहा—‘मीता और रीता दो बार आकर आपको खोज गई हैं। रीता ने एक पत्र दिया है। मेज की दराज में है।’

“मैंने पत्र पढ़ा। क्या पत्र था ! ओह !!—

[चोर कहीं के !!

.....!]

मैं उस पेड़ के पास एक घंटा तक खड़ी रही। मीता और मैं। परन्तु आपके दर्शन नहीं हुए ! क्यों नहीं आए आप ? वाह रे आप और आपका आना !

उफ् ! कितना इन्तजार कराया आपने !

इधर-उधर भटकती रही और ‘चोर कहीं के !’ बोलती रही। क्यों नहीं आए ? मैं आपपर बहुत खीज रही हूँ ! क्यों ऐसा करते हैं आप ?

चोर कहीं के !!! खैर, दूसरे दिन सही !

उन्हींकी—रीतू !’]

“रीतू का वह पत्र पढ़कर मैं तड़प गया। ‘चोर कहीं के !’ यह उस ‘तुम’ से भी कितना प्यारा और मीठा है। ‘चोर कहीं के !’ उफ् ! मुझ कवि को चोर कहनेवाली स्वरमयी रीतू ! मगर तू कहाँ जा रही है ? किसके पास जा रही है ? उफ् ! उफ् !!! ‘आराध्य !’ ‘तुम’ !!!’ चोर कहीं के !!!”

कृष्ण इतना लिखाकर अचानक चुप हो गया।



बुझने के पहले

ललित को आज सिगरेट पीते हुए देखकर कृष्ण ने कहा—‘तुमने भी पीना शुरू कर दिया क्या ललित ?’

‘हाँ !’

‘क्यों ?’

‘कल रात को मैं इतनी-इतनी अजीब बातें सोच गया कृष्ण भाई ! कि आप सुनकर कहेंगे—ललित पागल है ! पहले दर्जे का अहमक है !’

‘बात क्या है ललित ?’

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! कल रात में खाट पर पड़ा पड़ा मैं सोचता रहा कि अगर मैं रीता का पिता या उसका भाई होता तो क्या करता !’

‘क्या करते ?’

‘मैं आपको इतनी बड़ी मुसीबत में डाल देता कि आप मुझे जिन्दगी-भर नहीं भूलते ! मैं आपकी शादी रीता से कर देता !’

‘ललित ! तुम जानते हो, मैं तीन बच्चों का बाप और शारदा का पति हूँ ?’

‘हाँ, जानता हूँ । मगर उसके बाद, यह भी जानता हूँ कि भारतीय नारी, जीवन में एक पुरुष को ही अपना पति बनाती है ।’

‘वह युग चला गया, ललित ! और स युग में भी ऐसा नहीं होता था । सीता - सावित्री के साथ-साथ कुन्ती और द्रौपदी का भी देश यही है ! फर्क यही है कि अब समाज अपनी सन्तानों को राम और सीता बनाने की इच्छा करके उन्हें रावण और द्रौपदी बना देता है !’

ललित ने कहा—‘खैर, जो कुछ हो ! मगर मैं उन लोगों में नहीं हूँ कृष्ण भाई !’

कृष्ण बोला—‘ललित ! चूँकि हम-तुम रीता के अभिभावक नहीं हैं, इसीलिए बढ़-बढ़कर ऐसी बातें कर रहे हैं ।’

ललित ने कहा—‘तब आप मुझे नहीं जानते कृष्ण भाई ! मैं क्षत्रिय हूँ; लेकिन मेरी बहन की शादी एक ब्राह्मण युवक से हुई है । उन दोनों में प्रेम हो गया था । उस ब्राह्मण युवक की पहली पत्नी भी जीवित ही हैं । बहन सुधा का कहना था कि विवाह करूँगी तो उसीसे, वरना जहर खाकर मर जाऊँगी । मैंने पहले तो उसे बहुत समझाया, किन्तु जब उसने नहीं माना तब मैं ही मान गया; उसीसे उसकी शादी कर दी । मेरे चाचा और प्रायः सभी रिश्तेदार मेरे दुश्मन बन गए । खैर, अब तो सभी ठीक हैं; सुधा आती है तब बुलाकर उसकी खातिर भी करते हैं; उसके पति को भी आदर देते हैं । यह सब विरोध तात्कालिक ही हुआ करता है कृष्ण भाई !’

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! जरूरत से ज्यादा बहक रहे हैं हम-लोग ! अब उपन्यास शुरू हो जाना चाहिए ।’

ललित लिखने बैठ गया तब कृष्ण ने कहा—‘अच्छा ललित एक बात बताओ ! अगर तुम गज्जू बाबू हो और यह उपन्यास पढ़ते तो क्या करते ?’

ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! आप विश्वास नहीं कीजिएगा ! अगर मैं गज्जूजी होता तो उपन्यास पढ़ते ही रीता को अपनी सगी बहन समझता और तुरत उसे अपने साथ, लेकर आपके चरणों में डाल

जाता । हाँ ! यह मैं नहीं जानता कि तब आप उसे स्वीकार करते कि नहीं !'

कृष्ण ने कहा—'लेकिन ललित ! अगर मैं गज्जू बाबू होता, तो रीता को पहले से कहीं ज्यादा प्यार और सत्कार देकर अपने पास रखता; उसे अपने जीवन का वरदान समझता; अपने भरसक, हर तरह से, उसे प्रसन्न रखने की कोशिश करता; अपनी सारी जिन्दगी उसकी इच्छाओं पर कुर्बान कर देता !'

ललित बोला—'आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया कृष्ण भाई ! अगर मैं गज्जूजी होता और रीता को आपके पास ले आता तो आप क्या करेंगे ?'

कृष्ण ने कहा—'यह उत्तर मैं तुम्हें उपन्यास खत्म होने के दिन दूंगा ललित ! सिर्फ चार पाँच रोज और ठहर जाओ । हाँ ! चलो, आगे लिखो !'

"दूसरे दिन रीता दिन के २॥ बजे के लगभग आई और साँझ ४ बजे तक रही । उसने आगे ही कहा—'माँ की पुरानी बीमारी आज-कल बढ़ गई है । सिर में चक्कर आते हैं । वे चाहती हैं कि जल्दी से जल्दी मेरी शादी हो जाय । उन्हें आपसे बहुत डर लगता है । कहीं आप मुझे लेकर भाग न जायँ । कहीं आप मुझे बाहर न भेज दें । कहीं आप मेरे होनेवाले पति से सारी बातें बताकर शादी न रूकवा दें । पिताजी तो घर पर हैं । उनकी भी कल एक चिट्ठी आई है । मुझे 'टुनटुन बिटिया' लिखकर मेरे व्यवहार पर बधाई दी है । आपकी मैं शिकायतें जो करती हूँ वहाँ ! पिता, माता, भाई, पति, सभी आपकी बुराई सुनने को आतुर हो गए हैं । मेरा क्या जाता है ! जैसा पशु, वैसी घास !!!'

"मैंने कहा—'रीतू ! वे मुझे नहीं समझते ! मैं उनका यज्ञ ध्वस्त नहीं करूँगा । हाँ, यज्ञ के बाद मैं कह नहीं सकता, मैं क्या करूँगा !'

"क्या कीजिएगा ? मेरी चिट्ठियाँ दिखाकर मुझे कहीं की भी न रखिएगा—और क्या कीजिएगा !'

“नहीं नहीं रीतू ! यह कभी नहीं करूँगा, यह कभी नहीं । मैं तुझे अमर करूँगा, मेरी रीतू ! बाँहों में तुझे नहीं बाँध सका, पर साहित्य में अवश्य बाँधूँगा; साहित्य को तुझसे अमर कर दूँगा ! तेरी आज्ञा चाहता हूँ ! प्राण ! अगर तू चाहेगी तो....।’

“जरूर चाहूँगी मेरे प्रियतम ! जरूर चाहूँगी ! मेरी और कोई चाह नहीं है । मैं आपको साहित्य में शराबोर देखना चाहती हूँ । आप लिखें ! लिखें !! और लिखते जायें !!! मैं और कुछ नहीं चाहती । अगर आपकी लेखनी मुझ-जैसी पापिन और कुपात्र पर कृपा कर दे तो यह मेरे हजारों जन्मों का संचित पुण्य होगा; और कुछ नहीं !’ रीतू गर्व से चमक उठी ।

‘मैंने कहा—रीतू ! कल महाकवि भारती से भेंट हो गई थी ! उन्होंने मेरे बालों पर हाथ फेरते हुए पूछा—क्या बात है कृष्ण ! तुम्हारे केश दिन-ब-दिन लहरदार होते जा रहे हैं ? कहीं.....।’

‘मैंने कहा—‘जी नहीं ! दिल का बाँकपन-भर बालों में आ गया है !’

‘वे मुस्कराकर रह गए । रीता ने मेरे केशों को उठकर चूम लिया और कहा—‘आवारा’ का वह गीत जरा साथ-साथ गाइए न !—‘एक बार उधर मुंह फेरे ओ चन्दा ! मैं तुझको प्यार कर लूँगा !’

‘रीता और मैंने वह गीत कई बार गाया । शारदा छत पर बैठी पड़ोस की एक देवीजी से बतिया रही थी । जाते समय रीता बोली—‘कल जरूर आऊँगी । इसी वक्त ! कहीं जाइएगा नहीं । पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द है । रात, लगा कि बुखार आ जायगा ।’

‘दूसरे दिन छह बजे तक रीता नहीं आई । ६॥ बजे सरोज एक पत्र लेकर आया—

[मेरे आराध्य !

.....!]

मैं तो वादा करके आई थी कि आऊँगी, मगर नहीं आई । इसका

का मुझे बहुत दुःख है । मैं कर भी क्या सकती हूँ । मैं विवश होकर नहीं आ सकी । मुझे अपनी विवशता पर क्रोध आता है ।

मैं मानती हूँ देव ! कि प्रीति से विवशता बड़ी नहीं है । पर उपाय ही क्या है ?

मेरे आराध्य देव ! क्या मैं आशा करूँ कि आप रीतू की विवशता से सहानुभूति करेंगे ? कुछ सूझ नहीं रहा है कि क्या लिखूँ । अभी मेरी मानसिक स्थिति अच्छी नहीं है । मैं बहुत दुखी हूँ !

आप खाना अवश्य खा लेंगे ! आपको मेरी शपथ ! क्षमा कर देंगे न ? बोलिए तो !!!—आपकी ही रीतू ।

पुनश्चः—अभी इच्छा हो रही है कि आप पास होते तो.....! क्या कुछ भी नहीं ! अब लिखा नहीं जा रहा है ! मृत्यु का दिन निकट आ रहा है, ऐसा लगता है ! जिसे आप सदैव रीतू पुकारते रहे हैं, वह क्या अच्छी है ?

‘प्रेम और मृत्यु दो ही चिरन्तन सत्य हैं !!!’ बहुत बुरे हैं आप ! आपको अच्छा कौन उल्लू कह सकती है ???

—आपकी ही सिर्फ—रीतू !]

“उस दिन वह चिट्ठी ही मेरे पास रही । उसे मैं पचीसों बार पढ़ गया । उसके सैंकड़ों अर्थ निकाल गया । शारदा ने आकर कहा—‘आपने अपना पहला फैंसला बदलकर ठीक ही किया है । मैं अपने स्वार्थ से यह बात नहीं कर रही हूँ । आप जरा रीता की माताजी की हैसियत से सोचिए, उसके पिताजी और भाई की स्थिति में विचारिए तो आप कहेंगे कि उस की शादी उसी की जाति के किसी अविवाहित लड़के से होनी चाहिए और पिता-माता की पसन्द से । तिलक हो, बारात आवे, फेरे लगें; दुलहिन रोती हुई डोली में सवार होकर ससुराल चली जायँ !’

“शारदा की बातों से मैं ठठाकर हँस पड़ा । मैंने कहा—‘शारदा ! और बातें तो मैं नहीं जानता । मगर इतना जरूर जानता हूँ कि जहाँ

लड़कियाँ धिदा के समय आँसुओं से रोती जाती हैं, वहाँ रीता खून से रोती जायगी ! डोली वही, कहार वही, बाजे-गाजे भी वही होंगे, मगर दुलहिन वह नहीं होगी शारदा ! दुलहिन वह नहीं होगी !! माँ और बाबूजी का रोती जानेवाली दुलहिन वह नहीं होगी ! वह मेरे नाम पर रोती जायगी—मेरे नाम पर ! ! !'

“शारदा चुपचाप अन्दर चली गई और कई घंटों तक बैठक में नहीं आई ।

“रीता दूसरे दिन भी नहीं आई; आई उसकी चिट्ठी । सरोज लेकर आया था । मैं उस चिट्ठी का सम्बोधन देखकर देखता रह गया । शारदा ने पूछा—‘किसकी चिट्ठी है ?’

“मैंने कहा—‘बुझने के पहले, दीए को देखा है तुमने ?’

“हाँ तो ?’

“उसीकी है !’

शारदा मेरा मतलब समझ गई । उसने अपने हाथ में पत्र ले लिया और जोर से पढ़ने लगी—

[साले कहीं के !’

.....!

मैं आज भी नहीं आ सकूंगी । मुझे कुछ बुखार हो आया है । गर्दन कुछ सूज गई है । आप भी तो उस दिन बाग में नहीं आए थे । मैं और मीता इन्तजार करते-करते.....! उफ् !

अच्छा ! कोई बात नहीं है साले ! इसका बदला जरूर लूंगी । आपने मुझे समझ क्या रखा है !

क्षमा कर देंगे । उसी पत्र की तरह उत्तर देंगे । देंगे या दीजिएगा हुजूर ! ! !’

बस !—साली—रीतू ।]

जब शारदा ने रीता का वह ऐतिहासिक पत्र पढ़ा तो सरोज ठठाकर हँसने लगा । उसका हँसना देखकर हम दोनों हँस पड़े । सरोज ने

कहा—‘दीदी ने एक कहानी भी लिखी है । जरा इसे शुद्ध कर दीजिएगा । मैं जा रहा हूँ ।’ पाकिट से कागज के चार पन्ने मेज पर रखकर सरोज भाग गया । कहानी यह थी—

[मुक्ति]

‘हाँ देखो , रेखा ! आज मैं शायद ही लौटूँ । मेरी प्रतीक्षा मत करना । अच्छा, मैं चला (कुछ रुक कर) जाऊँ न ?’

‘जाओ ! मैं मना थोड़े कर रही हूँ !’ रेखा के होठों पर वेदना-भरी मुस्कुराहट फैल गई । शेखर शायद इस मुस्कुराहट का तत्त्व नहीं समझ सका ।

‘जाता हूँ ! किवाड़ लगा देना !’

‘अच्छा, लगाए देती हूँ !’

रेखा किवाड़ लगाकर आई तो मन न जाने कैसा-कैसा हो रहा था । वह पलंग पर लेट गई । वह सोचने लगी—आह ! मेरी भी कोई जिन्दगी है ! पिंजड़े में बन्द पंछी की तरह खुलकर साँस भी नहीं ले सकती । क्या मैं घुट-घुटकर मर जाऊँगी ? फिर न जाने कितनी देरतक वह करवटें बदलती रही । पर नींद नहीं आई ! नहीं आई !! घड़ी ने टन्-टन् बोलकर बारह बजे की सूचना दी । बाहर बारिश हो रही थी । रेखा खिड़की खोलकर बाहर की ओर टकटकी लगाए देखती रही । उसके बालों पर वर्षा की बूँदें पड़ रही थीं । रेखा उसी तरह खड़ी रही । उदास ! खिन्न !!

भादों की काली-काली रात ! जोरों की वर्षा ! बिजली की चमक ! पपीहे की वेदनाभरी पुकार ! झिंगुरों का शोर ! हवा की डालों से अठखेलियाँ ! निर्झरिणी का झर-झर स्वर !! हृदय को कोई बार-बार झकझोर देता था ।

ठीक ऐसे ही समय में, किसी की कण्ठा-भरी स्वर-लहरी गूँज उठी !!!—‘याद में तेरी, जहाँ को भूलता जाता हूँ मैं !’

न जाने इस स्वर में कितना दर्द, कितनी व्यथा थी ! रेखा का शरीर काँप उठा । उसकी आँखें बरस पड़ीं । हृदय की गति तीव्र हो गई ।

किसी की भूली स्मृति छाया बनकर आँखों में उतर आई । कवि मोहन की बातें उसे याद आ रही थीं । उसने अपने घुँघराले बालों पर हाथ फेरते हुए कहा था—‘तुम जहाँ भी रहो रेखा ! मैं तुम्हें नहीं भूल सकूँगा । तुम्हारी याद बराबर सताया करेगी ! बराबर !!’

रेखा को ऐसा लगा—जैसे मोहन सचमुच गा रहा है । रेखा को उसकी मर्महित आवाज रह-रहकर कँपा देती थी । रेखा रुक नहीं सकती । वह किवाड़ खोलकर बाहर आ गई । बाहर बड़े जोरों की वर्षा हो रही थी । उसने बिजली की चमक में महसूस किया—मोहन वृक्ष के नीचे गा रहा है ! भींग रहा है ! गा रहा है !

क्या वह सचमुच मोहन है ? मेरा मोहन ! रेखा वहीं बेहोश होकर गिर पड़ी ।

सुबह जब शेखर आया तो देखा, उसकी पत्नी रेखा के प्राण इस निष्ठुर संसार को छोड़ चुके हैं । निर्जीव शरीर रह गया है सिर्फ !

तब एकाएक शेखर को याद आया कि रेखा से उसने एक दिन पूछा था—‘रेखा, मैंने तुम्हारे चेहरे पर कभी प्रसन्नता नहीं देखी । तुम आखिर ऐसा क्यों करती हो ? रेखा ! मुझे बहुत दुख होता है !’ तो रेखा ने कहा था—

‘नहीं नहीं ! मैं तो हमेशा खुश रहती हूँ । तुम्हें भ्रम है !’

‘आखिर तुम क्या चाहती हो ?’

‘कुछ भी नहीं ! हाँ ! यदि तुम चाहो तो हो सकता है !

‘क्या ?’ शेखर ने पूछा था ।

‘मुक्ति !’ रेखा मुस्कराकर बोली थी ।

चिता धू-धू कर जल रही थी ! शेखर बुदबुदाकर कह रहा था—‘हाँ ! जाओ रेखा ! तुम्हें तो स्वयं ही मुक्ति मिल गई । अब मैं भी मुक्ति ही लेकर आऊँगा !’

मोहन को शायद नहीं मालूम कि रेखा अब नहीं रही ! नहीं रही !!!]”

इतना लिखकर ललित दिली बेचैनी से घबड़ा उठा । वह उठकर सामने के कुंज की ओर चला गया । वहाँ कुएँ से पानी भरकर पीने लगा । आँख-मुँह धोकर जब वह इधर-उधर घूमने लगा तब कृष्ण ने पुकारा—‘ललित ! चलो भाई ! बेकार समय मत बर्बाद करो । देखो ! मैं अब सिर्फ दस-पन्द्रह मिनट ही और लिखाऊँगा ! आओ ! बैठ जाओ ! अब आगे कोई खौफनाक बात नहीं है ! आ जाओ !’

ललित धीरे-धीरे आकर बैठ गया और चुपचाप लिखने लगा ।

“तीसरे दिन सुबह गन्दी साड़ी पहने हुए रीता आई तो मैंने पूछा—‘आज यह क्या सूरत बना रखी है तुमने ? गन्दी साड़ी ! सोने का हार ! सोने के कर्णफूल !!! क्या बात है ?’

“रीता बोली—‘मैं मीता के घर आई हुई हूँ । माँ चाची के यहाँ चली गई हैं । ये गहने उसीके हैं । नहाने जा रही थी तो मन में आया, आपके दर्शन कर लूँ !’

“मैंने हँसकर कहा—‘दर्शन नहाने के बाद किया जाता है रीतू !’

“रीता तुरत बोली—‘देवता का ! चोर का नहीं !!’

“हम दोनों ठठाकर हँस पड़े । शारदा भी आकर हँसी में शामिल हो गई । शारदा ने कहा—‘रीता ! तुम्हारे लिए कविजी कल सौ रुपए का एक केमरा खरीद लाए हैं । फोटो खिंचवा लो !’

“रीता ने कहा—‘साड़ी गन्दी है ।’

“मैंने कहा—‘फोटो के लिए अच्छी है । चलो, आँगन में ।’

“शारदा और रीता, दोनों आँगन में आ गईं। एक फोटो, शारदा और रीता का, एक साथ लिया। रीता के अलग-अलग सात फोटो लिए। रीता ने कहा—‘थोड़ी देर में माँ मीता के यहाँ आ जाएँगी; मैं जा रही हूँ। कलाप्रसार-केन्द्र में जाना है। शान्ता और मृणालिनी भी जा रही हैं। आप जरूर आइएगा। और फोटो के प्रिन्ट भी लेते आइएगा। शाम के सात बजे। भूलिएगा मत !’

“रीता तुरत चली गई; उसे देर हो रही थी।

“मैं शाम में फोटो तैयार कराके कला-प्रसार-केन्द्र पहुँचा। बाहर दो तीन अभिनेता बतिया रहे थे। नायकजी भी एक तरफ खड़े-खड़े बीड़ी पी रहे थे। तब तक डाइरेक्टर श्री सिंह जी भी आ गए। एक अभिनेता ने कहा—‘सिंहजी ! आज तो नायकजी की पुरानी मित्र कोकिलाजी, काफी बढ़िया-बढ़िया माल लेकर आई हैं !’

“दूसरे अभिनेता बोले—‘सिंहजी आखिर उनकी इतनी खातिर काहेको करते हैं ! यार, सचमुच, उसमें एक चीज तो लाजवाब है !’

“सिंहजी मुस्कुराकर बोले—‘मगर मैं तो रीता पर जान देता हूँ ! कितनी चंचल है। क्रिया की प्रतिक्रिया उसी से मिलती है। बाकी सब गोबर हैं ! देखते ही मुँह घुमा लेती हैं !’

“यह सब सुनकर मैं काँप गया। यह कला-प्रसार-केन्द्र है !!! मैं पास के स्नानघर में खड़ा-खड़ा सब कुछ सुन रहा था। जब बाहर निकला तब सभी चुप हो गए। नायकजी ने कहा—‘नमस्ते कृष्णजी !’

“सिंहजी बोले—‘आओ यार ! कहाँ रहते हो आजकल ? दर्शन नहीं होते !’

“इतने में रीता बाहर आ गई। उसने पुकारकर कहा—‘जरा इधर आइए !’

“मैं रीता के साथ फुलवारी में बतियाने चला तो सिंहजी भी पीछे-पीछे लग गए । वे रीता को ऐसा देखने लगे जैसे मैं उनकी बीवी को ही अपने साथ लिये जा रहा होऊँ ! रीता ने कहा—‘बड़ा गुंडा आदमी है । मैं और मृणालिनी, उसकी औरतनुमा छाती पर हँसती हूँ तो वह समझता है कि हमलोग उस पर लट्टू ही हो गई हैं ! गदहा कहीं का ! ! !’

“रीता की बात एकदम सही निकली । मैं रीता से बात करते-करते जिधर जाता, सिंहजी उधर ही घूमकर सामने आ जाते और खड़े होकर सी० आई० डी० की तरह ताकने लगते । रीता ने उनकी ओर देखकर थूक फेंकते हुए कहा—‘अभी-अभी इसने दूसरी शादी की है; पहली बीवी से तीन-चार बच्चे भी हैं; मगर लड़कियों के पीछे लगे फिरने की आदत नहीं गई !’

“मैंने कहा—‘जाने दो, बेचारे को ! उसे क्या मालूम कि हमलोग किस गहराई तक उतरे हुए हैं ! वह बेचारा अपने हिसाब-किताब से ही तुमलोगों को सस्ती लड़कियाँ समझे हुए है । इसमें तुम्हारी माताजी का.....। खैर, एक बात बताओ ! तुम्हारे जाने का क्या हुआ ?’

“रीता बोली—‘परसों निश्चित रूप से जा रही हूँ । शादी का अभी कोई ठीक नहीं है । मगर मैं शायद अब नहीं लौट सकूँ । मुझे ऐसा ही लगता है । खैर, देखा जायगा । मेरे फोटो लाए हैं ?’

“मैंने रीता को आठो फोटो दे दिए । तब तक मृणालिनी और शान्ता भी आ गई । तीनों को आज केन्द्र में एक गीत गाना था । मैंने देखा कि कहीं कोकिलाजी न आ जायँ, बस, वहाँ से चल पड़ा । रीता ने कहा—‘कल दोपहर में ! बारह-एक के करीब !! यह अँगूठी किसने दी है ?’ उसने मेरी अँगुली की ओर देखकर पूछा । मैं बोला—‘तेरी दीदी ने !’ रीता शरमा गई ।

“दूसरे दिन वह एक बजे के करीब आई । उसने कहा—‘आज ही रात को, दो बजे, हमलोग जा रहे हैं । शादी अगले महीने तक हो जायगी । देखिए, आप घबड़ाइएगा मत ! मुझे आपकी बहुत चिन्ता है । मेरा क्या है ! जीना-मरना एक जैसा !! मैं अपने कलाकार को सौ वर्ष तक जीवित देखना चाहती हूँ !’

“ऐसा कहकर रीता ने मेरे माथे से अपनी ठुड़ी लगा दी । फिर वह सैनिक की तरह उठ खड़ी हुई और बोली—‘मुझे आशीर्वाद दीजिए । मृत्यु की गोद में जा रही हूँ ! मगर वहाँ भी मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए !’

“मैं कुछ नहीं बोल सका । मृतवत् चुपचाप उसकी ओर देखता रहा । उसने कहा—‘दीजिए, आशीर्वाद ! दीजिए न !’ उसने मेरा हाथ पकड़ लिया ।

“मैंने मेज पर रखी हुई ब्लेड उठाकर तुरत अपने दाहिने हाथ का अँगूठा चीर दिया और उसकी माँग खून से भरते हुए कहा—‘ले मेरा आशीर्वाद ! रीतू ! तू मरकर भी अमर है !!!’

“रीता ने झुककर मेरी चरणधूलि ली और उसे सिर-आँखों से लगाकर कहा—‘जरा दीदी को भी बुला दीजिए ।’

“मैंने शारदा को पुकारा । शारदा आ गई ।

“रीता ने कहा—‘दीदी ! जा रही हूँ । अब शायद भेंट नहीं हो । मुझे आशीर्वाद दीजिए !’ उसने शारदा के पैर छूने की कोशिश की ।

“शारदा ने लपककर रीतू को गले से लगा लिया । दोनों चीख-चीख कर रोने लगीं । मैं पागल की तरह बाहर भाग गया ।”

ललित ने कहा—‘बस ! बस ! अब खत्म कर दीजिए कृष्ण भाई ! पन्द्रह मिनट से ज्यादा हो गए हैं ! आप अब जा सकते हैं !’

यह कहकर उसने तुरत कौपी उठाई और कृष्ण से बिना कुछ कहे, लपकता हुआ फुलवारी से बाहर चला गया !!!



चारों तरफ अन्धकार !

आज अजायबघर का वह पेड़, जिसके नीचे ललित और कृष्ण रोज-रोज बैठते थे, रात की आँधी में टूटकर गिर गया है । कृष्ण ने उसकी ओर इशारा करके कहा—‘ललित ! यहाँ भी आँधी आई थी ! देखो तो, किस तरह जड़सहित उखड़ गया है बेचारा ! लता भी पिस गई है, बुरी तरह !’

ललित कुछ नहीं बोला । वह अगले पेड़ के नीचे जाकर बैठ गया । जब कृष्ण उसके पास आया तो ललित ने कहा—‘कृष्ण भाई ! आप को अपनी भावनाओं पर जितना बड़ा अधिकार है, उतना ही बड़ा अधिकार आप दूसरों के लिए क्यों सोच लेते हैं ! कृपा करके इस तरह की बातें न तो लिखाया कीजिए और न बोला कीजिए !’

कृष्ण मुस्कुरा पड़ा । उसने कहा—‘ललित ! तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम्हारा प्रकाशक एक लाजवाब उपन्यास चाहता है ! अब क्यों घबड़ाते हो !’

ललित ने कहा—‘मेरा प्रकाशक ऐसा उपन्यास नहीं चाहता । कृष्ण भाई ! वह शायद छापे भी नहीं इसे । उसे सस्ती प्रेम-कहानी वाला और जासूसी उपन्यास चाहिए । यह मनोविज्ञान, यह कल्याण, यह गहरी चिन्तना, यह बेतरह हँसा-रूला देनेवाली कलाकृति

हरगिज पसन्द नहीं आएंगी उसे ! आप उसे नहीं जानते । नोट छापनेवाला प्रकाशक है न !'

कृष्ण हँसकर बोला—'अच्छा-अच्छा ! चलो, लिखना शुरू करो । बेमतलब की बातें तुम्हें बहुत आती हैं !'

ललित कौपी निकालकर बैठ गया ।

"रीता के जाने के तीसरे दिन ही होली थी । मैंने एक दिन पहले उसे अवीर की एक पुड़िया मीता की मार्फत भिजवा दी थी । रीता ने भी दो पुड़ियाँ भेजी थीं । होली के तीन दिन बाद उसकी पुड़ियाँ मुझे मिलीं । मेरी होली, होली के तीन दिन बाद मनी । मैंने पुड़ियों का गुलाल माथे पर लगाया और उन्हें आलमारी में बन्द करके रख दिया । आजतक वे मेरे पास हैं !

"शारदा ने होली के दिन कई तरह के पकवान और न जाने क्या-क्या पदार्थ पकाये थे । मैंने कहा—'शारदा ! पिछली होली में तुमने रीता को नहीं खाने दिया था; इस बार मुझे मत खाने दो ।'

"शारदा ने कहा—'आप न खाएँ या मैं न खाऊँ, इससे होता क्या है ? रीता तो वहाँ भी उसी तरह उदास होगी । वहाँ भी उसने पकवान थोड़े ही छुए होंगे ।'

"शारदा की समझदारी और सहानुभूति से मैं स्तब्ध रह गया !

"रीता को ननिहाल पहुँचाकर कोकिलाजी फिर कुसुमा पधार गई । चर्खाक्लास से बहुत बार छुट्टी लेने के कारण नौकरी में भी कुछ गड़बड़ी चल रही थी । वे उसी के विषय में बात करने के लिए मेरे डेरे पर रात के करीब दस बजे आईं । मैं लेटा-लेटा रीता की ही बातें सोच रहा था । उन्होंने बैठते हुए कहा—'रीता को ननिहाल छोड़ आई हूँ । थोड़े दिनों के लिए उसे मंसूरी भेज रही हूँ । उसके चाचा वहीं नौकरी करते हैं । एकाध महीना वहीं रहेगी तो स्वास्थ्य सुधर जायगा । उसके विवाह को लेकर बहुत परेशानी

है ! कुसुमा में जरा भी मन नहीं लगता । सारी दुनिया उजाड़ लगती है !'

“मैं तो उन्हें देखते ही बौखला गया था, मगर उनकी करुणाभरी आकृति और दुखभरी बातें सुनकर द्रवित हो गया । मैंने कहा—‘देवीजी ! आप निश्चिन्त रहें; सब ठीक हो जायगा । किसी बात की चिन्ता मत कीजिए । भगवान आपका यज्ञ अवश्य सफल करेंगे । मैं आपके साथ हूँ ।’

“कोकिलाजी मेरे गोलमटोल ढंग से सारी बातें समझ गईं और बोलीं—‘आप हमलोगों से नाराज हो गए हैं ! मैं जानती हूँ । मगर मैं क्या करूँ !’

“इतना कहकर वे चुप हो गईं । उसी दिन मैंने एक दुखी-भीरु माता का मर्म समझा । समाज की रूढ़िगत परम्पराओं में बँधी एक गरीब माँ का हृदय, जैसे मुझसे कुछ भीख माँग रहा था । मेरा दिल बेचैनी से तड़फड़ाने लगा । मैंने कहा—‘मैं नाराज नहीं हूँ ! मैं अपनी किस्मत पर नाराज हूँ ! खैर, छोड़िए इन बातों को ! मेरे लायक कोई सेवा बताइए ।’

“वे बोलीं—‘बोर्ड के स्कूल में एक जगह खाली हुई है । अगर आप वहाँ सिफारिश कर दें तो काम बन जायगा ।’

“मैंने कहा—‘जरूर करूँगा । मैं कल ही बोर्ड के चेयरमैन से मिलूँगा । वे मेरे मित्र हैं ।’

“कोकिलाजी चली गईं । मैं उठकर आलमारी में रखे हुए रेडियो को खोलने गया तो रेशमी रुमाल में बँधी रीता की फूल-पातियाँ, चूड़ियाँ, लगा कि एक बार उछलकर मुझे भूत की तरह मार डालेंगी । मैं पीछे हट गया । थोड़ी देर तक हतप्रभ-सा खड़ा रहा । जब आगे बढ़कर रेडियो खोला तब वहाँ भी एक भयानक फिल्मी गीत बज रहा था—‘उन्हें मेरा खयाल आता तो होगा ! कभी दिल, दिल से टकराता तो होगा ! वे पा लेते तो होंगे दिल

पर काबू ! उन्हें यह भी कमाल आता तो होगा ।’ उफ् ! उफ् !
यह कौन-सा गाना है !!!

“मैंने रेडियो तुरत बन्द कर दिया । हर तरफ वही आग ।
वही आवाज ! चारों तरफ अँधेरा ही अँधेरा ! आग ही आग !
धुआँ ही धुआँ ! कहीं भी जिन्दगी नहीं !!

“दूसरे दिन सुबह शारदा ने आकर कहा—‘मीता आई है ।’
मीता आँगन में जाकर बैठ गई थी । पुकारा तो अन्दर आई ।

“मैंने पूछा—‘कोई चिट्ठी आई है ?’

“मीता बोली—‘नहीं ! कल रीता की माताजी से रास्ते में
भेंट हो गई थी । कहती थीं कि गज्जू बाबू से शायद शादी नहीं
होगी । जमाना क्या कहेगा ! लोग कहेंगे कि उसी घर में रहते
थे; प्रेम हो गया, इसीलिए शादी कर दी गई ! मैंने बनारस में
एक लड़का ठीक किया है ।’

“मीता ने ठहरकर कहा—‘लेकिन यह सब झूठ है भैया !’

“मैंने कहा—‘सरासर, मीता ! उनका खयाल है कि मैं कहीं
अड़ंगा न डाल दूँ । वे अपने को इतनी चालाक समझती हैं कि
घर-भर को मूर्ख बना रखा है । पति से दामाद तक की बेइज्जती
कराके भी अभी उन्हें अपनी अक्लमन्दी का ज्ञान नहीं हो पाया है !
उन्हें शायद नहीं मालूम कि गज्जूजी से शादी की बात मुझे कितने-
कितने दिनों से मालूम है ! वे दामाद के साथ-साथ मुझे भी मूर्ख
बनाना चाह रही हैं ?’

“मीता ने कहा—‘एक और बात तो आपको बताई ही नहीं थी
मैंने । जिस दिन आपने कला-प्रसार-केन्द्र में रीता को फोटो दिए
थे, उस रात मैं भी रीता से भेंट करने के लिए उसके घर गई
थी । उसकी माँ उस पर बेतरह बिगड़ी हुई थीं । कह रही थीं—
‘तू क्यों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रही है । अगर उन्होंने तेरे
पति को ये फोटो दिखा दिए तो ? कहीं तेरी चिट्ठियाँ पढ़ा दीं तो ?

तू हमलोगों को मटियामेट करके छोड़ेगी । इधर हमलोगों के सामने उन्हें भला-बुरा कहती है, उधर मौका पाकर मिलने चली जाती है ! जाती है कि नहीं ?' रीता ने चिल्लाकर कहा—'जाती हूँ ! जाती हूँ ! और जाऊँगी !!! मुझे कोई नहीं रोक सकता ।' इस पर माताजी बहुत बिगड़ीं । उसे बड़ी बुरी गालियाँ दीं । मैं तुरत वहाँ से चली आई । वे मुझपर भी बहुत खफा हैं । मगर मैं उनकी क्या परवा करती हूँ । मैं 'उन्हें ऊपर से नीचे तक जानती-पहचानती हूँ ।'

"मीता की बात सुनकर मैं दंग रह गया । शारदा ने आँगन से ही पूछा—'जलपान दे जाऊँ ?'

"अभी नहीं !'

"मीता ने कहा—'मैं जलपान करके आई हूँ !'

"मीता बहुत देर तक बैठकर चली गई । मीता के जाने के करीब दो घटे के बाद डाकिया तार लेकर आया । मैं तार देखकर घबड़ा उठा । खोला तो देखा—शारदा के पिताजी का तार था । शारदा के छोटे भाई की मँगनी थी । उसी अवसर पर आने का आदेश था ।

"शारदा तार पाने के तीसरे दिन मायके चली गई । डेरे पर मैं और सुखू रह गए । डेरा भूत का डेरा हो गया । रीता चली गई ! *परिवार चला गया !! मीता का आना बन्द हो गया ।

"इसके दो दिनों के बाद ही मुझे बुखार हो आया । बढ़ते-बढ़ते १०४ डिग्री तक चला गया । अंग-अंग टूट रहा था । लगा कि अब चन्द मिनटों का ही मेहमान हूँ । दूसरे दिन भी बुखार की वही हालत रही—१०४ ! तीसरे दिन सुबह जब मैं उठा और बुखार उतरा हुआ पाया तो किसी तरह उठकर आँगन में गया । आँगन के बरामदे में लगे शीशे में सूरत जो देखी तो मुँह पर पाँच-छह बड़े-बड़े फोड़े नजर आए । सुखू को बुलाकर पूछा । उसने कहा—'मालिक ! चेचक मालूम होता है !'

“सुनकर बहुत खुशी हुई । मैं हँसने लगा । सुखू मेरा हँसना देखकर परेशान था । मैंने कहा—‘जाकर जरा मीता को खबर कर दे ।’

“तीसरे पहर मीता आई । उस वक्त चेहरे पर चेचक के बीस-चौंस दाने निकल आए थे; छिटफुट, जहाँ-तहाँ शरीर में भी । मीता को जब चेचक की बात मालूम हुई तब वह बहुत दुखी हुई । मैंने कहा—‘मीता ! तुम्हें याद है ? मैंने एक दिन रीता के एक प्रिय सम्बन्धी के चेचकवाले चेहरे पर व्यंग्य किया था ? यह उसीका फल मिल रहा है । मैं मनाता हूँ मीता ! कि मेरी एक आँख भी फूट जाय ! चेहरे में इतने बड़े-बड़े गड्ढे हो जायँ कि रीता देखे तो कहे—‘कहिए ! दूसरों पर हँसते थे ! अब कैसा लगता है ??’

“मीता ने जोर से कहा—‘भैया !’

“मैं चुप हो गया ! मीता की आँखें डबडबा गई थीं । मैं करीब एक महीना खाट पर रहा । चेचक बहुत बड़ी गोटियोंवाला था । आँखें बाल-बाल बचीं ! दूसरी जिन्दगी पाकर मैं एक महीने के बाद बाहर निकला । रिक्शे पर बैठकर जोशी होटल तक गया । थोड़ी दूर में ही, हवा के कारण बेहोशी-जैसी मालूम हुई । होटल में थोड़ी देर बैठकर डेरे चला आया । मुझे मौत के मुँह से बच आया देख सभी मित्रों को काफी तसल्ली हुई । एक मैं ही खुश न था—जरा भी !!

“बीमारी के दौरान में मैं मीता का उपकार कभी नहीं भूल सकता । उसने मेरी बड़ी सेवा की । रोज-रोज आती .। बातें करती । फल का रस निचोड़कर पिलाती ! रीता की सहेली—यह मीता—कितनी महान, कितनी पवित्र है !!! मैं उसकी कृतज्ञता के भार से जीवनभर के लिए दब गया । मीता ने मेरी इतनी सेवा की कि वह खुद बीमार पड़ गई ! उसे भी चेचक निकल आया !!

“मीता स्वस्थ हो गई तो एक दिन मैं उससे मिला । वह घर पर ही रहती थी । उसने कहा—‘मैंने रीता को आठ-दस पत्र दिए हैं, मगर किसी का जवाब नहीं मिला । शायद वहाँ पत्र मार लिया जाता है ! मगर रीता को लिखना चाहिए था ।’

“मैं बोला—‘मजबूरी में पिस गई है वह ! उसे कसमें दे-देकर डरा-डराकर लोगों ने उसकी हत्या कर दी है । उफ् ! कितना बुरा परिणाम होता है प्यार का, मीता !’

“मैं घबड़ाकर बिछावन पर लेट गया । मीता स्तब्ध बैठी रही । मैंने थोड़ी देर के बाद कहा—‘मीता ! मैं घर जा रहा हूँ !’

“कब ?’

“परसों, चौथे रोज ! यहाँ जरा भी मन नहीं लगता !’

“हो आइए !’ मीता ने सहानुभूति से कहा ।

“मैं चौथे रोज एक महीना के लिए घर चला गया, अपने पिता-माता के पास । घर जाने के आठ-दस दिन बाद शारदा भी अपने मायके से वहाँ आ गई । मैं घर पर एक महीना रहकर फिर कुसुमा लौट आया । घर पर मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो गया । दाग भी काफी साफ हो गए !

“कुसुमा में आते ही मीता के यहाँ गया । उससे मालूम हुआ कि रीता ने इस बीच कोई पत्र नहीं लिखा ।

“मैं उदास, सन्तप्त अपने डेरे पर लौट आया । नौकर को एक दिन पहले ही मैं भेज चुका था । डेरे पर आकर मैं बैठा था कि कुमार आया । उसने कहा—‘कृष्ण ! तुम कब आए ?’

“अभी आ ही रहा हूँ !’

“रीता यहीं है आजकल ! परसों भेंट हुई थी । दोनों माँ-बेटी कहीं जा रही थीं । मुझे देखकर कोकिलाजी ठहर गई । बेचारी रीता उनके पीछे जा छिपी । बहुत कमजोर और उदास थी; लगता था कि महीनों से बीमार हो । मैंने पूछा, ‘कहाँ जा रही हैं ?’ तो

बोलीं, 'इसीको डाक्टर से दिखाने लाई थी । कलेजे में बहुत दर्द रहता है । देखिए न, कैसी हो गई है ।' मैं क्या कहूँ, कृष्ण ! मुझसे रीता को देखा नहीं गया । विस्वास ही नहीं हुआ कि यह वही रीता है । वही !! मैं वहाँ से जल्दी आगे बढ़ गया ।'

"कुमार की बातें सुनकर मुझे लगा कि अभी मूर्च्छा आ जायगी । मैंने कहा—'कुमार ! तुम एक कृपा करो मुझपर !' जरा अभी मीता के घर जाओ और उसे कह दो, मुझसे आकर मिले ।

"कुमार ने जाकर मीता को मेरे पास भेज दिया । इस बीच मैंने आठ पृष्ठों की एक लम्बी चिट्ठी लिखी । मीता को कहा—'जाकर दे आओ ।' मीता गई और लौट आई । रीता वहाँ नहीं थी । दोपहर में कुमार ने कोशिश की, मगर जिस वक्त कुमार गया, उस वक्त रीता के चाचा, पिता, माता, भाई, सभी बैठे थे । कुमार निराश होकर लौट आया । चिट्ठी लेकर मैं जोशी होटल गया । वहाँ पहुँचकर मैं और कुमार बैठे बातें कर रहे थे कि गोपाल साइकिल पर आया । उसने कहा—'अभी-अभी कोकिलाजी और शर्माजी को बाजार की ओर जाते देखा है । वे लोग यहीं हैं क्या ?'

"हाँ ! रीता भी यहीं है, गोपाल ! मेरे सर्वश्रेष्ठ मित्र गोपाल ! आज मुझपर एक कृपा करो ! और किसी से वह हो भी नहीं सकता !'

"गोपाल ने सैनिक की तरह कहा—'तुम्हारे लिए मौत से भी जूझ सकता हूँ कृष्ण ! आज्ञा दो !'

"मैंने गोपाल को वह पत्र दे दिया और कहा—'गोपाल !! शर्माजी और कोकिलाजी बाहर निकले हैं । तुम साइकिल पर असी तीर की तरह जाओ और रीता को यह पत्र दे आओ ।'

गोपाल साइकिल पर चढ़कर हवा की तरह उड़ गया । पाँच-सात मिनट में ही वह वापस भी लौट आया । आकर बोला—

‘पत्र दे दिया है ! उससे पूछा—‘कुछ कहना है ?’ वह बोली—
‘नहीं !’ मैं वहाँ से दूसरे रास्ते से निकला ताकि कहीं वे लोग
लौट रहे हों तो भेंट न हो जाय !’

“मैंने गोपाल को अपनी छाती से लगा लिया । मेरा गोपाल !
उफ् ! कैसे-कैसे काम करा देता हूँ मैं अपने मित्रों से ! पतित !
चरित्रहीन !!

“गोपाल के आने के बाद रीता ने पत्र पढ़ा । पत्र पढ़ते ही वह
रोने लगी । तुरत पास के एक लड़के से एक पत्र मीता को भेजकर
उसे बुलवाया । मीता गई तो उसने उसे एक पत्र दिया और कहा—
‘वे मुझे नहीं समझते ! उन्हें मुझपर हमेशा अविश्वास रहा है ।
मैं क्या करूँ ! मेरी शादी ठीक हो गई है । परसों तिलक चढ़ने
को है । चौथे रोज मैं यहाँ से चली जाऊँगी ।’

“मीता मेरे पास आकर सारी बातें कह गई । चिट्ठी भी दे
गई । चिट्ठी पढ़कर लगा कि तुरत जहर खाकर आत्महत्या कर
लूँ । मैं चिट्ठी पढ़ते ही पागल हो गया । मीता तो चली गई
थी । मैं भी तुरत घर से बाहर भागा । बीसों जगह घूमता रहा ।
चक्कर काटता रहा । हर जगह वही उजाड़ ! वही उदासी !!
वही मौत की छाया !!!”

ललित ने पूछा—‘उस चिट्ठी में क्या लिखा था कृष्ण भाई ?
कृपया.....।’

कृष्ण बोलता चला गया—“उस चिट्ठी में उसने मेरी मौत की
सूचना दी थी ! उसने लिखा था—

. [—————]

चिट्ठी मिली ! अजीब मानसिक विकलता बढ़ गई है । उद्विग्न
हूँ । कुछ सूझ नहीं रहा है । भूलना चाहा था पर भूल नहीं सकी ।
न भूल सकूँगी । मेरे हाथ काँप रहे हैं !

उफ् ! मैं क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ ! ओह ! ओह !!

हाँ, सीने में दर्द है ! बहुत दर्द है ! और उसका कारण है कि मैं शीशे खाया करती हूँ कभी-कभी । किसीकी बेवफाई के कारण !

दूर हुई ? क्यों ? स्नेह नहीं रहा तब ??? स्नेह नहीं रहा तब कुछ भी न रहा ! जीवन सूना ! मन सूना !! सबकुछ सूना !!!

फिर जीने की और 'किसी' से मिलने की तमन्ना क्योंकर करूँ ? हाँ ! कभी-कभी मुझ भाग्यहीन को याद कर लेना !!

रीतू ने प्यार किया था, सबकुछ देकर !!!

उफ् ! मैंने ऐसी आशा नहीं की थी । कभी भी नहीं !

ओ बेवफा ! तू भी मेरी शिकायत करता है ? कैसी-कैसी बातें परिवारवालों से सुना करती हूँ !

उफ् ! मैंने तो तुझे अपना सहारा समझा था ! जीवन का सहारा !!!

तू भले ही मुझे बुरी समझ, पर मैं कभी भी तुझे बुरा नहीं समझूँगी ।

और अधिक लिखकर मैं परेशान नहीं करना चाहती ! मेरा-कहा-सुना माफ करना ।

बस !

तेरी ही—कैसे कहूँ ?—रीतू]”

इतना लिखकर ललित ने ऊपर नजर की तो देखा, कृष्ण आँसुओं से भीग रहा है । झर झर ! चेहरा पत्थर की तरह हो गया है ! आँखें निर्झरिणी बन गई हैं । ललित घबड़ाकर पास आ गया । कृष्ण ने उसके हाथ को अपनी मुट्ठियों में कसकर दबा लिया । ललित रोने लगा !!



उपन्यास खत्म हो गया !

आज ८ बज गए । सूरज चढ़ आया । फुलवारी का वह दूसरा पेड़ गिरे पेड़ के पास मानो रह-रहकर चौंक उठता कि इतने में एक रिक्शा आकर खड़ा हुआ और दोनों उतरकर उस पेड़ की ओर बढ़े ।

कृष्ण ने कहा—‘उस दिन कैसा रहा ललित ?’

ललित बोला—‘आपको वे लोग कितना बड़ा आदमी समझते हैं कृष्ण भाई ! मेरे तो अनुमान के बाहर था कि सराय, धर्मशाला और फुलवारियों में बैठनेवाले कलाकारों का सम्मान भी इस प्रकार हो सकता है ! चीफ सेक्रेटरी कोई मामूली अफसर नहीं होता ! आपको तो वे लोग देवता की तरह पूज रहे थे !’

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! उनका पूरा का पूरा परिवार कलाकार है । बड़ी लड़की, जो सफेद साड़ी पहने हुए थी, ‘कान्ता’ है; शांति-निकेतन से चित्र-कला की शिक्षा लेकर आई है । मँझली ‘उर्वशी’ है; बहुत सुन्दर नृत्य करती है; जैसा नाम वैसा ही गुण । तीसरी लड़की, जो सामने बैठी थी, कविता लिखती है; संगीत और चित्र-कला से भी शौक है उसे; उसका नाम ‘कुसुम-सम्राज्ञी’ है !’

ललित ने कहा—‘देखने में भी फूलों की रानी ही लगती है !’

कृष्ण ने कहा—‘वह मेरी रीता से इतनी मिलती-जुलती है कि मैं कभी न कभी वहाँ जरूर चला जाया करता हूँ । उसे देखकर

लगता है—जैसे रीता ही आ गई हो मेरे सामने । उसका पति आई० ए० एस्० है; कानपुर में सिटी मैजिस्ट्रेट है ।’

ललित ने पूछा—‘आप जा कब रहे हैं कृष्ण भाई ?’

कृष्ण बोला—‘परसों ! चौथे रोज दिल्ली में मेरा रहना बहुत जरूरी है । उसी रोज वहाँ अखिल-भारतीय-कला-परिषद् की कार्य-कारिणी की बैठक है ।’

‘तब तो आपको हवाई जहाज से जाना होगा !’ ललित ने पूछा ।

कृष्ण ने उत्तर दिया—‘प्रायः मैं आकाशमार्ग से ही चलता हूँ । समय की बचत होती है और ट्रेन की खिचखिच से जान बच जाती है । हाँ, तुम अब कौपी-कलम सँभाल लो । लिखो !—

“रीतू का वह मर्मभेदी पत्र ! मेरा अकेलापन । उसकी शादी । उसका शीशा खाना । मुझे ‘बेवफा’ सम्बोधन !—

“मैं तड़फड़ाकर रह गया । काश ! पत्र पढ़ते ही यह पंछी उड़ जाता इस पिंजड़े से ! यह अभागा पंछी !.....जीवन के प्रति सारी ममता समाप्त हो गई थी जैसे !!!

“मैं होश में नहीं था । उठकर तुरत मीता के घर गया । वहीं बैठकर रीता को एक पत्र लिखा । उसे लिखा—

[रीतू ! तू अपने आराध्य को पापी कह ! चरित्रहीन कह ! धृष्य और जघन्य कह ! मगर ‘बेवफा’ मत कह रीतू ! ‘बेवफा’ मत कह ! तू नहीं जानती कि अब मेरा जीवन सिर्फ तेरे प्यार के सहारे ही जी रहा है । अब इस दुनिया में मेरे लिए कुछ नहीं रह गया है ! कुछ भी नहीं । तू मुझे समझ रीतू ! पहचान !!

तेरा कृष्ण खूनी हो सकता है, बेवफा नहीं हो सकता । अगर तू चाहती कि मेरी जीवनसंगिनी बने तो क्या मैं भाग जाता ? उसे मैं अपना अहोभाग्य मानता रीतू ! मैं धन्य हो जाता । समाज और रूढ़ियों ने तुझे मुझसे छीन लिया । या, यूँ कह कि तूने अपने

आपको उस बलिदान के लिए तैयार कर लिया । काश ! तेरा पति, तेरे पिता-माता, तेरा समाज तेरी यह कुर्बानी समझ पाते ! तेरा मूक बलिदान !!

मैं तो इतना समझता हूँ रीतू ! कि लिख नहीं सकता ! कह नहीं सकता ! मैं जानता हूँ उसे ! मेरा रोम-रोम, मेरा मन, मेरी बुद्धि, मेरी आत्मा तक जानती है उसे !

तुझसे एक ही प्रार्थना है रीतू ! मुझे गलत मत समझ ! और सुन ! कान, हृदय और प्राणों से सुन—कृष्ण तेरा था ! तेरा है !! तेरा ही रहेगा !!! रीतू ! जा ! अगर तू चाहती है तो समाज की बलिवेदी पर चढ़ जा । चढ़ जा उसकी सूली पर !

—तेरा ही कृष्ण]

“मीता ने पत्र पढ़ा । रीता के यहाँ जाने को वह तैयार होकर बाहर आई ही थी कि इतने में उसके पिताजी कलकत्ता से आ गए । मीता लाख चाहने पर भी रीता के यहाँ नहीं जा सकी । मेरा पत्र रीता को नहीं मिला । मैं निराश और अर्द्धमृत होकर डेरे पर लौट आया ।

“रीता उसी रात घर चली गई । तिलक हो गया था । गज्जू बाबू भी आए थे । उन्होंने कहा था—‘मेरी शादी एक बी० ए० पास लड़की से मेरे पिता-माता कर रहे थे । वहाँ से पन्द्रह हजार रुपये दहेज में मिल रहे थे । लड़की के पिता एक कालेज के प्रिन्सिपल हैं । मगर मैंने वह प्रस्ताव ठुकरा दिया । मैंने अपने पिता-माता से कहा—अगर मेरी शादी होगी तो रीता से, वरना मैं शादी ही नहीं करूँगा !’

“जब मेरी चर्चा चली तब वे बोले—‘उनके मारने की तो मुझे तकलीफ नहीं है, क्योंकि उनकी शिकायत करके मैंने कसूर किया था, मगर उन्हें माँ की गाली नहीं देनी चाहिए थी । मैं माँ को बहुत प्यार करता हूँ !’

“इसी तरह की कई मनोरंजक बातें उन्होंने कहीं । रीता के पिता-माता ने समझा—लड़का कितना शिक्षित है ! कितना विचारवान ! कितना आचरणवान ! और रीता पर किस तरह जान देने-वाला है ! वाह रे दामाद ! सर्वगुणसम्पन्न !! न भूतो न भविष्यति !!!

“रीता के जाने के दिन, उसके दूसरे दिन, उसके तीसरे दिन तक, मैं न जाने कितनी बार रोया, कितनी बार आत्महत्या करने पर आमादा हुआ ! मेरी क्या-क्या हालत हुई, मैं कह नहीं सकता ! मुझे याद भी नहीं है । मैं उस वक्त एकदम पागल हो गया था, सचमुच पागल !!!

“चौथे दिन शिवदेव बाबू से रास्ते में अचानक भेंट हो गई । उन्होंने कहा—‘परसों ही शादी है रीता की ! आप जा रहे हैं न ?’

“इतनी जल्दी ?’ मैंने आश्चर्य से पूछा ।

“देखिए न !’ कहकर उन्होंने मेरे सामने निमन्त्रण-पत्र बढ़ा दिया । लगा कि आप अपनी ही मौत का परवाना पढ़ रहा हूँ ! मैंने तुरत उन्हें कार्ड वापस लौटा दिया और वहाँ से सीधे जोशी-होटल आया । शाम में कुमार से भेंट हुई ।

“उसने पूछा—‘तुम जा रहे हो शादी में ?’

“किसकी ?’

“रीता की !’—कुमार ने ऐसे कहा, जैसे मुझे निमन्त्रण मिल चुका हो ।

“मैंने कहा—‘मुझे निमन्त्रण नहीं मिला है !’

“गोपाल बोला—‘मुझे भी नहीं ।’

“नगेन्द्र बोला—‘मुझे भी नहीं !’

“उन्मुक्त बोला—‘मुझे भी नहीं !’

कुमार ने कहा—‘मुझे भी नहीं भाई !’

“मैं मुस्कुराकर बोला—‘यानी पूरी की पूरी मण्डली का बहिष्कार है ! ठीक ही है । होना भी चाहिए था । हमलोगों से उनलोगों का इतना बड़ा प्रचार, प्रभाव और सम्मान जो बढ़ा है !’

“गोपाल ने कहा—‘कृष्ण ! एहसानफरामोशी की लँगोटी-लाठी लेकर यह दुनिया किसी का भी सिर फोड़ सकती है ! इसमें अचरज करने की कोई बात नहीं !’

“उन्मुक्त ने कहा—‘कृष्ण ! तीन-चार दिन पहले मैं घर जा रहा था । उसी लारी में शर्माजी के परिवार को भी देखा । रीता भी थी । उसे तो देखकर मैं थर्रा गया । लगता था कि दस दिन के गड़े मुर्दे में थोड़ी देर के लिए मशीन से जान डाल दी गई हो । कैसी हो गई है बेचारी !’

“मैंने कहा—‘बीमार थी । मियादी बुखार हो गया था । चालीस दिनों के बाद पथ्य मिला है ।’

“उन्मुक्त चुप हो गया । मगर मेरे मन ने मुझसे कहा—‘पापी ! नारकी !! शर्म नहीं आती तुझे इस तरह का झूठ बोलते ? निर्लज्ज कहीं का !!! क्या रीता को मियादी बुखार हो गया था ? उसे चालीस दिनों के बाद पथ्य मिला है ??’

‘जिन्दगी से जगमगाती कलाकार रीता को जिन्दा लाश बना देनेवाले नराधम ! तुझे शीघ्र ही अपनी करनी का फल मिलेगा ! लकवा मार जायगा तुझे ! कोढ़ी हो जायगा तू !!’

‘मैं सोचते-सोचते इतना बेकाबू हो गया कि जोर से बोल पड़ा—‘हाँ हाँ ! डराता क्या है ! मैं तैयार हूँ !!’

“सभी मित्रों ने एक साथ पूछा—‘क्या बात है ?’

“तब मुझे होश हुआ । मैंने कहा—‘कुछ नहीं, कुछ नहीं !! यूँ ही एक बात सोच रहा था ।’

“मैं वहाँ ज्यादा देर तक बैठ नहीं सका । गोपाल को साथ लेकर पार्क-मैदान की निर्जनता में चला गया । वहाँ मुझे मेरा अन्तरंग मित्र गोपाल मुझे बहुत देर तक आश्वासन देता रहा । हम-लोग करीब बारह बजे रात में घर लौटे । वहाँ आकर देखा कि

माँ, शारदा और बच्चों के साथ आ गई हैं । कुछ तसल्ली हुई । परेशानियाँ अब व्यस्त हो जायेंगी !

“माँ को भी मौसी ने रीता की सब बातें बता दी थीं । उन्होंने मेरे सामने ही शारदा से पूछा—‘रीता अब आती है कि नहीं ?’

“शारदा ने कहा—‘अब क्या आएगी बेचारी ! उसकी तो शादी हो रही है !’

“कब ?’ माँने पूछा ।

“मैंने कहा—‘परसों !’

“माँ ने आश्चर्य से कहा—‘परसों ही ! मगर इधर तो कोई लगन नहीं है !’

“इसका उत्तर मेरे सिवा किसी के पास नहीं था । मगर मैं बोला ही नहीं, इसलिए माँ भी चुप हो गई ।

“शारदा ने बैठक में आकर कहा—‘जब यहाँ से मौसी गई थीं तो माँ से भी कह दिया था । माँ तो कोकिलाजी को पत्र लिखनेवाली थीं कि अपनी बेटी को सम्हालकर रखिए । मेरे बेटे और पतोहू की जिन्दगी बर्बाद कर देना चाहती है वह ! मगर भगवान की कृपा समझिए कि उन्होंने चिट्ठी नहीं लिखी । बन्धुजी ने कहा—‘माँ ! अगर ऐसा करोगी तो संभव है कि भैया गुस्से में आकर उससे शादी ही कर लें ।’ माँ डर गई । बन्धुजी ने यह भी कहा—‘माँ ! हमलोगों के खानदान में तुम, पिताजी और शारदा भाभी जैसी कई माताएँ, पिता और पत्नियाँ आई और मर गई, मगर भैया-जैसा कलाकार आज तक नहीं पैदा हो सका । हमें उनपर इतनी कड़ी नजर नहीं रखनी चाहिए । कलाकारों का जीवन कुछ और तरह का होता है । मैं संसार के सैकड़ों कलाकारों की जीवनियाँ तुम्हें सुनाऊँगा माँ, तो तुम कहोगी, मेरा कृष्ण देवता है देवता !’ आप तो जानते ही हैं कि माँ बन्धुजी को बहुत मानती हैं, आपसे

भी ज्यादा । वे उनकी बातों पर गम्भीर हो गई और उनकी शिकायत कोकिलाजी तक नहीं पहुँच सकी ।’

“शारदा की बातें सुनकर मैं अपने अनुज बन्धु पर मुग्ध हो गया । अभी बी० ए० में ही पढ़ता है, मगर कितना विचारवान ! कितना दूरदर्शी !! कितना उदार !!!

“शारदा और बच्चों के आ जाने पर मुझे कुछ ढाढ़स हुआ । दो दिन, बच्चों के साथ हिलमिल कर, दुख और सुख के झुटपुट में गुजर गए ।

“तीसरे दिन ! रीता के शादीवाले दिन की बात है ! उस दिन मैं आफिस नहीं गया । खाना भी नहीं खाया । जलपान तक नहीं किया । आम के उसी बगीचे में जाकर, उसी जगह बैठ गया, जहाँ मैं और रीता एक बार बैठे थे । वहाँ जी-भर रोया । इतना रोया कि हिचकियाँ बँध गई । आसपास कोई नहीं था । दूर-दूर पर किसान अपना काम कर रहे थे । साथ में मैं रीता की सभी चिट्ठियाँ ले गया था; उसकी तसवीरें भी ! उन्हें पढ़ता रहा, देखता रहा, रोता रहा, रोता रहा ।

“शाम में, करीब ६ बजे, घर लौटा । आँखें रोते-रोते फूल गई थीं । शारदा ने देखा तो समझ गई । उसने मेरी बाँह पकड़ ली । मैं छड़ाकर बैठक में भाग गया । अन्दर से सभी दरवाजे बन्द कर लिये । शारदा ने बीसों बार पुकारा । मगर मैंने दरवाजा नहीं खोला । सुषमा ने कहा—‘बाबूजी ! खोलिए न !’

“छोटा दीपक बोला—‘नई खोलिएगा तो मैं लो दूँगा बाबूजी !’ थोड़ी देर के बाद वह रोने भी लगा । मगर मैंने दरवाजा नहीं खोला ! नहीं खोला !!

“रोता रहा, बच्चों की तरह ! ठीक बारह बजे रीता का पाणिग्रहण था । खिड़की से पूर्ण चाँद मुझे देख-देखकर जँसे व्यंग्य-बाण बरसा रहा था । मैं और जोर से रोने लगा । रोने की

आवाज बाहर गई तो शारदा ने दरवाजे पर मुक्का मारकर कहा—
'खोलिए नहीं तो मैं अपना सिर पटककर फोड़ दूँगी !'

"मैंने उठकर दरवाजा खोल दिया । शारदा अन्दर आ गई ।
बच्चे सो गए थे । शारदा ने मुझे देखा, मैंने शारदा को ! वह
मेरे पैरों के पास धड़ाम से गिर गई और जार-बेजार रोने लगी ।
—'आपको क्या हो गया है ! भगवान के लिए चुप हो जाइए !
जो होना था, हो गया ! अब रोने से क्या होगा !'

"शारदा मुझे रोने से रोक रही थी, मगर खुद रो रही थी !
न मैं चुप हो सका, न शारदा ! दोनों रोते रहे ! !

"बारह से सुबह तीन बजे तक यही हालत रही । चार-पाँच
बजे के लगभग मुझे शारदा पलंग तक उठाकर ले गई । मैं न जाने
कब सो गया । सुबह ६ बजे नींद खुली !

"हाथ-मुँह धोकर मैंने शारदा से कहा—'शारदा ! बीस रुपए
मुझे दो !'

"क्यों ?' शारदा को डर था कि कहीं मैं आत्महत्या न कर लूँ ।

"यूँही !' मैंने कहा ।

"नहीं ! पहले बताइए कि क्या कीजिएगा !'

"शारदा ! आज मैं इतने दिनों से बाँध रखे हुए मन की जंजीरें
तोड़ देना चाहता हूँ । अब कोई बन्धन नहीं रह गया है । 'मेरी
प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी है ।'

"मैं कुछ समझ नहीं सकी !'—शारदा ने कहा ।

"शराब पीने जा रहा हूँ शारदा ! मुझे बीस रुपए दो ! आज
सिगरेट भी पीऊँगा । लाओ रुपए !'

"शारदा ने तुरत रुपए लाकर दे दिए और हाथ पकड़कर कहा—
'जाइए ! खूब पीजिए ! मगर जरा ऊपर देखिए ! इस माँग के
सिन्दूर को देखिए ! आप मेरे पति भी हैं ! सुना न आपने !
जाइए ! ! !'

“मैं हाथ में रुपए लेकर भी बाहर नहीं जा सका । वहीं खड़ा रह गया । शारदा ने कहा—‘इससे रीता को भी खुशी नहीं होगी । यूँ आपकी मरजी है ! आप जहाँ चाहे जा सकते हैं, जो चाहे कर सकते हैं !’

“मैं दो क्षण तक रुका रहा और एक बार सारा दुस्साहस इकट्ठा करके घर से बाहर निकल गया । वहाँ से सीधे डि लक्स होटल पहुँचा । उसका मालिक जोन मेरा मित्र है । उससे मैंने जाते ही कहा—‘आज ऐसी शराब दो जोन ! कि पीते ही बेहोश हो जाऊँ और जिन्दगी-भर उठ नहीं सकूँ ।’

“जोन मेरी ओर देखने लगा । मेरा चेहरा देखकर वह बोला—‘साहब ! आज तुम बहुत उदास है ! क्या बात है ?’

“कुछ नहीं जोन ! मैं अब मर जाना चाहता हूँ !’

“नहीं नहीं ! साहब ! तुम इण्डिया का फर्स्ट-रेट आर्टिस्ट है । ऐसी बात काहे को बोलता है !’ जोन ने सहानुभूति से कहा ।

“मैं चुप हो गया । उसने बेहरे से एक बोतल ‘रम’ भिजवा दी । मैं बिना सोडावाटर के ही कुछ मिनटों में पूरी बोतल पी गया । सिगरेट की एक पाकिट खत्म हुई । दूसरी, और फिर तीसरी ! करीब बारह बजे तक मैं वहाँ बैठा रहा । वहाँ से उठकर गोपाल के पास गया । गोपाल ने मेरा हाल जो देखा तो काँप गया ।

“उसने कातर होकर कहा—‘कृष्ण ! यह क्या ? शराब ? सिगरेट ??’

“मैं बोला—‘हाँ ! हाँ गोपाल ! शराब और सिगरेट !! अब यही मेरी जिन्दगी है । रीता से की हुई प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी । अब मैं स्वतन्त्र हूँ ! बिलकुल निर्द्वन्द्व !!’

“गोपाल ने मेरा हाथ पकड़ लिया । मेरे पैर लड़खड़ा रहे थे । उसने मुझे आरामकुर्सी पर बिठाकर कहा—‘कृष्ण ! न तो तुम स्वतन्त्र हो न निर्द्वन्द्व ! शारदा जैसी देवी तुम्हारी पत्नी है ।

सुषमा, दीपक और मधुर जैसी तीन सन्तानें हैं तुम्हारी ! तुम स्वतंत्र नहीं हो कृष्ण ! स्वतन्त्र नहीं हो !’

“मैं नशे में चूर था । हँसने लगा । मैंने कहा—‘तुम गदहे हो गोपाल ! मैं एकदम स्वतंत्र हूँ । परम स्वतंत्र ! तुम क्या जानो ! चुप रहो ! ! !’

“गोपाल मेरी हालत देखकर चुप हो रहा । चार बजे के करीब नशे का जोर कुछ कम हुआ । गोपाल मुझे वहाँ से मेरे घर पर पहुँचा गया । शारदा को, मुझे ठीक-ठिकाने लौटा देखकर जैसे एक खोई निधि मिल गई । उसने आते ही पूछा—‘खूब पी आज ?’

“हाँ !’

“कितनी ?’

“एक बोतल ! बड़ी एक बोतल ! !’

“शारदा को मेरी इस बात से जैसे कुछ भी अचरज नहीं हुआ ! न दुख ! उसने कहा—“खाना दोपहर से ही रखा है !’

“मैं नहीं खाऊँगा ।’

“तो मैं भी नहीं खाऊँगी !’

“फिर मैंने कहा—‘अच्छा, लाओ ।’

“नौकर खाना दे गया । मैंने और शारदा ने एकसाथ ही खाया । खाना खाकर मैं सो गया । शाम में पाँच बजे जो सोया तो दूसरे दिन सात बजे सुबह नींद खुली ।

“दो तीन दिनों से दाढ़ी भी बढ़ गई थी । शारदा ने कहा—‘दाढ़ी बना लीजिए ! बुरा लगता है !’

“मैंने शारदा की बात मान ली । दाढ़ी बनाकर, नहा-धोकर, खाना खाकर और धुले हुए कपड़े पहनकर मैं गोपाल से मिलने गया । रास्ते में रिक्शे पर गज्जू बाबू को देखकर मैं चौंक गया । वे सिर नीचा किए, कुछ चिन्तित, कुछ परेशान-से चले जा रहे थे ।

“मैंने गोपाल से आकर कहा—‘गोपाल ! अभी गज्जू बाबू को देखा है । लगता है, रीता भी उनके साथ आई है । गज्जू बाबू उदास थे । निश्चय है, उन्हें रीता की दुर्दशा से सभी बातों का पता चल गया है !’

“गोपाल ने कहा—‘आज शाम को मुझे उधर एक मकान की तलाश में जाना है । मालूम करूँगा कि रीता आई है कि नहीं ।’

“उसी दिन रात में गोपाल ने आकर बताया—‘रीता आई हुई है । मुझे कोकिलाजी ने देखा तो अन्दर बुलाकर ले गई’ । रीता को पुकारा । रीता तो मुझे देखते ही छिपने लगी, मगर उनके पुकारने पर वह विवाहवाली सुमंगली साड़ी पहने, माँग में सिन्दूर और पाँवों में महावर दिये आई और मुझे झुककर प्रणाम किया । मैंने आशीर्वाद दिए । कोकिलाजी से कई तरह की बातें हुई । रीता तुरत अन्दर चली गई । चेहरा बेतरह उदास और निष्प्राण-सा ! मुँह पर जरा भी शादी की खुशी नजर नहीं आ रही थी । लगता था कि किसी तुरत ही हुई विधवा को जबर्दस्ती विवाह के वस्त्र पहना दिए गए हों ! उफ् ! मैं तो रुक नहीं सका कृष्ण ! भाग आया तुरत !’

“गोपाल की बातें सुनकर मैं फिर पागल हो गया । क्यों लोग मुझे रीता की खबर दे देते हैं । मेरे कान ही बहरे क्यों नहीं हो जाते ! आँखें भी मेरी फूट क्यों नहीं जातीं । पागल क्यों नहीं हो जाता मैं ! उफ् ! उफ् !! उफ् !!! दम घुटने लगा ! मैं वहाँ से उठकर तुरत मीता के यहाँ गया । उससे कहा—‘कल सुबह जरा मुझसे भेंट करना मीता ! तेरा एहसान जिन्दगी-भर नहीं भूलूँगा ।’

“मीता दूसरे दिन सुबह आ गई । मैंने रीता को एक लम्बा पत्र लिखा । पत्र में मैंने न जाने क्या-क्या लिखा, मुझे कुछ भी याद नहीं । मीता रीता के यहाँ गई । सौभाग्य से उस वक्त न गज्जू बाबू थे न कोकिलाजी । शर्माजी तो गाँव पर ही थे ।

“मीता ने जब रीता को पत्र दिया तब वह मीता की जाँघों पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसने मीता से कहा—‘मैं तो अजीब गोरखधन्धे में पड़ गई हूँ। समुराल जाने पर मैं रोती रहती थी। मुझे इस तरह देखकर उन्होंने पूछा—‘यहाँ मन नहीं लगता है क्या?’ मैंने कहा—‘नहीं।’ वे बोले—‘गाँव जाओगी?’ मैंने कहा—‘नहीं! कुसुमा।’ उन्हें मेरे मुँह से कुसुमा का नाम सुनकर बहुत दुख हुआ। उन्होंने कहा—‘मैं समझता हूँ रीता, खूब समझता हूँ। तुम कृष्णजी से मिले बिना रह नहीं सकतीं। रीता! मुझे अपने बाएँ गाल पर पड़ा हुआ तमाचा अभी तक याद है। अगर अब भी तुम उनके यहाँ जाना चाहती हो तो जाओ। मैं नहीं रोकूँगा। मगर जाने के पहले मेरे दाएँ गाल पर दूसरा तमाचा मारती जाओ। और याद रखो! जिस दिन मैंने यह सुना कि तुम कृष्णजी से मिलने गई थीं, उसी दिन चुपचाप जहर खाकर सो रहूँगा। तुमसे कुछ नहीं कहूँगा।’

“रीता ने मीता से और भी कई बातें बताईं। गज्जू बाबू ने एक दिन कोकिलाजी से कहा—‘यह मुझसे घृणा करती है!’

“कोकिलाजी ने रीता को बहुत समझाया। सीता-सावित्रीवाले पवित्र और महान उपदेश दिए, तब रीता ने कहा—‘मैं कुछ भी नहीं कहती उन्हें! क्यों कुछ कहूँगी किसीको!’ कोकिलाजी चुप हो गई।

“एक दिन गज्जू बाबू ने रीता से कहा—‘रीता! जानता हूँ कि मैं तुम्हारे लायक नहीं हूँ। मगर इसमें मेरा क्या कसूर है? तुम्हारी माँ ने ही तो जबर्दस्ती शादी कर दी है मुझसे। यह उनका अपराध है! क्या तुम अब भी कृष्णजी के यहाँ जाती हो?’

“रीता ने झुंझलाकर कहा—‘जाऊँ न जाऊँ, यह मेरी मर्जी है।’ गज्जू बाबू चुप हो गए।

“इस तरह की सैकड़ों बातें रीता ने मीता से कहीं और उससे प्रार्थना की कि मुझसे न कहे । मगर मैंने भयानक-भयानक कसमें देकर मीता से सभी बातें मालूम कर लीं ।

“रीता ने मेरे उस पत्र का उत्तर नहीं दिया । मीता ने कहा— ‘उत्तर माँगने पर वह कुछ नहीं बोली । मैं भी चली आई । मजबूर कैसे करती !’

“मीता जब घर चली गई तब मैं सोचने लगा कि रीता ने उत्तर क्यों नहीं दिया ! शायद अब पत्र लिखना वह उचित नहीं समझती ! विवाहित हो गई है न ! अब माँग में सिन्दूर है ! पति हैं ! सास हैं ! समुर हैं ! सारा समाज और जमाना है !!!

“मैंने सोचा—ठीक है ! अगर कहीं मैंने उसे अब बुलाया और गज्जू बाबू ने देख लिया या सुन लिया, तो ? नहीं ! नहीं !! यह पाप होगा ! महापाप !! जघन्य अपराध !!! मैं उसे कभी नहीं बुलाऊँगा । बुलाकर उसे विधवा कर देना क्या मैं चाहूँगा ? मैं क्या पसन्द करूँगा कि मेरी जन्म-जन्म की संगिनी—रीता—मेरी आँखों के सामने ही विधवा हो जाय ! उसका पति जहर खा ले ! और वह भी मेरे नाम पर ! कभी नहीं ! कभी नहीं ! मैं ऐसा हरगिज नहीं होने दूँगा । कभी नहीं होने दूँगा ।’

‘मैंने जीवन का सम्पूर्ण साहस एकत्र किया और रीता को एक चिट्ठी लिखी—

[रीतू ! मुझे मीता से सब कुछ मालूम हो गया है । तू विवाहित हो गई । मैं अब तेरा कुछ भी नहीं हूँ । तेरा सब कुछ तेरा पति है । उसकी सेवा कर ! उसी की आज्ञा मान । उसे प्रसन्न कर लेगी तो मेरा प्रेम सफल हो जायगा । मुझे इतनी खुशी होगी, जिसका तू अन्दाज नहीं लगा सकती ।

मेरा यह पत्र तुझे घातक और विश्वासघात से भरा हुआ लगेगा, मगर इस स्थिति में और कोई चारा नहीं है । रीतू ! मेरी एकमात्र

और अन्तिम प्रार्थना है कि तू अपने पतिदेव के चरणों की दासी बन जा । उसी में अपना अस्तित्व विलुप्त कर दे ! उसीकी हो जा !!

हाँ ! एक अन्तिम बात भी सुन ले ! यह मैं अपने पवित्र और निष्कलंक प्रेम के बल पर लिख रहा हूँ ।

अगर किसी दिन तेरा पति तुझे ठुकरा दे या तू ही कुछ गलती कर बैठे तो कृष्ण की आत्मा, उसका हृदय, उसका मस्तिष्क, उसका अधम शरीर, उसकी झोंपड़ी तुझे अपने सिर-आँखों पर रखकर, धन्य-धन्य हो जाएगी । मैं तो मरकर जी उठूँगा । इसमें जरा भी सन्देह नहीं ! इतनी भी अत्युक्ति और थोड़ी-सी भी भावुकता नहीं है रीतू ! तू कभी भी अपने कृष्ण को आजमा सकती है ! मगर यह अन्तिम कदम होना चाहिए रीतू ! एकदम अन्तिम ! ! !

तूने पिता-माता और प्रतिष्ठा के लिए इतनी बड़ी कुर्बानी की है । इतना बड़ा बलिदान दिया है, इसका ध्यान रखना । बस ! ! !

तेरा ही एकमात्र—कृष्ण !]

“मैंने यह पत्र दूसरे दिन मीता के हाथों भिजवा दिया । मीता जब लौटी तो रीता का उत्तर भी लेती आई । जिस लिफाफे में मैंने उसे पत्र लिखा था, उस पर लिखा रीता का पत्र उसीके आँसुओं से धुल गया था । मैं उसे देखते ही जैसे बेहोश हो गया । मैंने हिम्मत से पत्र पढ़ा । पत्र में लिखा था—

[आराध्य !

(अन्तिम सम्बोधन)

अपनी रीतू को क्षमा करिएगा । आपने मुझे गलत समझा है । खैर, मैं शीघ्र ही जीवन का अन्त करूँगी ! विश्वासपूर्वक मेरे पत्रों को वापस कर दें । रीतू मर गई आपके लिए, क्यों ???

अब और क्या लिखूँ ? हाथ काँप रहा है, पता नहीं क्यों ! अलविदा ! —रीतू ।]”

कृष्ण ने कहा—‘मुझे वह पत्र पढ़कर जरा भी दुःख नहीं हुआ ललित ! बल्कि प्रसन्नता हुई !!’

ललित ने कापी बन्द करके घोर आश्चर्य से पूछा—‘प्रसन्नता हुई आपको ?’

कृष्ण ने गम्भीर होकर कहा—‘हाँ ललित ! बेहद प्रसन्नता हुई ! और तुम्हें बता दूंगा तो तुम्हें भी होगी ।

‘तो जरूर बताइए !’

कृष्ण ने कहा—‘रीता की उस चिट्ठी में एक पंक्ति थी—‘मैं शीघ्र ही जीवन का अन्त करूँगी ।’ और आगे उसने लिखा था—‘विश्वासपूर्वक मेरे पत्रों को वापस कर दें ।’ इसका अर्थ यह है ललित ! कि रीता को डर था कि मैं कहीं उसके पति को उसके पत्र न दिखा दूँ ! अर्थात् वह पति के साथ अभी थोड़ी खिंची-खिंची-सी ही थी । आगे चलकर प्रसन्न भी हो सकती है । वह नहीं चाहती थी कि इतना बड़ा काण्ड उसके पति को मालूम हो जाय । इस डर का एक-मात्र अर्थ है ललित ! जीवन के प्रति विश्वास ! जीवन के लिए आशा !! जीवन की महान महत्वाकांक्षा !!! समझ गए तुम ?’

ललित ने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा—‘एकदम ठीक विश्लेषण है आपका कृष्ण भाई ! बिल्कुल सही !’

कृष्ण बोला—‘सही क्या ! यथार्थ है ललित ! यथार्थ ! आज रीता की शादी को कई बरस हो गए । दोनों पति-पत्नी, पति-पत्नी की तरह ही जिन्दगी गुजार रहे हैं !’

ललित को इस खबर से बहुत ज्यादा प्रसन्नता हुई । उसने कहा—‘कृष्ण भाई ! मुझे इस कहानी से आपकी जिन्दगी की भी कई बातों का रहस्य मालूम हो गया । आप शायद सिगरेट भी इसीलिए बहुत ज्यादा पीते हैं ?’

‘हाँ !’

‘शराब भी पीते हैं ?’

‘खूब !’

‘मैंने तो कभी नहीं देखा !’

‘कोई नहीं देखता ललित ! कोई नहीं देखता !’

कुछ देर तक चुप रहकर बोला—‘एक दिन मैंने प्रायश्चित्त करने की बात कही थी न ललित ! बताओ तो, वह प्रायश्चित्त हुआ कि नहीं ?’

ललित ने कहा—‘मुझे कुछ नहीं मालूम हो सका ।’

कृष्ण बोला—‘अपनी भावुकता पर विजय पाकर, मैंने रीता को जो वह कड़ा पत्र लिखा, वही मेरा प्रायश्चित्त है ललित ! मैंने रीता के कारण गज्जू बाबू का अपमान किया था तो रीता को अपनी ओर से उनके चरणों में सौंपकर मैंने उस पाप का प्रायश्चित्त कर लिया । यही प्रायश्चित्त मैं करना चाहता था ललित !!’

ललित ने कहा—‘आपके उपन्यास लिखाना शुरू करने के दिन ही मैंने कहा था न कृष्ण भाई कि आप एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति हैं !’

ललित को अपनी भविष्यवाणी पर अभिमान करते देखकर कृष्ण ने कहा—‘अभी तुम्हें मेरे रहस्यपूर्ण व्यक्तित्व के एक प्रतिशत का भी ज्ञान नहीं है ललित ! कल मैं शेष सम्पूर्ण रहस्य खोलकर दिल्ली चला जाऊंगा । तुम मुंह बनाकर देखते रह जाओगे ! सभर खबरदार ! ये बातें किसी दूसरे को मालूम न हों ।’

ललित आश्चर्य के समुद्र में गोते खाने लगा । उसने पूछा—‘क्या अभी मुझे रहस्य के एक प्रतिशत का भी ज्ञान नहीं हुआ है कृष्ण भाई ?’

कृष्ण बोला—‘नहीं ललित ! नहीं ! मुझपर विश्वास करो । और जरा अपनी मूढ़ कौपी मुझे दे दो । एक जरूरी काम है । और देखो ! कल ठीक आठ बजे यहाँ पहुँच जाना ।’



भेद आज खुला !!!

ललित अपने घर पर मुँह-हाथ धोकर अजायबघर की ओर जाने की तैयारी कर ही रहा था कि कृष्ण पहुँच गया । उसने कहा—
'ललित ! पहले हमलोगों को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन चलना है ।
वहाँ से फिर अजायबघर चलेंगे ।'

ललित ने पूछा—'वहाँ क्या है ?'

कृष्ण बोला—'यह वहीं मालूम होगा । आओ, चलो !'

कृष्ण ललित को रिक्शे पर बिठाकर सम्मेलन-भवन पहुँचा । रविवार का दिन था । सभाभवन चारों ओर से खूब सजा रखा गया था । लोग बाहर चहलकदमी कर रहे थे । दो-तीन प्रमुख व्यक्ति रह-रहकर सभा-भवन से बाहर आते और झाँककर फिर अन्दर चले जाते ।

कृष्ण और ललित जैसे ही हाते में दाखिल हुए कि पाँच-सात सम्भ्रान्त साहित्यिक उनकी ओर बढ़े । कृष्ण को उनलोगों ने बढ़े अदब के साथ रिक्शे से उतारा और आदरपूर्वक मंच की ओर लेकर बढ़े । यह देखकर ललित का आश्चर्य परेशानी की सीमा तक पहुँच गया । उसने कतराकर निकल भागने की कोशिश की, मगर कृष्ण ने उसका हाथ पकड़ लिया । दोनों मंच पर पहुँचे । कृष्ण के मंच पर पहुँचते ही सभी लोग खड़े हो गए ।

थोड़ी देर की काना-फूसी के बाद सम्मेलन के अध्यक्ष पं० अम्बिका लालजी उठे और उपस्थिति को सम्बोधित करके बोले—‘भाइयो ! यह हमारे शहर का सौभाग्य है कि हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार भाई अतुलचन्द्रजी यहाँ लगभग एक महीना रहे । आपने इस अवधि में हिन्दी को एक सर्वथा अछूते टेकनीकवाली, मौलिक और गौरवदायिनी कृति प्रदान की है, जो राष्ट्रभाषा हिन्दी का सिर ऊँचा करेगी । वह कृति है आपका नवीन उपन्यास, जो संसार के किसी भी श्रेष्ठ उपन्यास का मुकाबला करेगा । मुझे इस उपन्यास को देखने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है !

‘कल ही सुबह के हवाई जहाज से अतुलजी दिल्ली जा रहे हैं । आप, हम, सभी यह तो जानते ही हैं कि अतुलजी इसी प्रान्त के निवासी हैं और आजकल दिल्ली में रहकर साहित्यसेवा कर रहे हैं ।

‘हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से, व्यक्तिगत रूप से और आप लोगों की ओर से मैं अतुलजी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि वे इसी तरह, कभी-कभी भूले-भटके अपने प्रान्त पर भी दयादृष्टि करते रहेंगे ।’

भाषण के बाद जोरों से तालियाँ बजीं; मालाएँ पहनाई गईं; चार-पाँच साहित्यिक संस्थाओं की ओर से अभिनन्दनपत्र पढ़े और दिए गए ।

जब इधर यह सब कुछ हो रहा था तब ललित का चेहरा देखने लायक था । उसे लग रहा था कि वह जैसे मेस्मेरिज्म द्वारा बेहोश होकर आसमान में चला गया है और वहीं कोई अद्भुत इन्द्रजाल देख रहा है । पत्थर की मूरत की तरह वह कृष्ण की ओर एकटक देखता रहा । उसे सम्मेलन की पूरी कार्रवाई सपना मालूम हो रही थी ।

अभिनन्दन-समारोह की समाप्ति के बाद कृष्ण को सभी लोभ बाहर तक पहुँचाने आए । ललित भी पीछे-पीछे लगा रहा । चीफ़ सेक्रेटरी का भी पूरा परिवार आया था । उन्होंने कृष्ण को अपनी मोटर

में बिठा लिया। ललित भी किसी तरह दबकर बैठ गया। अभिनन्दन-वाले फ्रेम भी कार में रख दिए गए। कार कृष्ण को उसके डेरे पर छोड़ गई। वह डेरा प्रकाशक की ओर से ठीक किया गया था।

चीफ सेक्रेटरी जब चले गए तब कृष्ण ने ललित का हाथ पकड़ लिया और कहा—‘ललित ! तुम्हें ठगने का मुझे बहुत अफसोस है ! मुझे क्षमा कर दो !’

कृष्ण ने दोनों हाथ जोड़ दिए। ललित ने तुरत झुककर कृष्णके पैर छ लिए और कहा—‘अतुल बाबू ! मैं नहीं जानता था कि आप ही अतुलचन्द्रजी हैं। मुझे क्षमा’

कृष्ण ने बीच ही में कहा—‘अतुल नहीं, कृष्ण कहो ललित ! मैं तुम्हारे लिए कृष्ण ही हूँ। जो स्नेह, जो मित्रभाव मैंने तुमसे पाया है, वह सभाओं और समारोहों में नहीं मिल सकता। वहाँ तो एक रस्म-अदायगी भर होती है ललित ! महज रस्म-अदायगी ! सच्चा सम्मान और स्नेह कहीं और है। मुझे उन जगहों का ज्ञान है। मैं कलाकार हूँ ललित ! जितना आनन्द, जितनी तृप्ति और जितनी आत्मीयता मुझे तुम्हारे पास मिली है, उतनी क्या इस शहर-भर के अभिनन्दनों से भी सुलभ हो सकती है ? कदापि नहीं !’

ललित तन्मय होकर चुपचाप सुनता रहा। उसे तो इस बात का गर्व था कि अब वह हिन्दी के इतने बड़े औपन्यासिक का घनिष्ठ मित्र बन गया है।

कृष्ण ने कहा—‘ललित ! आज मैं यहाँ आने और उपन्यास लिखाने के सभी रहस्यों पर रोशनी डालता हूँ। गौर से सुनो !—

‘मुझे यहाँ के एक बहुत बड़े प्रकाशक ने बुलाया था। मुझसे एक उपन्यास लिख देने की प्रार्थना की थी। उस वक्त मेरे दाहिने हाथ के अँगूठे में जख्म था। मैं अजायबघर की फुलवारी में तीन-चार दिनों तक आकर कोशिश करता रहा कि स्वयं ही लिखने में सफलता प्राप्त करूँ, मगर पूरा नहीं हो सका। घाव में दर्द ज्यादा

था । अचानक तुमपर नजर पड़ी । तुम पहली ही नजर में लेखक लगे । मैंने उसी वक्त मन में सोच लिया कि तुम्हींसे उपन्यास लिखाऊँगा ।

‘जब मुझे यह मालूम हुआ कि तुम एक गरीब लेखक हो तो मैं और आकर्षित हुआ । और उस समय से आज तक की कहानी तो तुम जानते ही हो !’

ललित ने हिम्मत करके पूछा—‘अतुल भैया ! नहीं, नहीं, कृष्ण भैया ! क्या आपने जो कुछ लिखाया है, वह निरा काल्पनिक है?’

कृष्ण ने सहज भाव से कहा—‘हाँ, ललित ! एकदम काल्पनिक !’

ललित ने पूछा—‘मगर आप जगह-जगह रो पड़ते थे, हँस पड़ते थे, बेचैन हो जाते थे । घबड़ाकर चल देते थे, उसका क्या अर्थ है?’

कृष्ण ने कहा—‘उसका अर्थ तुम कलाकार बनकर ही समझोगे ललित ! ऐसे मैं कैसे समझाऊँ ! बस, इतना जान लो कि जो उपन्यासकार अपनी कहानी और अपने पात्रों के जीवन में डूब नहीं जाता, वह सफल कलाकार हो नहीं सकता । मैंने जब-जब उपन्यास लिखे हैं ललित ! मेरी यही हालत रही है !’

‘मेरे लिखे हुए बीस उपन्यास हैं । यह इक्कीसवाँ है । इसी तरह हँसते-रोते, मुस्कुराते-घबड़ाते मैंने अपनी सभी कलाकृतियाँ लिखी हैं । मैं उन्हें लिखते समय अलग नहीं रह जाता ललित ! ठीक वही पात्र बन जाता हूँ, जिसका मैं चरित्रचित्रण करता हूँ ।’

‘एक बात और सुन लो ललित ! मैंने तुमसे शुरू में कहा था कि यह मेरे जीवन की एक गुप्त कहानी है; इसे किसी को मत बताना ?’

ललित ने यादकर के कहा—‘हाँ ! कहा था !’

कृष्ण बोला—‘तो सोचो ! अगर वह कहानी सचमुच मेरी अपनी कहानी होती और गुप्त कहानी होती तो उसे मैं उपन्यास का रूप यों देता ?’

ललित हँसकर बोला—‘यह तो ठीक कहा आपने कृष्ण भाई ! मैं सचमुच उल्लू का पट्टा हूँ !’

ललित की इस बात पर कृष्ण अपने सुपरिचित ठहाके में हँस पड़ा ।

थोड़ी देर बाद वह फिर बोला—‘एक बात और । उपन्यास लिखाने के लिये, मैंने तुमसे एक प्रतिज्ञा कराई थी कि यह उपन्यास मेरी मरजी से छपेगा, याद है तुम्हें ?’

ललित बोला—‘खूब याद है !’

कृष्ण ने कहा—‘उसका भी अर्थ यही था ललित ! अब एक तीसरी बात भी याद करो । एकदिन जब तुमने बहुत दुखी होकर उपन्यास फाड़ देने की कोशिश की थी तो मैंने उपन्यास छीनते हुए कहा था—यह उपन्यास तुम्हारा नहीं, मेरा है ! कहा था न ?’

इस पर ललित भी ठहाका मारकर हँस पड़ा । उसने कहा—‘ओफ़वोह ! यह तो गाँठ पर गाँठ खुलती जा रही है, कृष्ण भाई ! आप सचमुच एक रहस्य-भरे कलाकार हैं । आपको तो नोबेलप्राइज मिलना चाहिए इस उपन्यास पर !!’

कृष्ण हँस पड़ा । उसने कहा—‘यह भारत है भारत !! यहाँ के लोग अपने लोगों की कद्र करना, अपनी कद्र घटाना समझते हैं । यहाँ दोनो जून भरपेट भोजन जुटता रहे और तन ढँकने भर के लिए कपड़े मिलते जायें तो समझो तुम सम्पन्न और खुशहाल साह्यकार हो !

‘वैर, छोड़ो इन बातों को ! यह लो तीन सौ रुपये अपने प्रकाशक का ऋण चुकाने के लिए, और दो सौ रुपए, इस उपन्यास के लिखने का पारिश्रमिक ! मैं कुछ ज्यादा देता ललित ! मगर मेरी भी पाकिट खाली ही है आजकल ! वरना दिल्ली छोड़कर यहाँ काहे को आता !’

कृष्ण ने ललित की पाकिट में सौ-सौ रुपए के पाँच नोट रख दिए ।

ललित ने तुरत नोटों को पाकिट से बाहर निकाला और कृष्ण के पैरों पर रख दिया । उसने कहा—‘कृष्ण भाई ! यह मेरी गुरुदक्षिणा है ! इसे आप स्वीकार कीजिए ! कृपया इसे रख लीजिए ! मुझे शर्मिन्दा मत कीजिए !!’

कृष्ण ने तुरत अपने पैर पीछे खींच लिए और नोटों को हाथ में उठाकर कहा—‘ललित ! अगर तुम मुझे अर्पना गुरु समझते हो तो मेरी आज्ञा है कि यह पाँच सौ रुपये ले लो । इसे अपनी बीबी की बीमारी में लगाओ और बच्चों की परवरिश करो ।

‘और हाँ, देखो ! जब कभी तुम्हें पैसे की कमी हो, मुझे निःसंकोच लिखो । यह मेरा कार्ड रख लो, इसमें मेरा पूरा पता है । मैं तुम्हें दिल्ली से कोई न कोई काम भेजता रहूँगा । अच्छा, अब मुझे इजाजत दो । प्रकाशक के यहाँ जाना है । तुम्हारे ही उपन्यास के विषय में बातें तय करनी हैं ।’

कृष्ण उठ खड़ा हुआ । उसने ललित को अपने दोनों हाथों में बाँधकर सीने से लगा लिया । दोनों कई मिनट तक एक दूसरे से चपके रहे ।

ललित की आँखों में कृतज्ञता, आश्चर्य और परितृप्ति के आँसू छलछला आए !!!

